...ति *

...ार्काचार्याय नमः ॥

विद्वद्वरेण्य

पं० प्रवर श्री शुकसुधी संग्रहीत-

स्वधर्मामृतसिन्धु

प्रकाशक—

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा समिति

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ़ (राजस्थान)

❀ श्रीरा
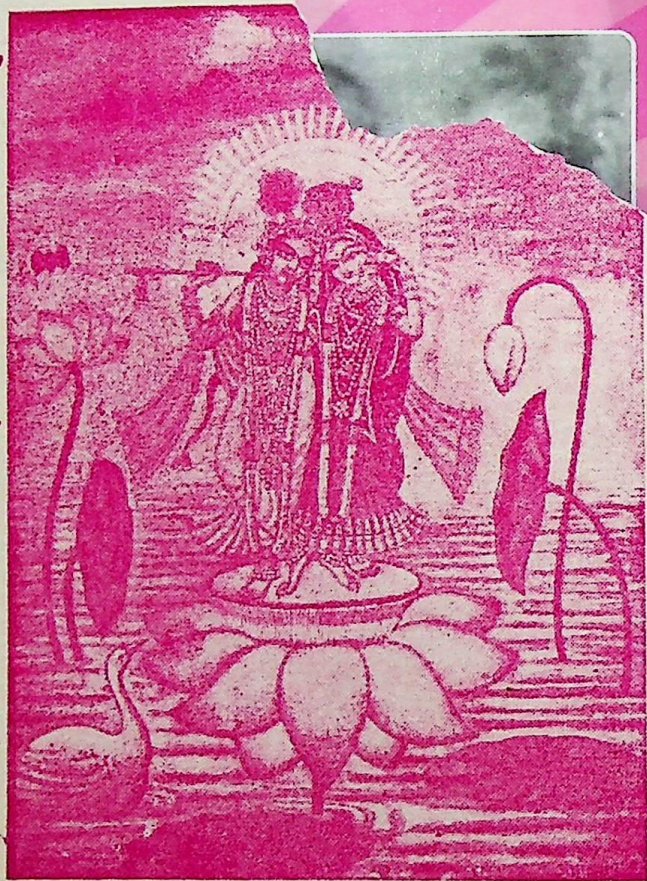
श्रीश्यामा-श्याम
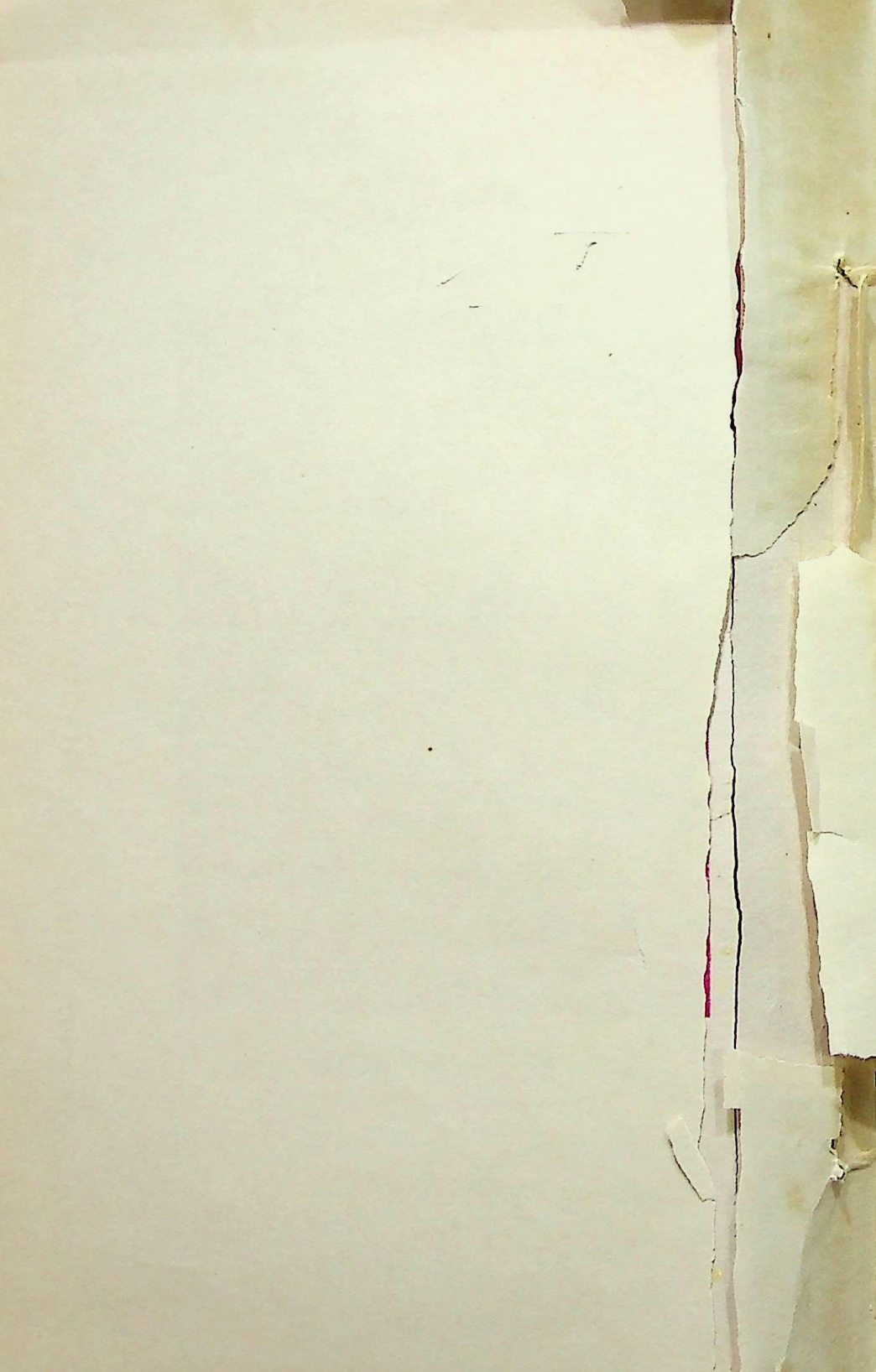
❀ श्रीसर्वेश्वरो जयति ❀

।। श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ।।

श्रीभगवन्निम्बार्कचरणचिन्तक
पंडित प्रवर श्री शुकसुधी संग्रहीत

❀ स्वधर्मामृतसिन्धु ❀

प्रकाशक—

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ शिक्षा समिति
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ़ (राजस्थान)

द्वितीयावृत्ति १००० | श्रीकृष्ण जन्माष्टमी सं. २०४४ निम्बार्काब्द ५०८१-८२ | न्यौछावर २१) रु०

मुद्रक —
श्री निम्बार्क मुद्रणालय
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)
किशनगढ़ (राजस्थान)

प्रकाशन सेवा—

१. श्रीमान् बालूरामजी रामचन्द्रजी तापड़िया
लोहारदा जि० देवास (म० प्र०)

२. श्रीमान् मांगीलालजी राठी (श्री एजेन्सी)
एम. टी. क्लोथ मार्केट, इन्दौर (म.प्र.)

३. श्रीमान् रतनलालजी राठी
श्रीराधासर्वेश्वर कम्पनी, संयोगितागंज इन्दौर

४. श्रीमान् श्यामसुन्दरजी रामविलासजी राठी
पारसी मोहल्ला, इन्दौर (म० प्र०)

❊ श्रीसर्वेश्वरो जयति ❊

ग्रन्थ की उपादेयता

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्री'श्रीजी'श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजीमहाराज

"श्रीस्वधर्मामृतसिन्धु" स्वसम्प्रदाय का परम महनीय ग्रन्थ है। इसका संकलन विद्वन्मूर्धन्य पं. श्रीशुकसुधी ने बड़ी ही विद्वत्ता से किया है। श्रुति-स्मृति-संहिताओं-तन्त्र ग्रन्थों एवं पुराणों, महाभारत प्रभृति विविध शास्त्रीय प्रमाणों के उद्धरण देकर संक्षिप्त व्याख्या पूर्वक इस ग्रन्थ को प्रस्तुत कर जो अनुपम कार्य किया है वह वस्तुतः अतीव गरिमापूर्ण है। इससे नियम-व्रतादि में किसी प्रकार के उपस्थित सन्देहों का निराकरण शास्त्रों के पुष्ट प्रमाणों से महामनीषी श्रीशुकसुधी ने बड़ी ही विद्वत्ता से किया। "श्रीस्वधर्मामृतसिन्धु" श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का विशेष प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ दीर्घकाल से अप्राप्य था। इसके पुनर्मुद्रण की परम आवश्यकता समझ कर इसका प्रकाशन अ०भा० श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठ से कराया गया है। ग्रन्थ प्रकाशन की सेवा इसमें वर्णित जिन भक्तजनों द्वारा हुई है वह परम सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

श्रीशुकसुधी ने अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है। जिनमें श्री 'विष्णुनामार्थदीपिका' एवं श्रीमद्भागवत पर 'सिद्धान्त प्रदीप' संस्कृत टीका बड़ी ही प्रसिद्ध है। "सिद्धान्त प्रदीप" का प्रकाशन व्रजेन्द्र प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित अष्ट-टीका-भागवत में बहुत पहले हुआ था। स्वतन्त्र रूप से 'सिद्धान्त प्रदीप' का प्रकाशन अद्यावधिपर्यन्त नहीं हुआ। यदि श्रद्धालु भावुकजन इसके प्रकाशन का भी निश्चय करलें तो बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो सकती है। विद्वत्समाज दीर्घकाल से इस प्रतीक्षा में है कि श्रीमद्भागवत की "सिद्धान्त प्रदीप" टीका हमें स्वाध्याय को मिले। इसी प्रकार किशनगढ़ नरेश श्रीसांवतसिंहजी जो नागरीदासजी के नाम से प्रसिद्ध हैं उनकी माताश्री बांकावतीजी ब्रजदासी या ब्रजकुंवरीजी रचित "ब्रजदासी भागवत" भी एक अनूठा ग्रन्थ है जो अभी तक अप्रकाशित है। यदि उसका प्रकाशन भी हो जाए तो धार्मिक जगत् को बहुत बड़ा लाभ होगा। सेवा परायण भक्तजन इस ओर विशेष प्रयत्नशील हों, ऐसी हमारी आकांक्षा है।

(श्रीकृष्ण जन्माष्टमी वि.सं. २०४४)

❋ श्रीसर्वेश्वरो जयति ❋

श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

भूमिका
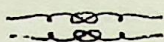
चतुर्वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीनतम है। आद्यशङ्कराचार्यजी से भी पूर्ववर्ती श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य का आविर्भाव काल है। कितने ही भ्रान्त शोधकर्ताओं ने श्रीनिम्बार्क भगवान् के काल-निर्णय के सम्बन्ध में जो भ्रांतियां उपस्थित की हैं वे सर्वथा असंगत हैं। उन सभी भ्रांतियों का निराकरण सम्प्रदाय के शोधग्रन्थों में द्रष्टव्य है।

निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा श्रीहंस भगवान् से प्रारम्भ होती है। श्रीसनकादि महर्षियों को पञ्चपदी विद्यात्मक श्रीगोपाल मन्त्रराज का उपदेश एवं भगवान् श्री सर्वेश्वर प्रभु की सेवा श्री हंस भगवान् से प्राप्त हुई, जो क्रमशः सनकादिकों से श्री नारद को एवं देवर्षिवर्य नारद से भगवान् श्री निम्बार्क को यह उपासना तथा श्री सर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्राप्त हुई। श्री सुदर्शनावतार आद्याचार्य श्री निम्बार्क भगवान् ने स्वाभाविक द्वैताद्वैत दर्शन का प्रवर्तन तथा श्री राधाकृष्ण की रसमयी युगल उपासना का उपदेश किया। 'ब्रह्मसूत्र' पर 'वेदान्त-परिजात सौरभ" नामक आपका वृत्त्यात्मक भाष्य लोक प्रसिद्ध है। आपका आविर्भाव दक्षिण भारत के गोदावरी तटवर्ती वैदुर्यपत्तन (पैठण) में अरुणाश्रम में हुआ। माता का नाम जयन्ती देवी तथा पिताश्री का नाम श्रीअरुणमुनि था। दक्षिण भारत से आपने व्रज में गिरिराज गोवर्द्धन के निकट पधारकर तपश्चर्या की। आपने जहां तपश्चर्या की उस स्थान का नाम निम्बार्क तपस्थली (निम्बग्राम) विख्यात हुआ। उक्त तपस्थली का दर्शन इतना मनोहर और आकर्षक है जो दर्शकगणों के मानस को परम आनन्दित किये बिना नहीं रहता। समस्त निम्बार्क सम्प्रदाय की एक ही आचार्यपीठ है जो अ. भा. निम्बार्काचार्यपीठ सलेमाबाद निम्बार्कतीर्थ (राजस्थान) में स्थित है। अतएव वर्तमान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज के पुनीत प्रेरणा से इस निम्बार्क तपस्थली का जो भव्य विकास हुआ है वह सम्प्रदाय की गरिमा में आदर्श रूप है।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों एवं उद्भट मनीषियों ने सम्प्रदाय के साहित्य का विपुल रूप से सृजन किया है। आचार्य प्रवर श्रीऔदुम्बराचार्यजी महाराज ने "औदुम्बर संहिता" का प्रणयन कर सम्प्रदाय के आचार, नियम, व्रत, धर्मपालन, कर्त्तव्य पालन आदि का विवेचन किया जो परम द्रष्टव्य है। इसी प्रकार पण्डित प्रवर श्रीधनीराम जी का "व्रत निर्णय" भी औदुम्बर संहिता की भांति अतीव मननीय है। पण्डित प्रवर श्रीकिशोरीदासजी वेदान्तनिधि बंशीवट वृन्दावन एवं त्यागी श्रीविहारीदासजी महाराज वृन्दावन आदि ने भी प्रायः संस्कृत के बड़े-२ अनुपलब्ध ग्रन्थों की खोज की जिनका प्रकाशन श्री रामचन्द्रदासजी महाराज दतियावाली कुन्ज वृन्दावन ने भक्तजनों के आर्थिक सहयोग से करवाया। प्रस्तुत ग्रन्थ 'स्वधर्मामृतसिन्धु' भी उपर्युक्त उभय ग्रन्थों का अनुगमन करते हुए अपना स्वतन्त्र वैशिष्टय रखता है। सम्प्रदाय में किसी भी प्रकार की कोई नियम, व्रतादि की समस्या उत्पन्न होने पर यह ग्रन्थ सभी समस्याओं का समाधान करता है। इस 'स्वधर्मामृतसिन्धु' ग्रन्थ के प्रणेता विद्वद्वरेण्य पण्डित प्रवर श्रीशुकसुधी महाभाग हैं। आपकी जन्मस्थली ब्रज की पावन स्थली श्रीमथुरापुरी रही है। गौड़ विप्रकुल को आपने अलङ्कृत किया था। आपकी अनेक रचनायें हैं। श्रीमद्भागवत पर 'शुक सिद्धान्त प्रदीपिका' नामक टीका विद्वत्समाज में बड़े आदर के साथ मनन की जाती है। जिसका प्रकाशन देवकीनन्दन यन्त्रालय वृन्दावन में हुआ है। विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र पर भी आपकी "विष्णुनामार्थ दीपिका" है। यह 'स्वधर्मामृतसिन्धु' ग्रन्थ प्रथम बार पं. प्रवर श्रीकिशोरीदासजी महाराज के प्रयास से ६० वर्ष पूर्व विद्याविलास प्रेस बनारस में ऊखड़ा महन्त श्रीब्रजभूषणशरणजी के द्वारा हुआ था। वह संस्करण प्रायः समाप्त होजाने से भक्तजनों के विशेष अनुरोध पर यह द्वितीय संस्करण अ०भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद (राजस्थान) द्वारा भक्तजनों के लाभार्थ प्रकाशित कराया जा रहा है। आशा है भावुक भक्तजन इससे पूर्ण लाभ प्राप्त करेंगे।

—पं० गोविन्ददास 'सन्त'
प्रचार मंत्री
अ०भा० निम्बार्काचार्यपीठ

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
वि.सं. २०४४

स्वधर्मामृतसिन्धूद्धृतप्रमाणग्रन्थानां नामानि ।

संख्या	ग्रन्थनाम ।
१	श्रुतिः ।
२	आगमः ।
३	यजुर्वेदः (हिरण्यकेशिशाखा)
४	,, (कठशाखा)
५	ऋग्वेदः (बाष्कलसंहिता)
६	सामवेदः (मैत्रावरुणशाखा)
७	अथर्ववेदः ।
८	छान्दोगपरिशिष्टम् ।
९	अथर्वपरिशिष्टम् ।
१०	बह्वृचपरिशिष्टम् ।
११	गोपीचन्दनोपनिषद् ।
१२	वासुदेवोपनिषद् ।
१३	महोपनिषद् ।
१४	भरद्वाजसंहिता ।
१५	जयदाख्यानसंहिता ।
१६	अगस्त्यसंहिता ।
१७	औदुम्बरसंहिता ।
१८	प्रह्लादसंहिता ।
१९	सनत्कुमारसंहिता ।
२०	मनुस्मृतिः ।
२१	शांडिल्यस्मृतिः ।
२२	विष्णुस्मृतिः ।
२३	दक्षस्मृतिः ।
२४	वाराहस्मृतिः ।
२५	व्यासस्मृतिः ।
२६	वसिष्ठस्मृतिः ।
२७	अंगिरास्मृतिः ।
२८	हारीतस्मृतिः ।
२९	अत्रिस्मृतिः ।
३०	कात्यायनस्मृतिः ।
३१	याज्ञवल्क्यस्मृतिः ।
३२	स्मृतिसंग्रहः ।
३३	स्कन्दपुराणम् ।
३४	भागवतपुराणम् ।
३५	ब्रह्मपुराणम् ।
३६	पद्मपुराणम् ।
३७	कूर्मपुराणम् ।
३८	विष्णुपुराणम् ।
३९	नारदपुराणम् ।
४०	भविष्योत्तरपुराणम् ।
४१	गरुडपुराणम् ।
४२	वराहपुराणम् ।
४३	मत्स्यपुराणम् ।
४४	ब्रह्माण्डपुराणम् ।

सं	ग्रन्थ नाम ।
४५	वामनपुराणम् ।
४६	आदित्यपुराणम् ।
४७	नृसिंहपुराणम् ।
४८	वायुपुराणम् ।
४९	लिङ्गपुराणम् ।
५०	मार्कण्डेयपुराणम् ।
५१	भविष्यपुराणम् ।
५२	अग्निपुराणम् ।
५३	कालिकापुराणम् ।
५४	यमपुराणम् ।
५५	देवीपुराणम् ।
५६	महाभारतम् ।
५७	ब्रह्मवैवर्तम् ।
५८	सनत्सुजातीयम् ।
५९	सनत्कुमारीयम् ।
६०	पद्मोतरखण्डम् ।
६१	क्रमदीपिका ।
६२	गौतमतन्त्रम् ।
६३	तत्त्वसारः ।
६४	विष्णुयामलम् ।
६५	रुद्रयामलम् ।
६६	मंत्रार्णवः ।
६७	संमोहनतंत्रम् ।
६८	नारदपंचरात्रम् ।
६९	ध्रुवपंचरात्रम् ।

सं०	ग्रन्थ नाम ।
७०	प्रह्लादपंचरात्रम् ।
७१	माघमाहात्म्यम् ।
७२	मार्गशीर्षमाहात्म्यम् ।
७३	वैशाखमाहात्म्यम् ।
७४	एकादशीमाहात्म्यम् ।
७५	द्वारकामाहात्म्यम् ।
७६	बृहन्नारदीयम् ।
७७	वृहन्नारसिंहम् ।
७८	बृहद्गौतमीयम् ।
७९	हारीतम् ।
८०	धर्मोत्तारम् ।
८१	विष्णुधर्मोत्तारम् ।
८२	माधवीयम् ।
८३	नागरखण्डम् ।
८४	काशीखण्डम् ।
८५	व्रतपञ्चकम् ।
८६	स्वर्णास्तागमः ।
८७	निर्णयामृतम् ।
८८	गोविन्दार्णवः ।
८९	गोपालतापनी ।
९०	वेदान्तरत्नमंजूषा ।
९१	वेदान्तकौस्तुभः ।
९२	पञ्चकालानुष्ठानमीमांसा
९३	नारायणोपाख्यानम् ।
९४	विष्णुरहस्यम् ।

सं.	ग्रन्थनाम ।
९५	कालनिर्णयः ।
९६	हेमाद्रिः ।
९७	वाष्कलः ।
९८	गोभिलः ।
९९	भारद्वाजः ।
१००	कात्यायनः ।
१०१	कण्वः ।
१०२	हयग्रीवः ।
१०३	हरिप्रियाचार्यः ।
१०४	पाणिनिः ।
१०५	वृद्धमनुः ।
१०६	भृगुः ।
१०७	सात्वतः ।
१०८	लल्लः ।
१०९	गर्गः।
११०	वृद्धवसिष्ठः ।

सं०	ग्रन्थनाम ।
१११	बौधायनः ।
११२	कार्ष्णाजिनिः ।
११३	सुमन्तुः ।
११४	सांखायनः ।
११५	जनकः ।
११६	गालवः ।
११७	गोविन्ददेवः ।
११८	जीमूतवाहन. ।
११९	ब्रह्मसिद्धान्तः ।
१२०	मुहूर्तचिंतामणिः ।
१२१	ज्योतिःपराशरः ।
१२२	ज्योतिर्विदाभरणम् ।
१२३	धन्वन्तरिनिघण्टुः ।
१२४	पुराणसमुच्चयः ।
१२५	व्याघ्रः ।

श्रीस्वधर्मामृतसिन्धो-

विषयसूचीपत्रम् ।

(१) तरङ्गः ।

(४) तरङ्गः

(५) तरङ्गः ।

सं०	विषयः ।	पृ०	पं०
२९८	जयन्तीव्रतविधिः ।	३१२	७
२९९	जयन्तीपारणाविचारः	३१७	१७
३००	भविष्योत्तरोक्तजन्माष्टमीव्रतविधिः	३१९	६
३०१	स्कान्दोक्तं जन्माष्टमीमाहात्म्यम् ।	३२१	२३
३०२	भाद्रचतुर्थ्यां चन्द्रदर्शननिषेधः ।	३२४	४
३०३	शुक्लाष्टम्यां लक्ष्मीव्रतारम्भः ।	,,	१५
३०४	तस्यामेव राधाजन्मोत्सवः ।	,,	१८
३०५	तस्य नित्यता तत्रोपवासावश्यकता च ।	,,	२३
३०६	शुक्लैकादश्यां कटिदानोत्सवः ।	३२५	१५
३०७	द्वादश्यां वामनोत्सवः ।	३२६	१
३०८	योगविशेषेण तस्या बिजयासंज्ञा ।	,,	१५
३०९	तत्रोपवासद्वये विधिः ।	३२७	१५
३१०	योगविशेषेण तस्या एव द्वादश्या विष्णुशृंखलसंज्ञा ।	३२९	३
३११	औदुम्बरोक्तवामनजयन्तीविधिः ।	३३०	१
३१२	शुक्लचतुर्दश्यामनन्तोत्सविधिः ।	३३४	१३
	(२४) तरङ्गः ।		
३१३	अथाश्विनकृत्यम् ।	,,	२०
३१४	कृष्णप्रतिपदमारभ्य शुक्लप्रतिपदन्तश्राद्धकालवर्णनम् ।	,,	२३
३१५	एतच्छ्राद्धस्य नित्यत्वम् ।	३३५	६
३१६	तत्र श्राद्धनिषिद्धदिनवर्णनम् ।	,,	१२
३१७	धनहीनस्यैकश्राद्धेन संवत्सरकृतश्राद्धफलम् ।	३३५	२०
३१८	पितुर्मृतदिने कंन्यासङ्क्रमे श्राद्धदिनकथनम् ।	३३६	७
३१९	तदपवादः ।	,,	१६
३२०	पिंडदानेऽधिकारिणः ।	,,	२०
३२१	विरक्तश्राद्धकरणे द्वादशीनियमः ।	३३७	२
३२२	तत्रापि वैष्णवानां विवेकः ।	,,	६
३२३	श्राद्धे वैष्णवापमाने दोषस्तदादरे च गुणः ।	,,	१४
३२४	विद्धैकादशीस्थले द्वादशीं विहाय त्रयोदश्यां श्राद्धविधिः ।	३३७	२५
३२५	नवम्यां मातृश्राद्धं तत्र च स्त्री भोजनावश्यकता ।	३३८	१४
३२६	कपिलाषष्ठीयोगवर्णनम् ।	,,	२०
३२७	त्रयोदश्यां गजच्छायायोगे श्राद्धम् ।	३३९	१

※ श्रीसर्वेश्वरो विजयतेतमाम् ※

श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ।

श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायानुयायिपण्डितवरश्रीशुकसुधीसंगृहीतः ।

स्वधर्मामृतसिन्धुः ।

श्रीनिम्बार्कं नमस्कृत्य सम्प्रदायानुसारतः ।
स्वधर्मामृतसिन्धु र्वै क्रियते शास्त्रमानतः ।।

शब्दानुमानोपमानप्रत्यक्षैतिह्यार्थापत्याख्यानि षट् प्रमाणानि । तत्रार्थापत्त्युपमानयोरनुमाने, ऐतिह्यवाक्यस्य चाप्तवचनत्वाच्छब्देऽन्तर्भावः । प्रत्यक्षानुमानयोः क्वचित्क्वचिद्व्यभिचारदर्शनेन स्वतन्त्रप्रमाणत्वाभावाच्छब्दानुसारित्वांशेन प्रमाणत्वेऽपि मुख्यं प्रमाणं शब्दः । अत एव भाष्यकारेण वेदान्तकौस्तुभे वेदैकप्रमाणकं ब्रह्मेति सुदृढं स्थापितम् ।। ब्रह्मप्राप्त्युपायभूतस्वधर्मनिश्चयोऽपि वेदात्तदर्थप्रकाशकाच्च शास्त्रात् कर्त्तव्य :—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ।।

इति भगवद्वचनात् ।

मूलस्कन्धमया वेदाः पञ्चरात्रं च यत्परम् ।
अन्यच्च तत्परं ग्राह्यं शास्त्रं नान्यदृशं पुनः ।।

इति भारद्वाजसंहितोक्तेः ।

ऋग्यजुःसामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम् ।
मूलरामायणं चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ।।

यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं परं मतम् ।
प्रतिकूलं भवेद्यत्तन्नैवं शास्त्रं कुवर्त्म तत् ।।
इति स्कान्दोक्तैश्च ।।

वेदार्थत्वेन पञ्चरात्रादीनां ग्राह्यत्वम् । पुराणानां वेदार्थत्वमुक्त-मादिपर्वणि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामसौ प्रहरिष्यति ।। इति ।।

'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य' इति भगवद्वचनाद्वेदस्य विष्णुपरत्वात् प्रतिकूलमवैष्णवं शास्त्रम् । अत आह स्कान्दे ब्रह्मा—

वैष्णवानि च शास्त्राणि ये शृण्वन्ति पठन्ति च ।
धन्यास्ते मानवा लोके तेषां कृष्णः प्रसीदति ।।

तत्रैव श्रीकृष्णः—

मम शास्त्राणि ये नित्यं पूजयन्ति पठन्ति च ।
ते नराः कुरुशार्दूल! ममातिथ्यं गताः सदा ।।

मम शास्त्रप्रवक्तारं मम शास्त्रानुचिन्तकम् ।
चिन्तयामि न सन्देहो नरं तं चात्मवत्सदा ।।

।। इति प्रमाणनिर्णयः ।।

इति स्वधर्मामृतसिन्धौ प्रथमस्तरङ्गः ।। १ ।।

वेदादौ सर्वमस्त्येव प्राचां ग्रन्थेषु वै ततः ।
एकत्र स्वप्रबोधाय सारार्थोऽयं निगद्यते ।।

अथ वेदन–निदिध्यासनो–पासन–लक्षणाद्भगवज्ज्ञानात्सर्वदुःख निवृत्तिर्भवति ।

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।'

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तं निगच्छति ।।

इत्यादिवाक्यात् ।। तल्लाभाय गुरुराश्रणीयः । 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् । यथा सौम्य पुरुषं गन्धोरेभ्यो पिनद्धाक्षमुपानीय तं ततो विजने विसृजेत् । स यथा तत्र प्राङ्वोदङ्वाऽवाङ्वा विसृष्टस्तस्य यथाऽभिनहनं प्रमुच्य ब्रूयात्—एतां दिशं गन्धाराः एतां दिशं गच्छेति—स ग्रामाद्ग्रामान्तरं गच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेव सम्पद्यते । एवमेवेहाचार्य्यवान्पुरुषो वेदे इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः कृतः ।
गुरुः पारयिता तस्य ज्ञानं प्लवमिवोच्यते ।।

इति मोक्षधर्मे जनकवाक्यात् ।

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम् ।।

इति श्रीमद्भागवते योगेश्वरवचनाच्च ।।

गुरुपराङ्मुखस्य त्वनर्थापातः स्यात्—

नारायणोऽपयाति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः ।
कमलं जलादपेतं शोषयति रवि र्न तोषयति ।।

इति जयदाख्यानसंहितावचनात् ।।

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ।
व्यसनशतान्विताः समपहाय गुरोश्चरणं
वणिज ! इवाज सन्त्यक्तकर्णधरा जलधौ ।।

इति श्रुतिस्तुतेश्च ।।

अपि घ्नन्तः शपन्तो वा विरुद्धा अपि ये बुधाः ।
गुरवः पूजनीयास्ते गृहीतचरणा बुधैः ।।
बोधः कलुषितस्तेन दौरात्म्यं प्रकटीकृतम् ।

गुरुर्येन परित्यक्तस्तेन त्यक्तः पुरा हरिः ।।

इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ।।

गुरुणैव विशोधिता मतिः सुज्ञानाय भवतीत्याह श्रुतिः—

"नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठेति" ।।

गुरुणैव विशोधिता मतिः सुज्ञानाय भवतीत्याह

गुरोर्लक्षणम्—श्रुतौ "श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति" । स्मृतौ च—

गुशब्दस्त्वन्धकाराख्यो रुशब्दस्तन्निरोधकः ।

अन्धकारविरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ।।इति।।

आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।

मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदा मन्त्राश्रयः शुचिः ।।

गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषतः ।

एवं लक्षणसंयुक्तो गुरुरित्यभिधीयते ।। इति च ।।

सनत्सुजातीये—

अभिजानामि ब्राह्मणं व्याख्यातारं विचक्षणम् ।

यश्छिन्नविचिकित्सः सन् व्याचष्टे सर्वसंशयान् ।।

अगस्त्यसंहितायां च—

देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निस्पृहः ।

अध्यात्मविद्ब्रह्मवादी वेदशास्त्रार्थकोविदः ।।

उद्धर्त्तुं चैव संसाराच्छक्तः शिष्यं द्विजोत्तमः ।

तत्त्वज्ञो यन्त्रमन्त्राणां धर्मवेत्ता रहस्यवित् ।।

पुरश्चरणकृद्धोममन्त्रसिद्धः प्रयोगवित् ।

तपस्वी सत्यवादी च सुस्वस्थो गुरुरुच्यते ।।

श्रीनारदपञ्चरात्रे च—

यः समः सर्वभूतेषु विरागो वीतमत्सरः ।

जितेन्द्रियः शुचिर्दक्षः परमार्थपरायणः ।।

कर्मणा मनसा वाचा भीतेष्वभयदः सदा ।

समबुद्धिपदं प्राप्तस्तत्रापि भगवन्मयः ।।
पञ्चकालपरश्चैव पञ्चरात्रार्थवित्तथा ।
विष्णुतत्त्वं परिज्ञाय एकं चानेकभेदगम् ।।
दीक्षयेन्मेदिनीं सर्वां किं पुनः शरणागतान् ।।इति ।

क्रमदीपिकायां च—

विप्रं प्रध्वस्तकामप्रभृतिरिपुघटानिर्मलाङ्गं गरिष्ठा
भक्तिं कृष्णाङ्घ्रिपङ्केरुहयुगलरजोरागिणीमुद्वहन्तम् ।
वेत्तारं वेदशास्त्रागमविमलपथां सम्मतं सत्सु दान्तं
विद्यां यः संविवित्सुः प्रणततनुमना देशिकं संश्रयेत ।।इति ।

पाद्मे च—

महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम् ।
सर्वेषामेव वर्णानामसौ पूज्यो यथा हरिः ।।
क्षत्रविट्शूद्रजातीयः प्रातिलोम्यं न दीक्षयेत् ।। इति ।

मोक्षधर्मे, वार्ष्णेयाध्यात्मे तु—

ब्राह्मणो ब्राह्मणैः श्राव्यः क्षत्रियः क्षत्रियैस्तथा ।
वैश्यो वैश्यैस्तथा श्राव्यः शूद्रः शूद्रैः परंतप । ।।इत्यप्युक्तम्।।

अवैष्णवो गुरुर्न भवति । तथोक्तं श्रीनारदपञ्चरात्रे—

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ।।
अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत् ।
पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवादग्रहयेन्मनुम् ।। इति ।।

वैष्णवादपि साम्प्रादायिकादेव मन्त्रो ग्राह्यः ।

तथोक्तं पाद्मे—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः ।
परम्परागता ये तु ते कृष्णकरुणान्विताः ।।इति।।

शिष्यलक्षणमुक्तं श्रीमद्भागवते—

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ।। इति ।।

गुरौ परमेश्वरवद्भावः कर्त्तव्यः—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।इति श्रुतेः।।
आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ।।

इत्येकादशे भगवद्वचनात् ।।

दुर्ल्लभं पदं गुरुर्ददाति, अतो गुरुद्रोहो नैव कर्त्तव्य इत्याह—

भगवान्सनत्सुजातः—

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत ! ।
आचार्यप्रोक्ता या जातिः सा पुण्या साऽजराऽमरा ।।
यः प्रावृणोत्यवितथेन वर्णानृतं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन् ।इति।

गुरुसेवा दर्शिता भगवद्गीतायाम्—'आचार्योपासन' मिति ।

राजधर्मे—

ऋषयश्च हि देवाश्च प्रीयन्ते पितृभिः सह ।
पूज्यमानेषु गुरुषु तस्मात्पूज्यतमो गुरुः ।।

दशमे च—

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ।।इति।।

सनत्सुजातीये—

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः ।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते ।।

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात्प्राणैरपि धनैरपि ।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते ।।

आचार्येणात्मकृतं विजानन् ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन । यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः ।। नाचार्यस्यानपाकृत्य प्रवासं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि । इति जीवो मन्यते न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः ।। इति कौर्मे—

उदकुम्भं कुशान्पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा ।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वासमाचरेत् ।।
नान्यनिर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि ।
आक्रमेदासनं छायामासङ्गाद्वा कदाचन ।।
साधयेद्दन्तकाष्ठादीन् कृत्यं चास्मै निवेदयेत् ।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः ।।
न पादौ साधयेदस्य सन्निधाने कदाचन ।
जृम्भाहास्यादिकं चैव कण्ठप्रावरणं तथा ।।
वर्जयेत्सन्निधौ नित्यमङ्गास्फोटनमेव च ।
आयान्तमग्रतो गच्छेद्नच्छन्तं तमनुव्रजेत् ।।
आसने शयने वाऽपि न तिष्ठेदग्रतो गुरोः ।। इति ।

मनुस्मृतौ—

नोदाहरेद्गुरोर्नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम् ।।
गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।। इति ।

विष्णुधर्मे—

न गुरोरप्रियं कुर्यात् ताडितः पीडितोऽपि च ।
नावमन्येत तद्वाक्यं नाप्रियं हि समाचरेत् ।।

आचार्याय प्रियं कुर्यात्प्राणैरपि धनैरपि ।।
कर्मणा मनसा वाचा स याति परमां गतिम् ।। इति ।

पाद्मे—
गुरोः पादोदकं पुत्र ! तीर्थकोटिफलप्रदम् ।। इति ।।

।। इति गुरुभक्तिनिर्णयः ।।

इति स्वधर्मामृतसिन्धौ द्वितीयस्तरङ्गः।। २ ।।

उक्तलक्षणाद्गुरोर्भगवज्ज्ञानभजनसिद्धये दीक्षा ग्राह्या ।

तथोक्तमागमे—
द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपानयनादनु ।।
तथात्राऽदीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्चनादिषु ।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिष्टसंस्कृतम् ।। इति ।

तन्त्रे च—
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न भवन्ति प्रिये ! तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ।।
अदीक्षितस्य वामोरु ! कृतं सर्वमनर्थकम् ।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनो मृतो नरः ।। इति ।

स्कान्दे च—
ते नराः पशवो लोके किं तेषां जीवने फलम् ।
यैर्न लब्धा हरेर्दीक्षा नार्चितो वा जनार्द्दनः ।। इति ।

दीक्षेतिपदस्य निरुक्तिः गोतमीयतन्त्रे—
ददाति दिव्यभावं यत् क्षिणुयात्पापसन्ततिम् ।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः ।। इति ।।

दीक्षामासा उक्ता आगमे—
मंत्रस्वीकरणं चैत्रे बहुदुःखफलप्रदम् ।

वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं ध्रुवम् ॥
आषाढे बन्धुनाशाय श्रावणे तु भयावहम् ।
प्रजाहानिर्भाद्रपदे सर्वत्र शुभमाश्विने ॥
कार्त्तिके धनवृद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे शुभप्रदम् ।
पौषे तु ज्ञानहानिः स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने सर्ववश्यत्वमाचार्यैः परिकीर्त्तितम् ॥ इति ।

श्रीमद्‌गोपालमन्त्रोपदेशस्तु चैत्रेऽपि कर्त्तव्य इत्युक्तम् ।

क्रमदीपिकायाम्—

चैत्रे कृत्वैतन्मासि कर्माच्छपक्षे
पुण्यर्क्षे भूयो देशिकात्प्राप्यदीक्षाम् ।
तेनानुज्ञातः पूर्वसेवां द्वितीये मासि
द्वादश्यामारभेतामलायाम् ॥ इति ।

गौतमीये—

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः ।
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्येष्ठे तु मरणं ध्रुवम् ॥
आषाढे बन्धुनाशः स्यात्पूर्णायुः श्रावणे भवेत् ।
प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥
कार्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् ।
पौषे तु शत्रुपीडा स्यात् माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने सर्वकामाः स्युः मलमासं विवर्जयेत् ।
रवौ गुरौ तथा सोमे कर्तव्यं बुधशुक्रयोः ॥

नारदीये—

रोहिणीश्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।
पुष्यं शतभिषा चैव दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥

अन्यत्र—

पूर्णिमा पञ्चमी षष्ठी द्वितीया सप्तमी शुभा ।
त्रयोदशी द्वादशी च दीक्षायां दशमी मता ।।
प्राप्ते त्वर्कविधुग्रासे तीर्थे चान्यन्न चिन्तयेत् ।।

तत्त्वसारे तु—

दुर्लभे सद्गुरूणां च सकृत्सङ्गे उपस्थिते ।
तदनुज्ञा यदा लब्धा तदैवावसरो महान् ।।
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।
न तीर्थं न तपो होमो न स्नानं न जपक्रिया ।।
दीक्षायाः कारणं किन्तु स्वेच्छाप्राप्ते तु सद्गुरौ ।। इति ।।

अथ शिष्यपरीक्षाकालमाहुः—

त्रिषु वर्षेषु विप्रस्य षड्वर्षेषु नृपस्य च ।
विशो नवसु वर्षेषु परीक्षेति विशिष्यते ।।
समास्वपि च द्वादशसु तेषां वृषलादयः ।। इति ।

अन्यत्र तु—

एकाब्देन भवेद्विप्रो भवेदब्दद्वयान्नृपः ।
भवेदब्दत्रये वैश्यः शूद्रो वर्षचतुष्टयात् ।। इति ।

विष्णुयामले तु—

गुरुः परीक्षयेच्छिष्यं संवत्सरमतन्द्रितः ।
नियमान्विहितान्वर्यान् श्रावयेच्च चतुःशतम् ।।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थानं महाविष्णोः प्रबोधनम् ।
नीराजनं च पाद्येन प्रातःस्नानं विधानतः ।।
विशुद्धाऽहतयुग्वस्त्रधारणं देवतार्चनम् ।
गोपीचन्दनमृत्स्नाया सर्वदा चोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।।
पञ्चायुधानां विधृतिश्चरणामृतसेवनम् ।
तुलसीमणिमालादिभूषाधारणमन्वहम् ।।

निर्माल्योद्वासनं विष्णोस्तच्चन्दनविलेपनम् ।
शालग्रामशिलापूजा प्रतिमासु च भक्तितः ॥
निर्माल्यतुलसीभक्षा तुलस्यवचये विधिः ।
विधिना तान्त्रिकी सन्ध्या शिखाबन्धो हि कर्मणि ॥
विष्णुपादोदकेनैव पितृणां तर्पणक्रिया ।
महाराजोपचारैश्च शक्त्या सम्पूजनं हरेः ॥
विष्णुभक्त्यविरोधेन नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ।
भूतशुद्ध्यादिकरणं न्यासाः सर्वे यथाविधि ॥
नवीनफलपुष्पादेर्भक्तितः संनिवेदनम् ।
तुलसीपूजनं नित्यं श्रीभागवतपूजनम् ॥
त्रिकालविष्णुपूजा च पुराणश्रुतिरन्वहम् ।
विष्णोर्निवेदितानां च वस्त्रादीनां हि धारणम् ॥
सर्वेषां पुण्यकार्याणां स्वामिदृष्ट्या प्रवर्तनम् ।
गुर्वाज्ञाग्रहणं तत्र विश्वासो गुरुणोदिते ॥
यथार्थमुद्राचरणं गीतनृत्यादि भक्तितः ।
शङ्खादिध्वनिमाङ्गल्यं लीलाद्यभिनयो हरेः ॥
साधूनां स्वागतं पूजा शेषनैवेद्यभोजनम् ।
ताम्बूलशेषग्रहणं वैष्णवैः सह सङ्गमः ॥
विशेषधर्मजिज्ञासा दशम्यादिदिनत्रये ।
व्रते नियमतः स्वास्थ्यं सन्तोषो येन केन वै ॥
पर्वयात्रादिकरणं वासराष्टकसद्विधिः ।
विष्णोः सर्वर्तुचर्या च महाराजोपचारतः ॥
सर्वेषां वैष्णवानां च व्रतानां परिपालनम् ।
गुरावीश्वरभावश्च तुलसीसंग्रहः सदा ॥
शयनाद्युपचाराश्च सर्वदा विष्णुचिन्तनम् ।

सन्ध्यायां शयनं नैव न शौचं मृतिकां विना ।।
तिष्ठताचमनं नैव तथा गुर्वासनासनम् ।
गुर्वग्रे पादविस्तारश्छायाया लङ्घनं गुरोः ।।
शक्तौ स्नानक्रियाहानिर्देवतार्चनलोपनम् ।
देवतानां गुरूणां च प्रत्युत्थानादिभावनम् ।।
गुर्वग्रे चैव पाण्डित्यं प्रौढवादक्रियां तथा ।
अमन्त्रतिलकाचामौ नीलवस्त्रविधारणम् ।।
अभक्तैः सह मैत्र्यादि ह्यसच्छास्त्रपरिग्रहः ।
स्वर्गलोकसुखासक्तिर्मद्यमांसनिषेवणम् ।।
मादकौषधसेवा च मसूराद्यन्नभोजनम् ।
शाकं तुम्बीकलिङ्गादि तथाऽभक्तान्नसंङग्रहः ।।
अवैष्णवव्रतारम्भस्तथा जप्यमवैष्णवम् ।
अभिचारादिकरणं शक्त्या गौणोपचारकम् ।।
शोकादिपारवश्यं च दिग्विद्धैकादशीव्रतम् ।
शुक्लाकृष्णाविभेदश्चासद्व्यापारो व्रते तथा ।।
शक्तौ फलादिभुक्तिश्च श्राद्धं चैकादशीदिने ।
द्वादश्यां च दिवा स्वापः तुलस्यवचयस्तथा ।।
तत्र विष्णोर्दिवा स्नानं श्राद्धं हर्षनिवेदितैः ।
अन्यैश्चातुलसीश्राद्धं तथा श्राद्धमवैष्णवम् ।।
चरणामृतपानेन शुद्धचर्थाऽऽचमनक्रिया ।
काष्ठासनोपविष्टेन वासुदेवस्य पूजनम् ।।
पूजाकालेऽसदालापः करवीरादिपूजनम् ।
आयसं धूपपात्रादि तिर्यक्पुण्ड्रं प्रमादत. ।।
पूजा वाऽसंस्कृतैर्द्रव्यैस्तथा चञ्चलचित्तता ।
एकहस्तप्रणामादि ह्यकाले स्वामिदर्शनम् ।।

पर्युषितादिदुष्टानामन्नादीनां निवेदनम् ।
सङ्ख्यां विना मन्त्रजपस्तथा मन्त्रप्रकाशनम् ॥
शक्तौ जपादिलोपश्च गौणकालपरिग्रहः ।
प्रसादाग्रहणं विष्णोर्वर्जयेद्वैष्णवः सदा ॥
चतुःशतं विधीनेतान्निषेधान् श्रावयेद्गुरुः ।
अङ्गीकारे कृते वाढं तन्नीराजनपूर्वकम् ॥
देवपूजां कारयित्वा दक्षकर्णे मनुं जपेत् ॥ इति ।
देवदेशिकमन्त्राणामेकता गौतमीयके ।
द्रष्टव्या मण्डपादीनां शुद्धये क्रमदीपिका ॥
संक्षेपान्मन्त्रदीक्षा तु वराहादधुनोच्यते ।
संक्षिप्तश्चार्थदीक्षाया विधिरेष विलिख्यते ॥
मुख्यकल्पे ह्यशक्तस्य जनस्य स्याद्धिताय यः ।
सुमुहूर्तेऽथ सम्प्राप्ते सर्वतोभद्रमण्डले ॥
नूतनं गन्धपुष्पादिमण्डितं कलशं न्यसेत् ।
वस्त्रावृतं पयःपूर्णं पञ्चपल्लवसंवृतम् ॥
सर्वौषधीपञ्चरत्नमृत्स्नासप्तकगर्भितम् ।
कृत्स्नमभ्यर्च्चितं कुम्भं कुशकूर्च्चेन देशिकः ॥
देयमन्त्रेण साष्टं तु सहस्रमभिमन्त्रयेत् ।
तदद्भिः पूर्बवच्छिष्यमभिषिञ्चन्दिशेन्मनुम् ॥
शिष्योऽर्चयेद्गुरुं भक्त्या यथाशक्ति द्विजानपि ॥ इति ॥

मृत्स्नासप्तकं तु—

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकाच्च चतुष्पथात् ।
राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च नद्याः कूलान्मृदः स्मृताः ॥ इति ॥

मन्त्रदीक्षां विना महती हानिः स्यात्तथा श्रीमदौदुम्बर संहितायां

विष्णुः—

सन्मन्त्रसंक्रियाहीनो वैदिकं लौकिकं चरन् ।
अपि कर्मफलं नैति मूलहीनो यथा तरुः ।।
मन्त्रहीनो नरो नित्यं रिक्तो ज्ञेयो बहिर्मुखः ।
मन्त्रराजवियुक्तो यो नावाप्नोति क्रियाफलम् ।। इति ।।

मन्त्रोपि वैष्णव एव ग्राह्यः–विष्णुमन्त्राणां सर्वार्थप्रदत्वात् ।

तथोक्तमागमे—

मन्त्रान् श्रीमन्त्रराजादीन् वैष्णवान् गुर्वनुग्रहात् ।
सर्वैश्वर्यं जपन्प्राप्य याति विष्णोः परं पदम् ।। इति ।

वैष्णवे च—

प्रजपन्वैष्णवान्मन्त्रान् यं यं पश्यति चक्षुषा ।
यदा वा संस्पृशेत्सद्यो मुच्यते स महाभयात् ।। इति ।

सर्वेभ्यो मन्त्रेभ्यो वैष्णवा मन्त्राः श्रेष्ठास्तेषु च श्रीमद्गोपालमन्त्राः इत्युक्तं बहद्गौतमीये—

सर्वेषां मन्त्रवर्गाणां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
विशेषात्कृष्णमनवो भोगमोक्षैकसाधनम् ।। इति ।।

तेष्वपि श्रीमष्टादशाक्षरः श्रेष्ठ इत्युक्तं सनत्कुमारीये गोपालकल्पे—

सनत्कुमारं योगीन्द्रं सिद्धाश्रमनिवासिनम् ।
ब्रह्मनिष्ठं मुनिं शान्तं प्रसन्नादित्यवर्च्चसम् ।।
विनयेनोपसङ्गम्य शिरसा प्रणिपत्य च ।
नारदः परिपप्रच्छ महर्षि सर्वकालवित् ।।
भगवन्! योगिनां श्रेष्ठ! भवसागरतारक! ।
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि मया त्वत्तो विशेषतः ।।
अपरोक्षमिदं जातं परमब्रह्मणो हरेः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।।

असौभाग्येन दारिद्र्यं येन नाशमुपैष्यति ।।
प्रसीद भगवन्मन्त्रमनायासेन सिद्धिदम् ।

श्रीसनत्कुमार उवाच—

गोपालविषया मन्त्रास्त्रयस्त्रिशतप्रभेदतः ।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मन्त्रराजमिमं शृणु ।।इत्यादिना—
बहुना किमिहोक्तेन पुरश्चरणसाधनैः ।
विनापि ज्ञानमात्रेण लभते सर्वमीप्सितम् ।। इत्यन्तेन ।।

गोतमीयतन्त्रे च—

सिद्धाश्रमे वसन् धीमान् कदाचिद्गौतमो मुनिः ।
तपःस्वाध्यायनिरतो भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ।।
नमस्यन् शिरसा विष्णुं स्तुवन् वाचा जनार्द्दनम् ।
जपन् कराभ्यां यज्ञेशं हृदा ध्यायन् सदा हरिम् ।।
समस्तश्रुतितत्त्वज्ञ इतिहासपुराणवित् ।
मन्त्रौषधिक्रियासिद्धो योगसिद्धान्ततत्त्ववित् ।।
धर्मार्थकाममोक्षार्थी नारदं प्रणिपत्य च ।
विनयावनतो भूत्वा पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमः ।।
भगवन् ! कामदा मन्त्राः शत्रूदासीनबान्धवाः ।
विभिन्नफलदास्ते तु नैकत्र फलदा मताः ।।
एते समफलाः सर्वे न मन्त्रा इति नः श्रुतम् ।
येन सर्वफलावाप्तिः सर्वेषां बन्धुरेव यः ।।
सर्ववर्णाधिकारश्च नारीणां योग्य एव यः ।
तं ब्रूहि भगवन्मन्त्रमल्पायासफलप्रदम् ।।
तव नाविदितं किञ्चिद्विद्यते सचराचरे ।। इति ।।
इति श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठो नत्वा विष्णुमुवाच ह ।
साधु पृष्टं मयाप्येवं पृष्टः प्रोवाच पद्मजः ।।

तथा ते कथयिष्यामि यथा प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
सर्वे कामाः प्रसीदन्ति कृष्णमन्त्रजपाद्द्विज ।।
सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
गाणपत्येषु शैवेषु तथा शास्त्रेषु सुव्रत ।।
वैष्णवेषु च सर्वेषु कृष्णमन्त्राः फलाधिकाः ।
विशेषतो दशार्णोयं जपमात्रेण सिद्धिदः ।।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।
अज्ञानमूलराशीनां ज्वलनोऽयं मुनीश्वर ।।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ।
अनेनाराधितः कृष्णः प्रसीदत्येव तत्क्षणात् ।।
तस्य संक्षेपतो वक्ष्ये फलं सम्यक् शृणुष्व मे ।
पद्मयोनिरवापाग्र्यं देवराज्यं शचीपतिः ।।
अवापुस्त्रिदशाः स्वर्गं वागीशत्वं बृहस्पतिः ।
पक्षिणामधिपः सोऽभूद्गरुडोपि द्विजोत्तमः ।।
कश्चित्कृष्णं समाराध्य धनेशत्वमवाप्तवान् ।
मन्त्रेण कृष्णमाराध्य चन्द्रः सर्वजनप्रियः ।।
करोति स्ववशे कामः सर्वान् लोकाननेन च ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रो गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।।
मन्त्रराजमिमं ज्ञात्वा कृतार्थो जायते नरः ।
पुत्रवान् धनवान् वाग्मी लक्ष्मीवान् पशुमान् भवेत् ।।
सुभगः सम्मतः श्लाघ्यो यशस्वी कीर्त्तिमान् भवेत् ।
सर्वलोकाभिरामः स्यात्सर्वज्ञश्च भवेन्नरः ।।
अनेन त्रिषु लोकेषु याता मुक्तिं मुमुक्षवः ।
मन्त्रेणानेन मन्त्रज्ञ ! भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा ।।
समस्ततीर्थपूतश्च समस्तक्षेत्रपावनः ।

रवेरिव दुराधर्षः शुचेरिव शुचिः सदा ।।
शङ्करस्येव सिद्धीशो विष्णोरिव सदाश्रयः ।
बहुना किमिहोक्तेन रहस्यं शृणु गौतम ।।
निर्वाणफलदो मन्त्रः किमन्यैर्बहुजल्पितैः ।

गौतम उवाच—

समस्तवेदतत्त्वज्ञ सर्वागमविशारद ।
अधुना ब्रूहि मे ब्रह्मन् मन्त्रराजं दशाक्षरम् ।।

श्रीनारद उवाच—

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि विधानं मुनिनिर्मितम् ।
यावन्मन्त्रऋषिच्छन्दोदेवतादीननुक्रमात् ।।
खान्ताक्षरं समुधृत्य त्रयोदशस्वरान्वितम् ।
पर्णं तुर्य्यस्वरयुतं छान्तं धान्तं तथा द्वयम् ।।
अमृताक्षरमुद्धृत्य चैकतो मांसयुग्मकम् ।
पतुर्य्यं मुखवृत्तेन पवनः स्वाहयान्वितः ।।
दशाक्षरमनुः प्रोक्तो दृष्टादृष्टफलप्रदः ।
बीजं शक्तिं च वक्ष्यामि ब्रह्म यच्च परात्परम् ।।
ब्रह्माणं मायया सार्द्धं मांसार्णं नादबिन्दुकम् ।
एतद्बीजं समाख्यातं कृष्णतत्त्वं परात्परम् ।।
शुक्रार्णसमृतार्णेन मुखवृत्तेन संयुतम् ।
गगनं मुखवृत्तेन प्रोक्ता शक्तिः परात्परा ।।
एषा शक्तिः परा सूक्ष्मा नित्या संवित्प्रदायिनी ।
ईश्वरो जगतां बीजं शक्तिर्गुणमयी तु या ।।
परमात्मा तथा बुद्धिर्वायुः कुण्डलिनीति च ।
चतुर्विधे बीजशक्ती सर्वमन्त्रेषु चिन्तयेत् ।।
त्रितयं तत्र सामान्यं तदिदानीं निगद्यते ।

ईश्वरो जगतां बीजमाद्यं ब्रह्म तदुच्यते ।।
तस्य माया समाख्याता शक्तिर्गुणमयी तु या ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम ।।
तत्त्वानि चेश्वरश्चैव ब्रह्मैतत्पञ्चकं स्मृतम् ।
सर्गान्तः पुरुषश्चेति तुर्य्याख्या प्रकृतिः स्मृता ।
तत्त्वानि मांसरूपाणि कालश्च तत्त्वरूपकः ।
ईश्वराख्यो भवेन्नादो बिन्दुश्चैतन्यचिन्मयः ।।
एतद्विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो महीं चरेत् ।
नास्य कालकलापेक्षा न तीर्थायतनानि च ।।
क्लीङ्कारादसृजद्विश्वमिति प्राह श्रुतेः शिरः ।
लकारात्पृथिवी जाता ककाराज्जलसम्भवः ।।
ईकाराद्वह्निरुत्पन्नो नादाद्वायुरजायत ।
बिन्दोराकाशसम्भूतिरिति भूतातमको मनुः ।।
स्वशब्देन च क्षेत्रज्ञो हेतिचित्प्रकृतिः परा ।
तयोरैक्यसमुद्भूतिर्मुखवेष्टे न वर्णकः ।।
अत एव हि विश्वस्य लयः स्वाहार्णके भवेत् ।
गोपीति प्रकृतिं विद्याज्जनस्तत्त्वसमूहकः ।।
अनयोराश्रयो व्याप्त्या कारणत्वेन चेश्वरः ।
सान्द्रानन्दं परं ज्योतिर्वल्लभेन च कथ्यते ।।
त्रिपादूर्द्ध उदैत् पुरुष इत्याहुः प्रथमा गिरः ।
बीजोच्चारणमात्रेण चित्स्वभावः प्रजायते ।।
वल्लभेन तु तद्दार्ढ्यं स्वाहाद्याऽज्ञानदाहने ।
इत्येवं कथितं तत्त्वं मुने वै ब्रह्मसम्मतम् ।।
अथवा गोपी प्रकृतिर्जनस्तदंशमण्डले ।
अनयोर्वल्लभः स्वामी कृष्णाख्यः पर ईश्वरः ।।

कार्य्यकारणयोरीशः श्रुतिभिस्तेन गीयते ।
अनेकजन्मसिद्धानां गोपीनां पतिरेव वा ॥
नन्दनन्दन इत्युक्तस्त्रैलोक्यानन्दवर्द्धनः ।
चिन्तयेद्विरजा मन्त्रं सर्वसम्पत्तिहेतवे ॥
दशानामपि तत्त्वानां साक्षी वेत्ता तथाऽक्षरः ।
दशाक्षर इति ख्यातो मन्त्रराजः परात्परः ॥
गुप्तबीजस्वभावत्वाद्दशार्ण इति कथ्यते ।
बीजपूर्वो जपश्चास्य रहस्यं कथितं मुने ॥
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दो विराडिति स्मृतम् ।
श्रीकृष्णो देवता चास्य दुर्गाऽधिष्ठातृदेवता ॥
श्रीकुमारमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुम् ।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः ॥
गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्तितः ।
सर्ववेदव्यापकत्वाद्विराडिति निगद्यते ॥
सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते ।
अक्षरत्वात्पदत्वाच्च मुखे छन्दः प्रकीर्त्तितम् ॥
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये ।
ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलभाग्भवेत् ॥
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम् ।
मन्त्रन्यासमथो वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥
प्रणवाभ्यां पुटं कृत्वा नमोन्तान् दशवर्णकाम् ।
दक्षाङ्गुष्ठादिवामान्तन्यासः स्यात्सृष्टिरीरिता ॥
वामङ्गुष्ठादिदक्षान्तं संहृतिः परिकीर्तिता ।
उभयोः करयोर्ज्येष्ठापूर्विका स्थितिरिष्यते ॥
संहृतिर्दोषसङ्घानां हारिणी परिकीर्तिता ।

विद्याप्रदा स्यात्सृष्टयन्ता वर्णिनां शुद्धचेतसाम् ॥
स्थित्यन्ता स्याद्गृहस्थानां त्रयं काम्यानुरूपतः ।
सहजानौ वानप्रस्थे स्थित्यन्तां कश्चिदिच्छति ॥
संहारान्ता मुनीनां च विरक्तस्य च सर्वशः ।
न्यासत्रयं सदा कार्य्यमशक्तावेकमेव हि ॥

वर्णन्यासान् तथा मन्त्री देहे च परिविन्यसेत् ।
हस्तमूले कूर्परे च मणिबन्धेऽङ्गुलिमूलके ॥
अङ्गुल्यग्रे च विन्यस्य पादयोरपि विन्यसत् ।
हस्तमूलादिसृष्टिः स्यान्मणिबन्धात् स्थितिः स्मृता ॥
अङ्गुल्याग्रात्संहृतिः स्यात् स्थित्यन्तं त्रितयं न्यसेत् ।
तद्वत्कराङ्गयोर्न्यासस्तथैव परिकीर्तितः ॥
आचक्राय तथा स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमो वदेत् ।
विचक्राय तथा स्वाहा तर्ज्जनीभ्यां तथोच्चरेत् ॥

सुचक्राय तथा स्वाहा मध्यमाभ्यां तथोच्चरेत् ।
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहेत्यनामिके ॥
तथा ज्वालाचक्राय स्वाहेति कनिष्ठाभ्यां नमो वदेत् ।
असुरान्तकचक्राय स्वाहेति करयोर्वदेत् ॥

रुक्मिणीप्रकृतिर्वामा साक्षादमृतविग्रहा ।
दक्षिणः पुरुषः प्रोक्तो ज्योतिस्तुरीयविग्रहः ॥
संयोगात्करयोरेवं परतत्त्वं प्रजायते ।
अत एव समस्तानां वस्तूनां शोधनं स्मृतम् ॥

पञ्चाङ्गानि ततः कुर्यादङ्गमन्त्रेण देशिकः ।
पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रं विवर्ज्जयेत् ॥
आचक्राय तथा स्वाहा हृदयाय नमो वदेत् ।
अङ्गुष्ठरहितेनैव कराग्रेण हृदि स्पृशेत् ॥

विचक्राय तथा स्वाहा शिरःस्विती तु संवदेत् ।
शिरसि विन्यसेत्तद्वत्तथैव करशाखया ।।
सुचक्राय तथा स्वाहा शिखायै वषडुच्चरेत् ।
तथाधोङ्गुष्ठमुष्टचा तु शिखायां परिविन्यसेत् ।।
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहेति कवयायहुं ।
हस्ताभ्यां शिर आरभ्य पादान्तं चैव संस्पृशेत् ।।
ज्वालाचक्राय स्वाहा नेत्राभ्यां वौषडित्यपि ।
असुरान्तकचक्राय स्वाहास्त्राय फडुच्चरेत् ।।
ऊर्ध्वोध्वं तालत्रितयं छोटिकाभिर्दिशो दश ।
बन्धयेन्मुनिशार्दूल नित्यन्यासोऽयमीरितः ।।
ईज्यमानो हृदात्मायं हृदये स्याच्चिदात्मकः ।
क्रियते तत्परात्मा च हृन्मन्त्रेण च देशिकैः ।।
सर्वज्ञादिगुणोत्तङ्गे संविद्रूपे परात्मनि ।
क्रियते विषयाहारः शिरोमन्त्रेण धीमता ।।
तच्छिरोपरि चिद्धाममयता भावना दृढा ।
क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण धीमता ।।
मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा ।
सर्वतो वर्ममन्त्रेण क्रियते न्याससम्भृतिः ।।
यद्ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि ।
हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्नेत्रसञ्ज्ञकम् ।।
आध्यात्मिकादिरूपं यत्साधकस्य विनाशयेत् ।
अविद्याजातमस्त्रं तत्परं धाम समीरितम् ।।

एवं सर्ववर्णाश्रमोपदेशार्हो दशाक्षरमन्त्रः श्रीमन्नारदेन दर्शितः ।

अत एवोक्तं क्रमदीपिकायां—

सर्वेषु वर्णेषु तथाश्रमेषु

नारीषु नानाव्हयजन्मभेषु ।
दाता फलानामभिवाञ्छितानां
द्रागेव गोपालकमन्त्र एषः ।। इति ।।

अथ मन्त्रराजं श्रीमदष्टाक्षरं पृच्छति ।

गौतम उवाच—

ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ सर्वभूतहिते रत ।
त्वमेव कृष्णदेवस्य अन्तर्यामी निरामयः ।।
अविद्यादोषनिर्मुक्तसमस्तव्रतसंयुतः ।
सर्वलोकैकगमकः सर्वलोकैकतत्त्ववित् ।।
सर्वानुभवसाक्षी त्वं सर्वदेवनमस्कृतः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्त्रराजं परात्परम् ।।
अष्टादशार्णो मन्त्रस्तु गुह्याद्गुह्यतरः स्मृतः ।
तं मन्त्रं श्रोतुमिच्छामि यदि योग्योऽस्मि सत्तम ।।
भवार्णवनिमग्नानां समुद्धर्तुमिहार्हसि ।
इत्यादिस्तुतिभिः स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ।।
पार्श्वमासाद्य तद्ब्रह्मतिरासीन्मुनीश्वरः ।

नारद उवाच—

साधुपृष्टं त्वया ब्रह्मन् मयापि ब्रह्मणः श्रुतः ।।
मन्त्रराजो मुनिश्रेष्ठ सर्ववेदाङ्गसानुगः ।
ततःप्रभृति विप्रर्षे हरितामात्मवानहम् ।।
तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि यतस्त्वं पुरुषप्रियः ।
क्लीङ्कारं पूर्वमुच्चार्य्य कृष्णं तुर्य्यपदान्वितम् ।।
गोविन्दं च तथोक्त्वा च दशाक्षरं तथोच्चरेत् ।
भक्त्या ते प्रणिपत्या च कथितो मन्त्रनायकः ।।
गुह्याद्गुह्यतरो ह्येष वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः ।

शौनकाद्याश्चा मुनयस्तथान्ये देवमुख्यकाः ।।
मन्त्रराजपरिज्ञानात्सत्साम्यतां गताः ।
कृषशब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्दस्वरूपकः ।।
सुखरूपो भवेदात्मा भावानन्दमयः स्वतः ।
गोशब्देन ज्ञानमुक्तं तेन विन्देत तं प्रभुम् ।।
गोशब्दाद्वेद इत्युक्तस्तेन वा लभते विभुम् ।
एवं ते कथिता मन्त्रवासना मुनिसत्तम ।।
एतज्ज्ञानानुभावेन जीवन्मुक्तो न चान्यथा ।
सर्वेषां मन्त्रराशीणां मुख्योऽयं वरदो मनुः ।।
पुण्यतीर्थाणि सर्वाणि स्नातानि तेन धीमता ।
सिद्धिक्षेत्राणि सर्वाणि सम्यक्कृतानि तेन वै ।।
सकृदुच्चारणेनास्य सत्यमेव न चान्यथा ।
किमन्येन बहूक्तेन स्मरणादस्य मन्त्रवित् ।।
जीवन्मुक्तो न सन्देहो विष्णुरेव न संशयः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द उच्यते ।।
कृष्णः प्रकृतिरेतस्य दुर्गाधिष्ठातृदेवता ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।।
नारायण इति ख्यातः पदपञ्चात्मकः परः ।
अक्षरार्थस्तु कथितः पदस्यार्थ इतीरितः ।।
तस्माद्विज्ञाय वै मन्त्री पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं हि गौतम ।।

तथैवोक्तं विष्णुयामलेपि—

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च ।।
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु ।

एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ।। इति ।।

एतेनास्य मन्त्रस्य परम्परागतत्वमप्युक्तम् । श्रीमद्गोपालताप-न्यामस्य मन्त्रस्य परमश्रैष्ठ्यमुक्तम्—

'ॐ मुनयो हवै ब्रह्माणमूचुः-कः परमो देवः कुतो मृत्युर्विभेति कस्य ज्ञानेनाखिलं विज्ञानं भाति केनेदं विश्वं संसरतीति । तदुहोवाच ब्राह्मणः—कृष्णो वै परमं दैवतं गोविन्दान्मृत्युर्विभेति गोपीजनवल्लभज्ञानेन तज्ज्ञानं भवति स्वाहेदं संसरति' इत्यादिना ।। मन्त्रदीक्षाकाले ऊर्ध्वपुण्ड्रादिभिश्च संस्कुर्यात् । अत एव श्रुतौ पञ्च संस्काराः सूचिताः—

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी
विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा ।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितम्
परात्परं यन्महतो महान्तम् ।। इति ।

पञ्चरात्रे पाद्मे च—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो याज्ञश्च पञ्चमः ।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः ।। इति ।।

तत्र यागसंस्कारो नाम विष्णुध्यानपूजनोपदेशः ।

तथाच स्मृतौ—

अनिष्ट्वा यो हरिं त्वादावन्यकर्म समाचरेत् ।
सर्वत्र स निराशः स्यादेकं यागं विना हि सः ।।

आगमे—

अविहितहरियागो लौकिकं वैदिकं वा
सततमपि चरन्धर्मं मनुष्यः प्रवीणः ।
न च फललवलेशं प्राप्नुयात्तु प्रयत्नै-
रकृतमखिलमेव स्याद्विना यागमेकम् ।।

मन्त्रसंस्कारस्तु संक्षेपत उक्त एव ।। नामसंस्कारस्तु —

वैष्णवोसि हरिदासोसीति शिष्यं वदेत् गुरुः ।
अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ।।

इति वाक्यात् । शास्त्रे शिष्टवाक्यान्यपि तथैव सन्ति ।

उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ।।

इति श्रीमद्भागवते उद्धववचनम् ।

यदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्त्तये ।

इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रीनारदवाक्यं च ।

भीष्मपर्वणि नवमदिवसयुद्धे—

प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव मानद ।

इति भीष्मवचनं च ।

श्रीमदौदुम्बरसंहितायां कुमाराः—

असम्प्राप्य गुरोः साक्षान्नामसंस्कारमुत्तमम् ।
हरिदासादिकं पुण्यं नाप्नोति सत्क्रियाफलम् ।।

श्रीनारदः—

बिना नाम चरन्धर्मं रिक्तो भवति मन्दधीः ।
मुकुन्दनामसंस्कारविहीनस्तु बहिर्मुखः ।।

अथोर्ध्वपुण्ड्रनिर्णयः ।।

शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणा दासलक्षणम् । इति पाद्मे ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरस्य पूज्यत्वमुक्तं पाद्मे उत्तरखण्डे—

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रः सर्वलोकेषु पूजितः ।
विमानवरमारुह्य याति विष्णोः परं पदम् ।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
नाम स्मृत्वा तथा भक्तचा सर्वदानफलं लभेत् ।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति ।

आकल्पकोटि पितरस्तस्य तृप्ता न संशयः ।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु कुर्याच्छ्राद्धं शुभानने ।
कल्पकोटिसहस्त्राणि वैकुण्ठे वासमाप्नुयात् ।।
यज्ञदानतपश्चर्य्याजपहोमादिकं च यत् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरः कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ।। इति ।

ब्रह्मपुराणे—

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् ।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः ।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
श्वपाकोपि विमानस्थो मम लोके महीयते ।। इति ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्वरूपमाह भगवान्सनत्कुमारं प्रति—

नासिकामूलमारभ्य ललाटान्तसमन्वितम् ।
साधिकाङ्गुलान्तरालमधिकं तूत्तरोत्तरम् ।।
रेखाद्वयविनिर्मितं समृजुं हरिमन्दिरम् ।
व्रीहिमात्रं पृथु पार्श्वे चतुरङ्गुललम्बकम् ।। इति ।।

अस्यैव मन्दिराख्यपुण्ड्रस्य संस्थानसादृश्यमाश्रित्य हरिपादाकृतित्वमुक्तं पाद्मे—

एकान्तिनो महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ।
सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ।। इति ।।

अत एव पुण्ड्रस्वरूपद्वयभ्रान्तिनिवृत्तये स्कान्दे मार्गशीर्षमाहात्म्ये तदैक्य स्पष्टमुक्तम्—

एकान्तिनो महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ।
सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ।।
मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्विद्धि हरिमन्दिरम् । इति ।

पाद्मे च—

हरेः पादाकृतिं धार्य्यमूर्ध्वपुण्ड्रं विधानतः ।
मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै हरिमन्दिरम् ।। इति ।

तदैक्यं श्रुतावपि व्याख्यानाद्बोध्यम् । श्रुतिस्तु यजुर्वेदे हिरण्य—केशिशाखायाम्—

'हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्यच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति स मुक्तिभाग्भवति' इति ।।

यः हर्य्युपासकजनः ऊर्ध्वपुड्रं हरेः पादाकृतिं धारयति स परस्य प्रियो भवति । परप्रियत्वे हेतुमाह—आत्मनो हितायेति । आत्मनः केशवादिनाम्नः परमेश्वरस्य स्थापनरूपाय हिताय । पुण्ड्रे क्व हरिस्थापनं भवेदित्याकाङ्क्षायां पुण्ड्रं विशिनष्टि मध्यच्छिद्रमिति । मध्यच्छिद्राभावे श्रिया सह हरिस्थितिः पुण्ड्रे न भवेत् । तदुक्तं ब्रह्मपुराणे—

निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ।
स हि तत्र स्थितं विष्णुं लक्ष्मीं चैव व्यपोहति ।। इति ।

इत्थं हरिपादाकृतिपुण्ड्रस्यैव हरिमन्दिरत्वं श्रुत्योक्तम् । आत्मनो हिताय स्वहितायेत्येव व्याख्याने तु पुनरुक्तिः स्यात्परस्य प्रियो भवतीत्यादिनैव स्वहितस्योक्तत्वात् इति श्रुत्यर्थः ।। हरिमन्दिरे हरिस्थाने मुक्ताकारं बिन्दुं धारयेत् । तदुक्तं पाद्मे—

ऊर्द्धपुण्ड्रं मृदा कुर्यान्मध्ये शून्यं प्रकल्पयेत् ।। इति ।

शून्यं बिन्दुमिति ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धम् ।। गोपीचन्दनादिना पुण्ड्राख्ये हरिमन्दिरे रमासहितस्य विष्णोः बिन्दुरूपेण स्थापनं स्पष्टमुक्तम् कूर्मपुराणे—

कञ्जाकारं समं मध्ये धारयेद्धरिमन्दिरे । इति ।

मया रमया सह वर्त्तते इति समस्तं रमासहितं भगवन्तं पुण्ड्राख्ये

हरिमन्दिरे धारयेत्। ननु एकेन बिन्दुनोभययोर्धारणं कथं सङ्गच्छेत इत्यत्राह–कञ्जाकारमिति। कञ्जाक्षवदाकारो यस्य स कञ्जाकारः सूक्ष्म-शालग्रामस्तद्रूपं बिन्दुं धारयेदित्यर्थः। एक एव शालग्रामः यथा रमा-सहितो विष्णुर्भवति तथैक एव बिन्दुरिति भावः॥ **श्रीनारदोऽप्याह—**

भ्रुवोर्मुक्ताकारसमं धारयेद्धरिमन्दिरे।इति॥ श्रुतिश्च-

'समायुक्तं तिलकम्' इति।

अत एव पुण्ड्रमध्ये बिन्दुधारणं हरिमूर्तिधारणं विष्णुस्थापनं करो-मीति देवप्राधान्यसूचकं वाक्यं वक्तव्यम्। देव्या बिन्द्वात्मकदेवसाहित्येन वर्त्तमानायास्तत्रैवान्तर्भावात्। देवस्य प्राधान्यं देव्याः साहित्यमात्रं च **पाद्मेऽप्युक्तम्—**

उर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशालेषु मनोहरे।

सान्तराले समासीनो हरिस्तत्र श्रिया सह॥ इति।

मनोहर इत्युक्तिर्दर्पणेन सुशोभनमूर्ध्वपुण्ड्रं कर्तव्यमिति सूचयति। माशब्देनैश्वर्याधिष्ठात्री श्रीशब्देन लीलाधिष्ठात्री चोर्ध्वपुण्ड्रमध्यगबिन्द्वा-कारविष्णुसहचरी ज्ञेया। देवीद्वयं च–**'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' इति** श्रुत्या दर्शितम्॥ देवीनिरूपणविस्तरस्तु वेदान्तरत्नमञ्जूषादौ द्रष्टव्यः॥

अथ द्वादशतिलकविधिः।

पाद्मे उत्तरखण्डे–

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूपके॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके॥
श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च कट्यां दामोदरं न्यसेत्॥

तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्द्धनि ।। इति ।।

सर्वेषां वर्णानां पुण्ड्रसङ्ख्या यथाक्रमं स्कान्दे विहिता—

ब्रह्मन्द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततं धरेत् ।
चत्वारि भूभृतां पुत्र पुण्ड्राणि द्वे विशां स्मृतम् ।।
एकं पुण्ड्रञ्च नारीणां शूद्राणां च विधीयते । इति ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं विनाऽनुष्ठितस्यापि यज्ञादेर्नैष्फल्यमुक्तम् पाद्मे—

यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत् ।
तत्सर्वं राक्षसं सत्यं नरकं घोरमाप्नुयात् ।। इति ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणकाल उक्तः पाद्मे—

मत्पूजाहोमकाले च सायं प्रातः समाहितः ।
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं भयापहम् ।। इति ।।

तत्राङ्गुलिनियमः स्मृतौ—

अनामिका कामदोक्ता मध्यमायुःकरी भवेत् ।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षसाधनी ।। इति ।।

तिर्यक् पुण्ड्रं नैव कर्त्तव्यम् । तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

तिर्यक् पुण्ड्रं न कुर्वीत सम्प्राप्ते मरणेऽपि च ।
नैवान्यन्नाम च ब्रूयात्पुमान्नारायणादृते ।। इति ।।

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं नैव कर्त्तव्यम् तस्य निन्द्यत्वमुक्तं स्कान्दे—

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ।
तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः ।। इति ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं भस्मना चन्दनेन वा न कर्त्तव्यम् । तदुक्तं हारीते

न कदाचिन्मृदा तिर्यक् न्यसेदूर्ध्वं न भस्मना ।
उभयं चन्दनेनैव वर्तुलं न कदाचन ।।

ब्राह्मणेनैव मृद्धार्या न भस्म न च चन्दनम् । इति ।।

हरिनिवेदितं चन्दनं च महताऽऽदरेण मस्तकादिषु नाभिपर्यन्तेषु अङ्गेषु धार्यमेव । तदुक्तं ब्राह्मे—

शालग्रामशिलालग्नं चन्दनं धारयेत्सदा ।
सर्वाङ्गेषु महाशुद्धिसिद्धये कमलासन ! ।। इति ।।

हरिधूपमेषभूतं भस्मापि हरिभक्तेन धार्यमेव महताऽऽदरेण मस्तकाद्यङ्गेषु तन्माहात्म्यमुक्तं भविष्योत्तरपुराणे—

यस्याङ्गं धूपशेषेण मार्ज्जितं प्रत्यहं हरेः ।
ललाटं धूपपुण्ड्रं वा यमस्यापि यमोहि सः ।।
धारको धूपशेषस्य यत्र तिष्ठति मत्प्रियः ।
तत्प्रयागसमं विद्धि त्रिवेण्या सदृशो हि सः ।।
धारिणं धूपशेषस्य यो निन्दति नराधमः ।
स यमस्य वशे गन्ता मद्द्रोही भविता नरः ।। इति ।।

हरिप्रसादभूतेन चन्दनेन धूपशेषेण च मस्तकादीन्यङ्गानि विलेपयेदूर्ध्वपुण्ड्रं तु मृदैव कुर्यात् ।। धूपपुण्ड्रमित्यस्य धूपयुक्तं धूपशेषबिन्दुयुक्तपुण्ड्रमित्यर्थः, शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपः ।।

अथोर्ध्वपुण्ड्रधारणार्थं मृद्द्रव्यमुक्तं गरुडपुराणे—

तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं यः करोति दिने दिने ।
तस्यावलोकनात्पापं याति वर्षकृतं नृणाम् ।। इति ।

पाद्मे—

पर्वतादौ नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये ।
सिन्धुतीरे च वल्मीके हरिक्षेत्रे विशेषतः ।।
विष्णोः पादोदकं यत्र प्रवाहयति नित्यशः ।
पुण्ड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयात्तत्र मृत्तिकाम् ।।
श्रीरङ्गे वेङ्कटाद्रौ च श्रीकूर्मे द्वारके शुभे ।

प्रयागे नारसिंहाद्रौ वाराहे तुलसीवने ।।
गृहीत्वा मृत्तिकां भक्त्या विष्णुपादजलेन हि ।
धृत्वा पुण्ड्राणि चाङ्गेषु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् । इति ।

सामान्यत उक्त्वा सर्वोत्तमां मृदमाह तत्रैव—

यत्तु दिव्यं हरेः क्षेत्रं तत्रैव मृदमाहरेत् ।
ब्रह्मघ्नो वाऽथ गोघ्नो वा हेतुकः सर्वपापकृत् ।।
गोपीचन्दनसम्पर्कात्पूतो भवति तत्क्षणात् ।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः ।।
गोपीमृत्तुलसी शङ्खः शालग्रामः सचक्रकः ।
गृहेपि यस्य पञ्चैते तस्य पापभयं कुतः ।। इति ।।

गारुडे श्रीनारद आह—

यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां
करे समादाय ललाटके बुधः ।
करोति नित्यं त्वथ चोर्ध्वपुण्ड्रकं
क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत् ।।
क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं
श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम् ।
कृत्वा ललाटे यदि गोपिचन्दनं
प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽक्षयम् ।। इति ।

काशीखण्डे यम आह—

दूता ! शृणुत यद्भालं गोपीचन्दनलाञ्छितम् ।
ज्वलदिन्धनवत्सोऽपि दूरे त्याज्यः प्रयत्नतः ।। इति ।

स्कान्दे च—

शङ्खचक्राङ्किततनुः शिरसा मञ्जरीधरः ।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः ।। इति ।

श्रुतिश्च गोपीचन्दनोपनिषदि—

गोपीचन्दनपङ्केन ललाटे यस्तु लेपयेत् ।
एकदण्डी त्रिदण्डी वा स वै मोक्षं समश्नुते ।।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गे जपहोमादिकं कृतम् ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति विधानेन विशेषतः ।।

वासुदेवोपनिषदि च—

ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामनुत्तमम् ।
गोपीचन्दनवारीस्थमूर्ध्वपुण्ड्रं विधीयते ।।

किञ्च गोपीचन्दनस्य भगवत्प्रियत्वे ब्रह्मादिसेवितत्वं च श्रुत्या-दर्शितम्—

'तदुहोवाच भगवान्वासुदेवः वैकुण्ठस्थानोद्भवं मम प्रीति-करं मम भक्तैर्ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिन-मालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनात् गोपीचन्दनमाख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थादिसंस्थितं शङ्खचक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसा-धनं भवति' । इति ।।

गोपीचन्दनोल्लङ्घने दोषमाह वाष्कलः—

यो मोहाल्लङ्घयेद्गोपीचन्दनं मनसापि वा ।
वादेन वा स पापीयां गतिमाप्नोत्यसंशयम् ।।

गोपीचन्दनं नमस्कृत्य प्रार्थयेत्—

गोपीचन्दन ! पापघ्नविष्णुदेहसमुद्भव ! ।
चक्राङ्कित ! नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव ।।

अथ शङ्खचक्रादिधारणमप्यावश्यकमेव तदुक्तं पाद्मे—

अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा ।
तथैवेदं ब्राह्मणस्य शङ्खचक्रादिधारणम् ।। इति ।

बाराहे विष्णुरहस्ये च—

चक्रादिधारणं पुंसां परसम्बन्धवेदनम् ।
पातिव्रतनिमित्तं हि वलयादिविभूषणम् ॥

स्मृतौ—

अङ्कितः शङ्खचक्राभ्यामुभयोर्बाहुमूलयोः ।
समर्च्चयेद्धरिं नित्यं नान्यथा पूजनं भवेत् ॥

गारुडे—

सर्व्वकर्म्माधिकारश्च शुचीनामेव चोदितः ।
शुचित्वं च विजानीयान्मदीयायुधधारणात् ॥

मात्स्ये—

चक्राङ्कितः सदा तिष्ठेन्मद्भक्तः पाण्डुनन्दन ! ॥ इति ।

पुनस्तत्रैव—

मच्चक्राङ्कितदेहो यो मद्भक्तो भुवि दुर्ल्लभः ।
नैवाप्नोति वशं मृत्योरप्याज्ञाभङ्गकृन्नरः ॥

पाद्मे—

चक्रं वा शङ्खचक्रे वा तथा पञ्चायुधानि वा ।
धारयित्वैव विधिवद्ब्रह्मकर्म समाचरेत् ॥

वाराहे सनत्कुमारः—

कृष्णायुधाङ्कितो देहो गोपीचन्दनमृत्स्नया ।
प्रयागादिषु तीर्थेषु स गत्वा किं करिष्यति ॥

पाद्मे—

कृत्वा काष्ठमयं बिम्बं कृष्णशस्त्रैश्च चिह्नितम् ।
यो ह्यङ्कयति चात्मानं तत्समो नास्ति वैष्णवः ॥
गोपीचन्दनमृत्स्नाभिर्लिखितो यस्य विग्रहः ।
शङ्खचक्रादिपद्मं वा देहे तत्र वसेद्धरिः ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मवाक्यम्—

कृष्णायुधाङ्कितो देही भक्त्या योऽर्चयते हरिम् ।
फलमाप्नोति सन्दिग्धं यथेच्छति ततोऽधिकम् ।।
गोपीचन्दनतो नित्यं लाञ्छितो यस्य विग्रहः ।
शङ्खचक्रादिपद्मैर्वा देहे तस्य वसेद्धरिः ।।
दृष्ट्वा चक्राङ्कितं मर्त्यं मरणे पर्य्युपस्थिते ।
यमदूताः प्रणश्यन्ति आगच्छन्ति हरेर्गणाः ।।

वामने—

लीलयापि लिखेद्यस्तु बाहुमूले सुदर्शनम् ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमां गतिम् ।।
धारयेद्विष्णुभक्तस्तु चक्रं बाहौ तु दक्षिणे ।
वामे तु शङ्खराजानं वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।।

अन्यत्र भगवद्वाक्यम्—

ममावताराचिह्नानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे ।
मर्त्यो मर्त्यो न विज्ञेयो स नूनं मामकी तनुः ।।
यावच्छङ्खश्च पद्मं च गदा चक्रं च तिष्ठति ।
देहे भवेन्मुहूर्त्तानि फलं गोकोटिदानजम् ।। इति ।

महोपनिषदि—

दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ।
सव्ये तु शङ्खं बिभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ।। इति ।

वृद्धमनुः—

यज्ञोपवीतवद्धार्याः शङ्खचक्रादयस्तथा ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण क्षत्रियस्य विशेषतः ।।

शाण्डिल्यस्मृतावपि—

पशुपुत्रादिकं सर्वं गृहोपकरणानि च ।
अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ।। इति ।

ब्रह्माण्डे मोक्षधर्मे—

ब्रह्मचारी गृहस्थोऽपि वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
अवश्यं धारयेच्चक्रमग्नितप्तमतन्द्रितः ।। इति ।

नारदीयपञ्चरात्रे च—

द्वादशारं तु षट्कोणं वलयत्रयसंयुतम् ।
हरेः सुदर्शनं तप्तं धारयेत्तद्विचक्षणः ।।

यजुर्वेदे कठशाखायाम्—

'धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी' इत्यादि ।

सामवेदे मैत्रावरुणशाखायाम्—

पवित्रमित्यग्निः अग्निर्वै सहस्रारः सहस्रारो नेमिः ।
नेमिना तप्ततनुर्ब्राह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति ।।

आथर्वणे—

एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिह्नैरङ्किता लोके सुभगा भवामः ।
तद्विष्णोः परमं पदं ये तु गच्छन्ति लाञ्छताः ।। इति ।

ऋग्वेदे वाष्कलसंहितायाम्—

चक्रं बिभर्ति वपुषाऽभितप्तं
बलं देवानाममितस्य विष्णोः ।
स एति नाकं दुरितानि विधूय
प्रयान्ति यद्यतयो वीतरागाः ।। इति ।।

शङ्खादिचिह्नरहितानां निन्दोक्ता भरद्वाजसंहितायाम्—

शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैश्चिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ।
रहितः सर्वधर्मेभ्यः प्रच्युतो नैनमाप्नुयात् ।।

आदित्यपुराणे—

शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम् ।
गर्दभं सुसमारोप्य राजा राष्ट्रात्प्रवासयेत् ।।

विष्णुस्मृतौ—

यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु ।
तथाऽचक्राङ्कितो विप्रः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।। इति ।।

नारदीये—

श्रीकृष्णचक्राङ्कविहीनगात्रः
श्मशानतुल्यः पुरुषोऽथ नारी ।
दृष्टवा नरस्तं नृपते ! सवासाः
स्नात्वा प्रसर्पेद्धरिमङ्गलाय ।। इति ।।

शङ्खाद्यङ्कितस्य पूज्यत्वमुक्तं ब्रह्माण्डे महेश्वरेणोमां प्रति—

शङ्खचक्राङ्कितं भक्त्या यः पूजयति मानवः ।
स साक्षाद्विष्णुसामीप्यं लभते नात्र संशयः ।।
चक्राङ्किताय विप्राय नित्यमन्नं ददाति यः ।
असङ्ख्यातानि वर्षाणि विष्णुलोके महीयते ।।

वाराहे—

म्लेच्छदेशेऽशुभे वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति ।
योजनानि तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुन्धरे ।।

एवं संमानने गुणमुक्त्वा तन्निन्दायां दोषमाह—

चक्राङ्कितभुजं मर्त्यं यस्तु निन्दति मूढधीः ।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ।। इत्यादि ।।

एवं शीततप्तमुद्राप्रतिपादकानि वाक्यानि बहूनि सन्ति विस्तरभयान्नोक्तानि । तत्र गोपीचन्दनाक्तशङ्खचक्रादिधारणपञ्चसंस्कारवेलायां गुरुहस्तात्प्राप्योर्ध्वपुण्ड्रवन्नित्यं कर्तव्यम्—

नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्य विग्रहः ।
पापकोटिशतं दग्धं तस्मिन्दृष्टे भवेत्सदा ।। इति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

वृत्रं हत्वा गताः देवाः सुस्थानं तु मुदान्विताः ।
ततःप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे देवा मुनीश्वराः ।।
चिह्नं कृष्णायुधादीनां नित्यं कुर्वन्त्यतन्द्रिताः ।। इति ।
पद्मपुराणे च नित्यमिति पदोपादानात् ।

तप्तमुद्राधारणं तु द्वारकायामेव तदुक्तं प्रह्लादसंहितायां तप्तचक्राद्यङ्कनप्रसङ्गे भगवता—

स्वकीयशिष्यद्वारैव कलिदोषनिवृत्तये ।
स्थापितानि द्वारवत्यां कुमारैः सम्प्रदायतः ।।

पाद्मे रुक्माङ्गदं प्रति श्रीमन्नारदवचनं च—

अग्नितप्तं सदा धार्य्यं द्वारवत्यां विचक्षणैः ।
नान्यस्थाने जातु राजन् ! सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।।

विष्णुयामले च—

शङ्खं चक्रं गदां पद्ममग्नितप्तं विशेषतः ।
धारणं द्वारवत्यां हि वैष्णवानां विधीयते ।।

द्वारवत्यां तप्तमुद्राप्रदः परमगुरुः श्रीहरिदेवातस्तन्मुद्राधारणे गुरोरसन्निहितत्वेऽपि न क्षतिरित्यभिप्रायेणोक्तम् बृहन्नारदीये—

चतुर्थं द्वारकास्थानं मद्धाम सुरसेवितम् ।
तत्राहं हेतिना साध्वि तापयामि तनुं नृणाम् ।। इति ।

किञ्च—

अर्थे कामे च धर्मे च मोक्षे च भरतर्षभ ! ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।। इति ।
महाप्रमाणभूते महाभारते द्वारावतीविषयक एव ।

वनपर्वणि हरिवंशे च—

न चामुद्रोऽभिनिर्याति न चामुद्रः प्रवेश्यते ।
वृष्ण्यन्धकपुरे राजंस्तथा सौभसमागमे ।।

इत्ययं श्लोकः पठितः ।

कुमारः—

शयन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च ।
शङ्खचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः ।।

चक्रतीर्थे--द्वारकास्थे । स्कान्दे कृष्णः—

दीक्षाकाले शयिन्यां च बोधन्यां च यथाविधि ।
द्वारकायां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः ।। इति ।

तद्विधिः—

एह्येहि त्वं सहस्त्रार चक्रराज सुदर्शन ।
यज्ञभागं प्रगृह्णीष्व पूजां चैव नमोऽस्तु ते ।
एह्येहि त्वं गदे! देवि! कौमोदक्यायुधेश्वरि! ।।
यज्ञभागं प्रगृह्णीष्व पूजां चैव नमोऽस्तु ते ।।
एह्येहि त्वं महापद्म ! सदा श्रीकेशवप्रिय ! ।
यज्ञभागं प्रगृह्णीष्व पूजां चैव नमोस्तुते ।। इत्यावाह्य

सम्पूज्य वक्ष्यमाणैर्मन्त्रैर्गोपीचन्दनार्द्रैश्चक्रादिभिरङ्कयेत् ।।

तप्तमुद्राधारणविधिः श्रीमदौदुम्बराचार्यैर्दर्शितः ।

तथाहि—

तत्रायं विधिरादौ तु मुद्राङ्कत्वेन माधवम् ।
षोडशोपस्करैरिष्ट्वा शङ्खचक्रे प्रपूजयेत् ।।
निर्मिते सुप्रतिष्ठया निवेदितोपहारकैः ।
प्रणमेदनेन मन्त्रेण कृष्णप्रसादपूजिते ।।
सुदर्शन ! नमोऽस्तु ते ज्ञानध्वान्तविदारण! ।
पाञ्चजन्य ; नमोऽस्तु ते प्रपन्नभयभञ्जन ; ।।
सत्संस्कारोक्तविधिना स्थाप्याग्निं मूलमन्त्रतः ।
अष्टोत्तरशतेनाष्टाविंशत्या वाऽभिमन्त्र्य च ।।

चक्रं तु कामगायत्र्या प्रोक्षयेदुपगृह्य तत् ।
ततोऽग्नौ चक्रमास्थाप्य प्रार्थयेन्मनुना सुधीः ।।
सुदर्शन ! महाबाहो ! सूर्यकोटिसमप्रभ ! ।
अज्ञानान्धस्य मे नित्यं विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ।।
मनुनानेन चादाय तद्गायत्रीं समुच्चरेत् ।
सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि ।।
तन्नश्चक्रं प्रचोदयादित्यानम्य रमापतिम् ।
ततो गुरुं च तद्धस्ताद्दक्षिणे भुजमूलके ।।
चक्रं लायात्तदलाभे निजेतिह्यास्थितेः सतः ।
स्वयं वाऽन्यान्यतो सत ऐतिह्यधर्मरक्षकात् ।।
ततः प्रोक्ष्य दरं कामगायत्र्याऽग्नौ निधाय च ।
पाञ्चजन्यनिजध्वानध्वस्तपातकसञ्चय ! ।।
पाहि मां पापिनं घोरं संसारार्णवपातिनम् ।
इति प्रार्थ्य च गायत्रीमादायोच्चारयेद्दरम् ।।
पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि ।
तन्नः शङ्खः प्रचोदयादिति शङ्खं च धारयेत् ।।
वामबाहोर्मूल एवं गदापद्मप्रभृतिकम् ।
सम्प्रदायानुसारेण व्राह्ये चतुःसनस्तथा ।।
चक्रं च दक्षिणे बाहौ शङ्खं वामेपि दक्षिणे ।
गदां वामे गदाद्धस्तात्पुनश्चक्रं च धारयेत् ।।
शङ्खोपरि तथा पद्मं पुनः पद्मं च दक्षिणे ।
उभयोर्नामसुद्रा मे सम्प्रदायानुसारतः ।।
सर्वाङ्गं चिन्हितं यस्य शस्त्रैर्नारायणोद्भवैः ।
प्रवेशो नास्ति पापस्य कवचं तस्य वैष्णवम् ।। इति ।
विष्णुकवचतथोक्तेः सर्वाङ्गेष्वपि वैष्णवैः ।

धारणीयानि शस्त्राणि स्वसम्बन्धिषु च वै ततः ।।
वैष्णवत्वमुपदधत्पश्वादिष्वपि धारयेत् ।

तथा वाराहे—

अङ्कयेत्तप्तचक्राद्यैरात्मनो बाहुमूलयोः ।
कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिष्वपि सम्पदि ।। इति ।

तत्र 'कृत्वा काष्ठमयं बिम्बम्' इति पूर्वोक्तपाद्मवचनसूचितैः काष्ठमयैर्गोपीचन्दनलिप्तैश्चक्रपूवः दक्षबाहुमूलादिक्रमेण शिष्यमङ्कयेत् ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यं आयसमेव वा ।।
चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयेत्तु विचक्षणः ।। इति ।

नवरत्नप्रश्नपञ्चरात्रवाक्यसूचितानां सुवर्णादिमयानां तूभयत्रोपयोगः । 'नान्यस्थाने जातु राजन्' इत्यनेन श्रीनारदवाक्येन शयन्यादियोगविशेषो द्वारवत्यामिति गम्यते ।

अथ वैष्णवैस्तुलसीधारणमपि कर्त्तव्यम् । ननु—

भोजने मैथुने चैव मलमूत्रविसर्ज्जने ।
तुलसी धार्यते यस्य विष्णुद्रोही भवेन्नरः ।।

इत्यादिवाक्यैर्भोजनादिपञ्चस्थानेषु तुलसीधारणं न कर्त्तव्यमिति चेन्न । तादृशवाक्यैर्लम्बायमानमालाधारणं तुलसीदलमालाधारणं च निषिध्यतेऽन्यथा बहुभिर्वक्ष्यमाणैर्वाक्यैरल्पवाक्यानां बाध्ययत्वमेव स्यात् । तथाहि पाद्मे स्कान्दे च—

यज्ञोपवीतवद्धार्या सदा तुलसिमालिका ।
नाशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ।।

पाद्मे—

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमालाः
ये बाहूमूलपरिचिह्नतशङ्खचक्राः ।
ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्राः ।।

ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ।।
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या ।
स्वर्गे स्थितास्तत्पितरोऽपि धन्या
येषां कुले वैष्णवनामधेयम् ।।

स्कान्दे—

धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा ।
दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः ।। इति ।

विष्णुधर्मे भगवान्नाह—

तुलसी काष्ठमालाञ्च कण्ठस्थां वहते तु यः ।
अप्यशौचो ह्यनाचारो मामेवैति न संशयः ।।

नारदपञ्चरात्रे च—

अशौचे चाप्यनाचारे कालाकाले च सर्वदा ।
तुलसीमालिकां धत्ते स याति परमां गतिम् ।।

गारुडे—

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ।
पितॄणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं कलौ ।।

प्रह्लादसंहितायाम्—

तुलसीदलमालां तु कृष्णोत्तीर्णां तु यो वहेत् ।
यत्र तत्राश्वमेधानां दशानां लभते फलम् ।।
निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।।
यो वहेच्च नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ।
कण्ठलग्ना तु या माला सा तु कण्ठी प्रकीर्त्तिता ।।
तस्या धारणमवश्यं कर्त्तव्यं द्विजसत्तमैः ।

स्कान्दे च—

संनिवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ॥
क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेण मन्त्रिताम् ।
गायत्र्या चाष्टकृत्वोच्चैर्मन्त्रितां धूपितां च ताम् ॥

पुनर्गुणा उक्ताः स्कान्दे—

तुलसीकाष्ठसम्भूतां मालां यो वहते नरः ।
तारितं च कुलं तेन यावद्रामकथा क्षितौ ॥
तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः ।
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्भूतं यथा नरः ॥

तदधारणे दोष उक्तस्तत्रैव—

न ये बिभ्रति वै मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
ते तु बिभ्यति हि यमाद्दण्डहस्तात्कुमेधसः ॥

गारुडे पाद्मे च—

धारयन्ति न ये मालां हेतुका पापबुद्धयः ।
नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः ॥

स्नानभोजनकाले तु तुलसीधारणे फलमुक्तं स्कान्दे—

तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत् ।
पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर ॥
तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा भुङ्क्ते द्विजोत्तमः ।
सिक्थे सिक्थे स लभते वाजिमेधफलं मुने ॥

पाद्मे च—

स्नानकाले तु यस्याङ्गे दृश्यते तुलसी शुभा ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातं तेन न संशयः ॥
तुलसीमालिकां ध्यात्वा यो भुङ्क्ते गिरिनन्दिनि ।
सिक्थे सिक्थे स लभते वाजपेयफलाधिकम् ॥

बहुना किमिहोक्तेन श‍ृणु त्वं वरवर्णिनि ।
विडुत्सर्गादिकाले च न त्याज्या कण्ठमालिका ।।

अन्तकालेपि यस्याङ्गे तुलसीमालिका स्पृशेत् ।
तस्य देहोद्भवं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।

कण्ठे शिरसि बाहुभ्यां कर्णयोः करयोस्तथा ।
बिभृयात्तुलसीं यस्तु स ज्ञेयो विष्णुना समः ।।

यत्कण्ठे तुलसी नास्ति ते नरा मूढमानसाः ।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पीयूषं रुधिरं भवेत् ।।

अतः सर्वेषु कालेषु धार्या तुलसीमालिका ।।
क्षणार्द्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः ।।

स्कान्दोक्तप्रकारेण तुलसीमालां पञ्चगव्येन संस्कृतां पुष्पधूपादिभिरर्चितां हरये निवेदितां सम्प्रार्थ्य कण्ठलग्नां कुर्यात् । दीक्षाकाले श्रीगुरुहस्तेनान्यत्र स्वहस्तेनापि ।

प्रार्थनामन्त्रः—

तुलसीकाष्ठसम्भूते माले ! कृष्णजनप्रिये ! ।
बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् ।।
यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णुजनप्रिया ।
तथा मां कुरु देवेशि ! नित्यं ! विष्णुजनप्रियम् ।। इति ।।

अत्र हरिमन्दिरे स्वतःसिद्धे सति दीक्षार्थं भूशोधनमण्डपादिरचनादिकं नोक्तम् । सत्यामपेक्षायां तु गौतमीयतन्त्रादिषु क्रमदीपिकाप्रभृतिषु च ग्रन्थेषु तद्द्रष्टव्यम् ।

इतिश्रीमन्निम्बार्कचरणचिन्तकशुकसुधीसङ्गृहीते
स्वधर्मामृतसिन्धौ तृतीयस्तरङ्गः ।। ३ ।।

अथ पूर्वाचार्यैर्विस्तरतो निरूपितमथेहापि सङ्क्षेपतः साधनषट्कं निरूप्यते । तत्र मुमुक्षुणाऽन्तःकरणशुद्ध्यर्थं यथाधिकारं कर्म कर्त्तव्यमेव

विद्योत्पत्तये—'सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत्' इति सूत्रात् ।

सूत्रार्थस्तु वेदान्तकौस्तुभे द्रष्टव्यः ।

तमेतमात्मानं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा ।

इत्यादिश्रुतेः ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः । इति स्मृतेश्च ।

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारणम् ।।

इति विष्णुपुराणवचनात् ।

तत्र काम्यं कर्म निषिद्धवन्मुमुक्षुणा त्याज्यमेव । निष्कामं नित्यं नैमित्तिकं च भगवद्भजनाविरोधि तु कर्त्तव्यमेव ।।

मोक्षार्थी न प्रवर्त्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः ।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ।।

इति मनुस्मृतेः ।

श्रीमद्भागवते—

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।। इति ।।

मुमुक्षुणा त्रिवर्गसाधनं कर्म नानुष्ठेयं मोक्षसाधनं तु कर्मानुष्ठेयमित्यर्थः ।

भगवत्कैङ्कर्याभिनिवेशेन कदाचित्क्रियालोपेऽपि न दोषस्तथा च पाद्मे भगवद्वचनं—

मत्कर्म कुर्वतां पुंसां क्रियालोपो भवेद्यदि ।
तेषां कर्माणि कुर्वन्ति तिस्रः कोट्यो महर्षयः ।। इति ।

विस्तरस्तु वेदान्तरत्नमञ्जूषायां द्रष्टव्यः ।।

भगवद्गुणस्वरूपादिविषयकं ज्ञानं मोक्षहेतुभूतं मुमुक्षुणा शास्त्राचार्यानुग्रहात्सम्पादनीयम् ।

तरति शोकमात्मवित् । ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

इति श्रुतिभ्यः ।

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वकर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ।।
श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।
भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।। इत्यादि-स्मृतिश्च ।।

अथ वैराग्यमाह श्रुतिः—

'अथ किं प्रजया करिष्यामो येषां नायमात्मेति । एतद्वैषणवाः पूर्वे विद्वांसो न जुहवाञ्चक्रिरे । न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुरिति । यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः । परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायात्' इति च ।

महाभारते—

यावन्तो विषया लोके हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वं तस्मादुपशमं ब्रजेत् ।।

षड्विधस्त्यागः सनत्सुजातेनोक्तः—

श्रेयांस्तु षड्‌विधस्त्यागः श्रियं प्राप्य न हृष्यति ।
इष्टापूर्त्तं द्वितीयः स्यान्नित्यं वैराग्ययोगतः ।।
कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः ।
अप्रिये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति ।।
इष्टान्पुत्रांश्च दारांश्च न प्रयाचेत्कदाचन ।
अर्हते याचमानाय प्रदेयं तच्छुभं भवेत् ।।

श्रीमद्भागवते द्वितीयस्कन्धे–

अतः कविर्नामसु यावदर्थः
स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ।
सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत भूयः
परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ।।

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैः
बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ।
सत्यञ्जलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ।।

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्‌घ्रिपाः परभृतः सरितोप्यशुष्यन् ।
रूद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान् ।।
कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ।।

दशमे–

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैः
त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि नित्यसुखे ।
इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ।।

वैरागप्रकारः शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे (अ० १७५) प्रपञ्चित–

स्तथाहि—

युधिष्ठिर उवाच—

अतिक्रामति कालेस्मिन् सर्वभूतक्षयावहे ।
किं श्रेयः प्रतिपद्येत तन्मे ब्रूहि पितामह ! ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितुः पुत्रेण संवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ! ॥
द्विजातेः कस्यचित्पार्थ ! स्वाध्यायनिरतस्य वै ।
बभूव पुत्रो मेधावी मेधावी नाम नामतः ॥
सोऽब्रवीत्पितरं पुत्रः स्वाध्यायकरणे रतम् ।
मोक्षधर्मार्थकुशलो लोकतत्त्वविचक्षणः ॥

पुत्र उवाच—

धीरः किंस्वित्तात ! कुर्यात्प्रजानन्
क्षिप्रं ह्यायुर्भ्रश्यते मानवानाम् ।
पितस्तदाचक्ष्व यथार्थयोगं
ममानुपूर्व्या येन धर्मं चरेयम् ॥

पितोवाच—

वेदानधीत्य ब्रह्मचर्येण पुत्र !
पुत्रानिच्छेत्पावनार्थं पितॄणाम् ।
अग्नीनाधाय विधिवच्चेष्टयज्ञो
वनं प्रविश्याथ मुनिर्बुभूषेत् ॥

पुत्र उवाच—

एवमभ्याहते लोके समन्तात्परिवारिते ।
अमोघासु पतन्तीषु किं धीर इव भाषसे ॥

पितोवाच—

कथमभ्याहतो लोकः केन वा परिवारितः ।
अमोघाः काः पतन्तीह किं नु भीषयसीव माम् ।।

पुत्र उवाच–

मृत्युनाभ्याहतो लोको जरया परिवारितः ।
अहोरात्राः पतन्त्येते ननु कस्मान्न बुद्धचसे ।।
अमोघा रात्रयश्चापि नित्यमायान्ति यान्ति च ।
यदाहमेतज्जानामि न मृत्युस्तिष्ठतीति ह ।।
सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये ज्ञानेनापि हितश्चरन् ।
रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं यदा ।।
तदैव वन्ध्यं दिवसमिति विद्याद्विचक्षणः ।
गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा ।।
अनवाप्तेषु कामेषु मृत्युरभ्येति मानवम् ।
पुष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्र गतमानसम् ।।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ।।
अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै सम्प्रकर्षति ।
श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् ।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति ।।
युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम् ।
कृते धर्मे भवेत्कीर्तिरिह प्रेत्य च वै सुखम् ।।
मोहेन हि समाविष्टः पुत्रदारार्थमुद्यतः ।
कृत्वा कार्यमकार्यं वा पुष्टिमेषां प्रयच्छति ।।
तं पुत्रपशुसम्पन्नं व्यासक्तमलसं नरम् ।
सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव मृत्युरादाय गच्छति ।।

सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम्।
व्याघ्रः पशुमिवादाय मृत्युरादाय गच्छति।
इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्॥
एवमीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे।
कृतानां फलमप्राप्तं कर्मणां कर्मसंज्ञितम्।
क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति।
दुर्बलं बलवन्तं च शूरं भीरुं जडं कविम्॥
अप्राप्तं सर्वकामार्थान् मृत्युरादाय गच्छति।
मृत्युर्जरा च व्याधिश्च दुःखं चानेककारणम्॥
अनुषक्तं यदा देहे किं स्वस्थ इव तिष्ठसि।
जातमेवान्तकोऽन्ताय जरा चान्वेति देहिनम्॥
अनुषक्ता द्वयेनैते भावा स्थावरजङ्गमाः।
मृत्योर्वा गृहमेतद्धै या ग्रामे वसतो रतिः॥
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः।
निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः॥
छित्वैतां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः।
न हिंसयति यः प्राणान् मनोवाक्कायहेतुभिः।
जीवितार्थापनयनैः कर्मभिर्न स बध्यते।
न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित्प्रबाधते॥
ऋते सत्यमसत्याद्यं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम्।
तस्मात्सत्यव्रताचारः सत्ययोगपरायणः॥
सत्यागमः सदा दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत्।
अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम्॥
मृत्युरापद्यते मोहात्सत्येनापद्यतेऽमृतम्।
सोहं ह्यहिंस्रः सत्यार्थी कामक्रोधबहिष्कृतः॥

समदुःखसुखः क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमर्त्यवत् ।
शान्तियज्ञरतो दान्तो ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः ।।
वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युदगायने ।
पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति ।।
अन्तवद्भिरिव प्राज्ञः क्षेत्रयज्ञैः पिशाचवत् ।
यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा ।।
तपस्त्यागश्च योगश्च स वै सर्वमवाप्नुयात् ।
नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ।
आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा ।।
आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा ।

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च ।
शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्ज्जवं
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ।।
किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते
किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताः पिता च ।।

भीष्म उवाच—

पुत्रस्य तद्वचः श्रुत्वा यथाऽकार्षीत्पिता नृप ! ।
तथा त्वमपि वर्त्तस्व सत्यधर्मपरायणः ।।

पुनस्तत्रैव (अ० १७६) युधिष्ठिर उवाच—

धनिनोऽथाधना ये च वर्त्तयन्ते स्वतन्त्रिणः ।
सुखदुःखागमस्तेषां कः कथं वा पितामह ! ।

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शम्पाकेनेह मुक्तेन गीतं शान्तिगतेन च ।।
अब्रवीन्मां पुरा कश्चिद्ब्राह्मणस्त्यागमास्थितः ।
क्लिश्यमानः कुदारेण कुचैलेन बुभुक्षया ।।
उत्पन्नमिह लोके वै जन्मप्रभृति मानवम् ।
विविधान्युपवर्त्तते दुःखानि च सुखानि च ।।
तयोरेकतरे मार्गे यदेनमभिसंनयेत् ।
न सुखं प्राप्य संहृष्येन्नासुखं प्राप्य संज्वरेन् ।
न वै चरसि यच्छ्रेय आत्मनो वा यदीशिषे ।
अकामात्मापि हि सदा धुरमुद्यम्य चैव ह ।।
अकिञ्चनः परिपतन् सुखमास्वादयिष्यसि ।
अकिञ्चनः सुखं शेते समुत्तिष्ठति चैव ह ।।
अकिञ्चनं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम् ।
अनमित्रपथो ह्येष दुर्लभः सुलभो मतः ।।
अकिञ्चनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वतः ।
अवेक्षमाणस्त्रीन् लोकान्न तुल्यमिह लक्षये ।।
आकिञ्चन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम् ।
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम् ।।
आकिञ्चन्ये च राज्ये च विशेषः सुमहानयम् ।
नित्योद्विग्न हि धनवान् मृत्योरास्यगतो यथा ।।
नैवास्याग्निर्न चारिष्टो न मृत्युर्न च दस्यवः ।
प्रभवन्ति धनत्यागाद्विमुक्तस्य निराशिषः ।।
तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः ।।

समदुःखसुखः क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमर्त्यवत् ।
शान्तियज्ञरतो दान्तो ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः ।।
वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युदगायने ।
पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति ।।
अन्तवद्भिरिव प्राज्ञः क्षेत्रयज्ञैः पिशाचवत् ।
यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा ।।
तपस्त्यागश्च योगश्च स वै सर्वमवाप्नुयात् ।
नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ।
आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा ।।
आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा ।

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च ।
शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्ज्जवं
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ।।
किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते
किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताः पिता च ।।

भीष्म उवाच—

पुत्रस्य तद्वचः श्रुत्वा यथाऽकार्षीत्पिता नृप ! ।
तथा त्वमपि वर्त्तस्व सत्यधर्मपरायणः ।।

पुनस्तत्रैव (अ० १७६) युधिष्ठिर उवाच—

धनिनोऽथाधना ये च वर्त्तयन्ते स्वतन्त्रिणः ।
सुखदुःखागमस्तेषां कः कथं वा पितामह ! ।

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शम्पाकेनेह मुक्तेन गीतं शान्तिगतेन च ।।
अब्रवीन्मां पुरा कश्चिद्ब्राह्मणस्त्यागमास्थितः ।
क्लिश्यमानः कुदारेण कुचैलेन बुभुक्षया ।।
उत्पन्नमिह लोके वै जन्मप्रभृति मानवम् ।
विविधान्युपवर्त्तते दुःखानि च सुखानि च ।।
तयोरेकतरे मार्गे यदेनमभिसंनयेत् ।
न सुखं प्राप्य संहृष्येन्नासुखं प्राप्य संज्वरेन् ।
न वै चरसि यच्छ्रेय आत्मनो वा यदीशिषे ।
अकामात्मापि हि सदा धुरमुद्यम्य चैव ह ।।
अकिञ्चनः परिपतन् सुखमास्वादयिष्यसि ।
अकिञ्चनः सुखं शेते समुत्तिष्ठति चैव ह ।।
अकिञ्चनं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम् ।
अनमित्रपथो ह्येष दुर्लभः सुलभो मतः ।।
अकिञ्चनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वतः ।
अवेक्षमाणस्त्रीन् लोकान्न तुल्यमिह लक्षये ।।
आकिञ्चन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम् ।
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम् ।।
आकिञ्चन्ये च राज्ये च विशेषः सुमहानयम् ।
नित्योद्विग्न हि धनवान् मृत्योरास्यगतो यथा ।।
नैवास्याग्निर्न चारिष्टो न मृत्युर्न च दस्यवः ।
प्रभवन्ति धनत्यागाद्विमुक्तस्य निराशिषः ।।
तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः ।।

धनवान् क्रोधलोभाभ्यामाविष्टो नष्टचेतनः ।
तिर्यग्गीक्षः शुष्कमुखः पापको भ्रुकुटीमुखः ।।
निर्दशन्नधरोष्ठं च क्रुद्धो दारुणभाषिता ।
कस्तमिच्छेत्परिद्रष्टुं दातुमिच्छति चेन्महीम् ।।
श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो मोहयत्यविचक्षणम् ।
स तस्य चित्तं हरति शारदाभ्रमिवानिलः ।।
तथैनं रूपमानश्च धनमानश्च विन्दति ।
अभिजातोस्मि सिद्धोस्मि नास्मि केवलमानुषः ।।
इत्येभिः कारणैस्तस्य त्रिभिश्चित्तं प्रमाद्यति ।
सम्प्रसक्तमना भोगान्विसृज्य पितृसञ्चितान् ।।
परिक्षीणः परस्वानामादानं साधु मन्यते ।
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानं ततस्ततः ।।
प्रतिषेधन्ति राजानो लुब्धा मृगमिवेषुभिः ।
एवमेतानि दुःखानि तानि तानि हि मानवम् ।।
विविधान्युपपद्यन्ते गात्रसंस्पर्शजान्यपि ।
तेषां परमदुःखानां बुद्धया भैषज्यमाचरेत् ।।
लोकधर्ममवज्ञाय ध्रुवाणामध्रुवैः सह ।
नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव ।
इत्येतद्धास्तिनपुरे ब्राह्मणेनोपवर्णितम् ।।
शम्पाकेन पुरो मह्यं तस्मात्त्यागः परो मतः ।

पुनस्तत्रैव (अ० ३२१) युधिष्ठिर उवाच—

कथं निर्वेदमापन्नः शुको वैयासकिः पुरा ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।।
अव्यक्तव्यक्ततत्त्वानां निश्चयं बुद्धिनिश्चयम् ।

वक्तुमर्हसि कौरव्य ! देवस्याजस्य या कृतिः ।।

भीष्म उवाच–

प्राकृतेन सुवृत्तेन चरन्तमकुतोभयम् ।
अध्याप्य कृत्स्नं स्वाध्यायमन्वशाद्वै पिता सुतम् ।।

श्रीव्यास उवाच–

धर्मं पुत्र निषेवस्व सुतीक्ष्णौ च हिमातपौ ।
क्षुत्पिपासे च वायुं च जय नित्यं जितेन्द्रियः ।।
सत्यमार्जवमक्रोधमनसूयां दमं तपः ।
अहिंसां चानृशंस्यं च विधिवत्परिपालय ।।
सत्ये तिष्ठ रतो धर्मे हित्वा सर्वमनार्जवम् ।
देवतातिथिशेषेण यात्रां प्राणस्य संलिह ।।
फेनमात्रोपमे देहे जीवे शकुनिवत्स्थिते ।
अनित्ये प्रियसंवासे कथं स्वपिषि पुत्रक ! ।।
अप्रमत्तेषु जाग्रत्सु नित्ययुक्तेषु शत्रुषु ।
अन्तरं लिप्समानेषु बालस्त्वं नावबुध्यसे ।।
अहःसु गण्यमानेषु क्षीयमाणे तथायुषि ।
जीविते लिख्यमाने च किमुत्थाय न धावसि ।।
ऐहलौकिकमीहन्ते मांसशोणितवर्द्धनम् ।
पारलौकिककार्येषु प्रसुप्ता भृशनास्तिकाः ।।
धर्माय तेऽभ्यसूयन्ति बुद्धिमोहान्विता नराः ।
अयथागच्छतां तेषामनुयातापि पीड्यते ।।
ये तु तुष्टाः श्रुतिपरा महात्मानो महाबलाः ।
धर्म्यं पन्थानमारूढास्तानुपास्व च पृच्छ च ।।
उपधार्य मतं तेषां बुधानां धर्मदर्शिनाम् ।
नियच्छ परया बुद्धया चित्तमुत्पथगामि वै ।।

अद्यकालिकया बुद्ध्या दूरे श्व इति निर्भयाः ।
सर्वभक्षा न पश्यन्ति कर्मभूमिमचेतसः ।।
धर्मनिःश्रेणिमास्थाय किञ्चित्किञ्चित्समारुह ।
कोषकारवदात्मानं वेष्टयन्नावबुध्यसे ।।
नास्तिकं भिन्नमर्यादं कूलपातमिव स्थितम् ।
वामतः कुरु विश्रब्धो नरं वेणुमिवोद्धतम् ।।
कामं क्रोधं च मृत्युं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ।।
मृत्युनाभ्याहते लोके जरया परिपीडिते ।
अमोघासु पतन्तीषु धर्मपोतेन सन्तर ।।
तिष्ठन्तं च शयानं च मृत्युरन्वेषते यदा ।
निर्वृतिं लभते कस्मादकस्मान्मृत्युनाशितः ।।
सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।।
क्रमशः सञ्चितशिखो धर्मबुद्धिमयो महान् ।
अन्धकारे प्रवेष्टव्यं दीपो यत्नेन धार्यताम् ।।
सम्पतन्देहजालानि कदाचिदिह मानुषे ।
ब्राह्मण्यं लभते जन्तुस्तत्पुत्र परिपालय ।।
ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं न कामार्थाय जायते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्य त्वनुपमं सुखम् ।।

ब्राह्मण्यं वहुभिरवाप्यते तपोभि-
स्तल्लब्ध्वा न रतिपरेण हेलितव्यम् ।
स्वध्याये तपसि दमे च नित्ययुक्तः
क्षेमार्थी कुशलपरः सदा यतस्व ।।
अव्यक्तप्रकृतिरयं कलाशरीरः

सूक्ष्मात्मा क्षणत्रुटिशो निमेषरोमा ।
संवास्यः समबलशुक्लकृष्णनेत्रो
मांसाङ्गो द्रवति वयोहयो नराणाम् ।।
तं दृष्ट्वा प्रसृतमजस्रमुग्रवेगं
गच्छन्तं सततमिहानवेक्षमाणम् ।
चक्षुस्ते यदि न दरप्रणेतृनेयं
धर्मे ते भवतु मनः परं निशम्य ।।
ये चात्र प्रचलितधर्मकामवृत्ताः
क्रोशन्तः सततमनिष्टसम्प्रयोगाः ।
क्लिश्यन्तः परिगतवेदनाशरीरा
बह्वीभिः सुभृशमधर्मकारणाभिः ।।
राजा सदा धर्मपरः शुभाशुभस्य गोप्ता
समीक्ष्य सुकृतिनां दधाति लोकान् ।
बहुविधमपि चरति
प्रविशति सुखमनुपगतं निरवद्यम् ।।
श्वानो भीषणकाया अयोमुखानि वयांसि
बलगृध्रकुलं पक्षिणां च सङ्घाः ।
नरकपने रुधिरपा गुरुवचननुद
मुपरतं विशन्त्यसन्तः ।।
मर्यादानियताः स्वयम्भुवा य इहेमाः
प्रभिनत्ति दशगुणा मनोऽनुगत्वात् ।
निवसति भृशमसुखं पितृविषय-
विपिनमवगाह्य स पापः ।।
यो लुब्धः सुभृशं प्रियानृतश्च मनुष्यः
सततनिकृतिवञ्चनाभिरतिः स्यात् ।

उपनिधिभिरसुखकृत्स परमनिरयगो
भृशमसुखमनुभवति दुष्कृतकर्मा ॥
उष्णां वैतरणीं महानदीमवगाढो-
ऽसिपत्रवनभिन्नगात्रः ।
परशुवनशयो निपतितो
वसति च महानिरये भृशार्त्तः ॥
महापदानि कत्थसे न चाप्यवेक्षसे परम् ।
चिरस्य मृत्युकारिकामनागतां न बुध्यसे ॥
प्रयायतां किमास्यते समुत्थितं महद्भयम् ।
अतिप्रमाथि दारुणं सुखस्य संविधीयताम् ॥
पुरा मृतः प्रणीयसे यमस्य राजशासनात् ।
त्वमन्तकाय दारुणैः प्रयत्नमार्जवे कुरु ॥
पुरा समूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यदुःखवित् ।
तवेह जीवितं यमो न चास्ति तस्य वारकः ॥
पुराभिवाति मारुतो यमस्य यः पुरःसरः ।
पुरैक एव नीयसे कुरुष्व साम्परायिकम् ॥
पुरा स हि क्व एव ते प्रवाति मारुतोऽन्तकः ।
पुरा च विभ्रमन्ति ते दिशो महाभयागमे ॥
श्रुतिश्च संनिरुध्यते पुरा तवेह पुत्रक ।
समाकुलस्य गच्छतः समाधिमुत्तमं कुरु ॥
शुभाशुभे पुरा कृते प्रमादकर्मविप्लुते ।
स्मरन्पुरा न तप्यसे निधत्स्व केवलं निधिम् ॥
पुरा जरा कलेवरं विजर्जरीकरोति ते ।
बलाङ्गरूपहारिणी निधत्स्व केवलं निधिम् ॥
पुरा शरीरमन्तको भिनत्ति रोगसारथिः ।

प्रसह्य जीवितक्षये तपो महत्समाचर ।।
पुरा वृका भयङ्करा मनुष्यदेहगोचराः ।
अभिद्रवन्ति सर्वतो यतस्व पुण्यशीलने ।।
पुरान्धकारमेककोऽनुपश्यसि त्वरस्व वै ।
पुरा हिरण्मयान्नगान्निरीक्षसेऽद्रिमूर्द्धनि ।।
पुरा कुसङ्गतानि ते सुहृन्मुखाश्च शत्रवः ।
विचालयन्ति दर्शनात् घटस्व पुत्र ! यत्परम् ।।
धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चौरतः ।
मृतं च यन्न मुञ्चति समर्जयस्व तद्धनम् ।।
न तत्र संविभज्यते स्वकर्मभिः परस्परम् ।
यदेव यस्य यौतकं तदेव तत्र सोऽश्नुते ।।
परत्र येन जीव्यते तदेव पुत्र ! दीयताम् ।
धनं यदक्षरं ध्रुवं समर्जयस्व तत्स्वयम् ।
न यावदेव पच्यते महाजनस्य यावकम् ।
अपक्व एव यावके पुरा प्रलीयसे त्वर ।।
न मातृपुत्रबान्धवा न संस्तुतः प्रियो जनः ।
अनुव्रजति सङ्कटे व्रजन्तमेकपातिनम् ।।
यदेव कर्म केवलं पुरा कृतं शुभाशुभम् ।
तदेव पुत्र ! सार्थकं भवत्यमुत्र गच्छतः ।।
हिरण्यरत्नसञ्चयाः शुभाशुभेन सञ्चिताः ।
न तस्य देहसंक्षये भवन्ति कार्यसाधकाः ।।
परत्र गामिकस्य ते कृताकृतस्य कर्मणः ।
न साक्षी आत्मना समो नृणामिहास्ति कश्चन ।।
मनुष्यदेहशून्यकं भवत्यमुत्र गच्छतः ।
प्रविश्य बुद्धिचक्षुषा प्रदृश्यते हि सर्वशः ।।

इहाग्निसूर्यवायवः शरीरमाश्रितास्त्रयः ।
त एव तस्य साक्षिणो भवन्ति धर्मदर्शिनः ।।
अहर्निशेषु सर्वतः स्पृशत्सु सर्वचारिषु ।
प्रकाशगूढवृत्तिषु स्वधर्ममेव पालय ।।
अनेकपारिपन्थिके विरूपरौद्रमक्षिके ।
स्वमेव कर्म रक्ष्यतां स्वकर्म तत्र गच्छति ।।
न तत्र संविभज्यते स्वकर्मणा परस्परम् ।
तथा कृतं स्वकर्मजं तदेव भुज्यते फलम् ।।
यथाऽप्सरोगणाः फलं सुखं महर्षिभिः सह ।
तथाप्नुवन्ति कर्मजं विमानकामगामिनः ।।
यथेह यत्कृतं शुभं विपाप्मभिः कृतात्मभिः ।
तदाप्नुवन्ति मानवास्तथा विशुद्धयोनयः ।।
प्रजापतेः सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः ।
व्रजन्ति ते परां गतिं गृहस्थधर्मसेतुभिः ।।
सहस्रशोऽप्यनेकशः प्रवक्तुमुत्सहाम ते ।
अबुद्धिमोहनं पुनः प्रभुर्निनाय यावकम् ।।
गता त्रिरष्टवर्षता ध्रुवोऽसि पञ्चविंशकः ।
कुरुष्व धर्मसञ्चयं वयो हि तेऽतिवर्त्तते ।।
पुरा करोति सोऽन्तकः प्रमादगोऽसुखां चमूम् ।
यथा गृहीतमुत्थितस्त्वरस्व धर्मपालने ।।
यथा त्वमेव पृष्ठतस्त्वमग्रतो गमिष्यसि ।
तथा गतिं गमिष्यतः किमात्मना परेण वा ।।
यदेकपातिनां सतां भवत्यमुत्र गच्छताम् ।
भयेषु साम्परायिकं निधत्स्व केवलं निधिम् ।।
सकूलमूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यसङ्गवान् ।

न सन्ति यस्य वारकाः कुरुष्व धर्मसंनिधिम् ।।
इदं निदर्शनं मया तवेह पुत्र ! साम्प्रतम् ।
स्वदर्शनानुमानतः प्रवर्णितं कुरुष्व तत् ।।
दधाति यः स्वकर्मणा ददाति यस्य कस्यचित् ।
अबुद्धिमोहजैर्गुणैः स एक एव युज्यते ।।
श्रुतं समस्तमश्नुते प्रकुर्वतः शुभाः क्रियाः ।
तदेतदर्थदर्शनं कृतज्ञमर्थसंहितम् ।।
निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति नैतां छिन्दन्ति दुष्कृतः ।।

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते
किं ते पुत्रैः पुत्रक ! यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे ।।

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वाऽकृतम् ।।
अनुगम्य विनाशान्ते निवर्त्तन्ते ह बान्धवाः ।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा ।।
नास्तिकान्निरनुक्रोशान्नरान् न्यायमते स्थितान् ।
वामतः कुरु बिश्रब्धं परं प्रेप्सुरतन्द्रितः ।।
एवमभ्याहते लोके कालेनोपनिपीडिते ।
सुमहद्धैर्यमालम्ब्य धर्मं सर्वात्मना कुरु ।।
अथेमं दर्शनोपायं सम्यक् यो वेत्ति मानवः ।
सम्यक् स्वधर्मं कृत्वेह परत्र सुखमश्नुते ।।

न देहभेदे मरणं विजानतां
न च प्रणाशः स्वनुपालिते पथि ।

धर्मं हि यो वर्द्धयते स पण्डितो
य एष धर्माच्च्यवते स मुह्यति ।।
प्रयुक्तयोः कर्मपथि स्वकर्मणोः
फलं प्रयोक्ता लभते यथा कृतम् ।
निहीकर्मा निरयं प्रपद्यते
त्रिविष्टपं गच्छति धर्मपारगः ।।

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
तथात्मानं समादध्यात् भ्रश्यते न पुनर्यथा ।।
यस्य नोत्क्रामति मतिः स्वर्गमार्गानुसारिणी ।
तमाहुः पुण्यकर्माणमशोच्यं पुत्रबान्धवैः ।।
यस्य नोपहाना बुद्धिर्निश्चये ह्यवलम्बने ।
स्वर्गे कृतावकाशस्य नास्ति तस्य महद्भयम् ।।
तपोवनेषु ये जातास्तत्रैव निधनं गताः ।
तेषामल्पतरो धर्मः कामभोगानजानताम् ।।
यस्तु भोगान्परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत् ।
न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तन्मे बहुमतं फलम् ।।
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ।।
अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम ।।
न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि ।
स्वकृतैस्तानि जातानि भवांश्चैवं गमिष्यति ।।
इहलोके हि धनिनां स्वजनः स्वजनायते ।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवतामपि नश्यति ।।
सञ्चिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः ।

ततः क्लैशमवाप्नोति परत्रेह तथैव च ॥
पश्यति च्छिन्नभूतं हि जीवलोकं स्वकर्मणा ।
तत्कुरुष्व तथा पुत्र ! कृत्स्नं यत्समुदाहृतम् ॥
तदेतत्सम्प्रदृश्यैव कर्मभूमिं प्रपश्यता ।
शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभीप्सता ॥

मासर्तुसंज्ञापरिवर्त्तकेन
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
स्वकर्मनिष्ठाफलसाक्षिकेन
भूतानि कालः पचति प्रसह्य ॥
धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते
बलेन किं येन रिपुर्न बाध्यते ।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी ॥

भीष्म उवाच—

इदं द्वैपायनवचो हितमुक्तं निशम्य तु ।
शुको गतः परित्यज्य पितरं मोक्षदैशिकम् ॥ इति ॥

भक्तिमाहात्म्यं श्रुतौ—

भक्तिरेव भुयसी, भक्तिवशः पुरुषः ॥ इति ॥

स्मृतौ च—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्ज्जुन ! ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ! ॥
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे च—

जन्मान्तरसहस्रेषु तपोदानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ।। इति ।

श्रीमद्भागवते च—

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेथोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ।। इति ।

शरणागतिरुक्ता श्रुतौ—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै विद्यास्तस्मै गोपायति स्म कृष्णः ।
तं ह देहमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमनुव्रजेत् ।। इति ।

श्रीमद्भगवद्गीतायां—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यायामि मा शुचः ।। इति ।

श्रीमद्भागवते च—

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रति चोदनाम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेवच ।।
मामेकमेव शरणमात्मनां सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्याः ह्यकुतोभयः ।। इति ।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां
न किङ्करो नायमृणी च राजन् ! ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ।। इति च ।

विस्तरस्तु वेदान्तरत्नमञ्जूषायां द्रष्टव्यः ।

गुर्वनुज्ञानुवृत्तिप्रकारः श्रीमहाभारते—

कश्चिदृषिर्धौम्यो नामाऽऽपोदस्तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुः—उपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति। स एकं शिष्यमारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास-'गच्छ केदारखण्डं बधाने'ति। स उपाध्यायेन सन्दिष्ट आरुणिः पाञ्चाल्यस्तत्र गत्वा केदाररवण्डं बद्धुं नाशकत्। स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायं भवत्वेवं करिष्यामीति। स तत्र संविवेश केदारखण्डं शयाने च तथा तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ। ततः कदाचिदुपाध्याय आपोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत्—'क्व आरुणिः पाञ्चाल्यो गतः' इति। ते तं प्रत्यूचुर्भगवंस्त्वयैव प्रेषितो गच्छ केदारखण्डं बधानेति। स एवमुक्तस्तान् शिष्यान्प्रत्युवाच-'तस्मात्तत्र सर्वे गच्छामो यत्र स गतः' इति। स तत्र गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार—'भो आरुणे पाञ्चाल्य! क्वासि वत्सैहीति'। स तच्छ्रुत्वा आरुणिरुपाध्यायवाक्यं तस्मात्केदारखण्डात्सहसोत्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे। प्रोवाच चैनम्—'अयमस्म्यत्र केदारखण्डे निःसरमाणमुदकमवारणीयं संरोद्धुं संविष्टो भगवच्छब्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्य केदारखण्डं भवन्तमुपस्थितः। तदभिवादये भगवन्तमाज्ञापयतु भवान्कमर्थं करवाणी'ति। स एवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच—'यस्माद्भवान् केदारखण्डं विदार्योत्थितस्तस्मादुद्दालक एव नाम्ना भवान् भविष्यति' इत्युपाध्यायेनानुगृहीतः। 'यस्माच्च त्वया मद्वचनमनुष्ठितं तस्माच्छ्रेयोऽवाप्स्यसि सर्वे च वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणी'ति। स एवमुक्त उपाध्यायेनेष्टं देशं जगाम।

अथापरःशिष्यस्तस्यैवापोदधौम्यस्योपमन्युर्नाम। तं चोपाध्यायःप्रेषयामास—'वत्सोपमन्यो! गा रक्षस्वे'ति। स उपाध्यायवचनादरक्षद्गाः। स चाहनि रक्षित्वा दिवसक्षये गुरुगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे। तमुपाध्यायः पीवानमप-

श्यदुवाच चैनं–'वत्सोपमन्यो! केन वृत्तिं कल्पयसि पीवानसि दृढ' इति। स उपाध्यायं प्रत्युवाच–'भो! भैक्ष्येण वृत्तिं कल्पयामी'ति। तमुपाध्यायः प्रत्युवाच–'मय्यनिवेद्य नैवोपभोक्तव्यं' इति। स तथेत्युक्तो भैक्ष्यं चरित्वोपाध्यायाय न्यवेदयत्। स तस्मादुपाध्यायः सर्वमेव भैक्ष्यमगृह्णात्। स तथेत्युक्तः पुनररक्षद्गाः। अहनि रक्षित्वा निशामुखे गुरुकुलमागत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे। तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वोवाच–'वत्सोपमन्यो!। सर्वमशेषतस्ते भैक्ष्यं गृह्णामि केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसी'ति। स एवमुक्तमुपाध्यायं प्रत्युवाच–'भगवते निवेद्य पूर्वमपरं चरामि तेन वृत्तिं कल्पयामी'ति। तमुपाध्यायः प्रत्युवाच–'नैषा न्याय्या गुरुवृत्तिरन्येषामपि भैक्ष्योपजीविनां प्रत्युपरोधं करोषि इत्येवं वर्त्तमानो लुब्धोसी'ति। स तथेत्युक्त्वा गा अरक्षत्। रक्षित्वा च पुनरुपाध्यायगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे। तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वा पुनरुवाच 'वत्सोपमन्यो! अहं ते सर्वं भैक्ष्यं गृह्णामि न चान्यच्चरसि पीवानसि भृशं केन वृत्तिं कल्पयसी'ति। स एवमुक्तस्तमुपाध्यायं प्रत्युवाच–'भो! एतासां गवां पयसा वृत्तिं कल्पयामी'ति। तमुवाचोपाध्यायो नैतन्न्याय्यं पय उपयोक्तुं भवतो मया नाभ्यनुज्ञातं' इति। स तथेति प्रतिश्रुत्य गा रक्षित्वा पुनरुपाध्यायगृहानेत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे। तमुपाध्यायः पीवानमेव दृष्ट्वोवाच 'वत्सोपमन्यो! भैक्ष्यं नाश्नासि न चान्यच्चरसि पयो न पिबसि पीवानसि भृशं केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसी'ति। स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच–'भोः फेनं पिबामि यमिमे वत्सा मातृणां स्तनान्पिबन्त उद्गिरन्ति'। तमुपाध्यायः प्रत्युवाच–'एते त्वदनुकम्पया गुणवन्तो वत्साः प्रभूततरं फेनमुद्गिरन्ति तदेषामपि वत्सा-

नां वृत्त्युपरोधं करोष्येवं वर्तमानः फेनमपि भवान्न पातुमर्ह-
ती'ति । स तथेति प्रतिश्रुत्य पुनरदक्षद्गाः । तथा प्रतिषिद्धो
भैक्ष्यं नाश्नाति न चान्यच्चरति पयो न पिवति फेनं नोप-
भुङ्क्ते । स कदाचिदरण्ये क्षुधार्तोऽर्कपत्राण्यभक्षयत् । स तैरर्कप-
त्रैर्भक्षितैः क्षारतिक्तकटुरूक्षैस्तीक्ष्णविपाकैश्चक्षुष्युपहतोऽन्धो बभूव ।
ततः सोऽन्धोपि चंक्रम्यमाणः कूपे पपात । अथ तस्मि-
न्ननागच्छति सूर्ये चास्ताचललम्बिनि उपाध्यायः शिष्यानवो-
चत्–'नायात्युपमन्युः' । त ऊचुः–'वनं गतो गा रक्षितुमिति' । ता-
नाह उपाध्यायः–'मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिषिद्धः, स नियतं कुपि-
तस्ततो नागच्छति चिरं ततोऽन्वेष्ये' इत्येवमुक्त्वा शिष्यैः सार्द्धम-
रण्यं गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार–'भो उपमन्यो ! क्वासि
वत्सैही'ति । स उपाध्यायवचनं श्रुत्वा प्रत्युवाचोच्चै–'रयमस्मिन्
कूपे पतितोऽहमि'ति । तमुपाध्यायः प्रत्युवाच–'कथं त्वमस्मिन्
कूपे पतित' इति । स उपाध्यायं प्रत्युवाच–'अर्कपत्राणि भक्ष-
यित्वाऽन्धीभूतोस्म्यतः कूपे पतित' इति । तमुपाध्यायः प्रत्यु-
वाच–'अश्विनौ स्तुहि तौ देवभिषजौ त्वां चक्षुष्मन्तं कर्त्तारौ'
इति । स एवमुक्त उपाध्यायेनोपमन्युरश्विनौ स्तोतुमुपचक्रमे
देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः । इत्येवं तेनाभिष्टुतावश्विनावाजग्म-
तुराहतुश्चैनं–'प्रीतौ स्व एष तेऽपूपोऽशानैनमि'ति । स एवमुक्तः
प्रत्युवाच–'नानृतमूचतुर्भगवन्तौ न त्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुत्सहे
गुरवेऽनिवेद्येति । ततस्तमश्विनावूचतुः–'आवाभ्यां पुरस्ताद्भवत
उपाध्यायेनैवाभिष्टुताभ्यामपूपो दत्त उपयुक्तः स तेनानिवेद्य
गुरवे त्वमपि तथैव कुरुष्व यथा कृतमुपाध्यायेने'ति । स एव-
मुक्तः प्रत्युवाच–'एतत्प्रत्यनुनये भवन्तावश्विनौ नोत्सहेऽहम-
निवेद्य गुरवेऽपूपमुपयोक्तुमि'ति । तमश्विनावाहतुः-प्रीतौ स्व-

स्तवानया गुरुभक्त्या, उपाध्यायस्य ते कार्ष्णायसा दन्ता भवतो हिरण्मया भविष्यन्ति चक्षुष्मांश्च भविष्यसीति श्रेयश्चावप्स्यसी'ति। स एवमुक्तोऽश्विभ्यां लब्धचक्षुरुपाध्यायसकाशमागम्याभ्यवादयत्, आचचक्षे च। स चास्य प्रीतिमान्बभूव। आह चैनं-'यथाश्विनावाहतुस्तथा त्वं श्रेयोऽवाप्स्यसि सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति। एषा तस्यापि परीक्षोपमन्योः ॥

इति स्वधर्मामृतसिन्धौ चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥

अथ शान्तस्यैव भगवद्भजनेऽधिकारात् शान्तो भवेत्—'शान्त उपासीतेति' श्रुतेः ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

इति स्मृत्या शान्त्युपायो दर्शितः ॥

अतः कामादीन्भगवद्भजनकण्टकान् नरकद्वारभूतान् त्यजेदेव—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय ! तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

इति श्रीमुखवचनात् ॥

तज्जयप्रकारः श्रीमद्भागवते दर्शितः—

कामं जयेदसङ्कल्पात् क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षणात् लोभं मोहं महदुपासया ॥ इति।

अन्तःकरणविजयः कर्त्तव्यस्तदभावे सर्वधर्मनैष्फल्यमुक्तं महाभारते—

त्रिदण्डधारणं मौनं जटाभारोऽथ मुण्डनम्।
वल्कलाजिनसंवेष्टं व्रतचर्याभिषेचनम् ॥
ब्रह्मचर्यं वने वासः शरीरपरिशोषणम्।

सर्वाण्येतानि मिथ्या स्युर्यदि भावो न शुद्ध्यति ।।

श्रीमद्भागवते—

मौनानीहानिलायामा दण्डो वाग्देहचेतसाम् ।
न ह्येते यस्य सन्त्यङ्ग ! वेणुभिर्न भवेद्यतिः ।। इत्युक्तम् ।।

मनोनिग्रहप्रकारः श्रीभगवतोक्तः—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। इति ।

असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ।। इति च ।।

युक्तां वाणीं सर्वदा ब्रूयादित्युक्तं महाभारते—

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।
सा वै दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपकल्पते ।।

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं
धर्म्यं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ।।

असम्बद्धां तु वाणीं कदाचिदपि न ब्रूयादित्युक्तं तत्रैव—

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परभ्याददीत ।
ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदसतीं पापलोक्याम् ।।
वाक्सायका वदनान्निःपतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य वा मर्मसु ते पतन्ति
तान्पण्डितो न विसृजेत्परेषु ।।

कर्णिनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्सायको न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥
अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्था क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥

उद्योगे धृतराष्ट्र उवाच—

अङ्ग सञ्जय ! मे शंस पन्थानमकुतोभयम् ॥ इति ।
येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयात्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ इति ॥

सञ्जय उवाच—

इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः ।
बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः ॥
इतज्ज्ञानं च पन्थाश्व येन यान्ति मनीषिणः ।
अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैः प्रभो ॥ इति ।

अत एवोक्तं श्रीभगवता—

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥ इति ॥

स्त्रीसङ्गस्तु मुमुक्षुणा दूरतो हेयः तत्सङ्गिनो महानर्थापातप्रसङ्ग उक्तः श्रीमद्भागवते—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥ इति ॥
किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन बलीयसा
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ॥ इति च ।

अत एवोक्तं भगवता—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय ! न तेषु रमते बुधः ॥

समनस्केन्द्रियविजयरूपोऽभ्यन्तरशुद्धिप्रकारो दानधर्मे, युधिष्ठिर

उवाच—

यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह ! ।
यत्तु वै परमं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।

भीष्म उवाच—

सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणाम् ।
यत्तु तीर्थे च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः ।।
अगाधे निर्मले शुद्धे सप्ततोये धृतिह्रदे
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम् ।।
तीर्थं शौचमनर्थित्वं मार्दवं सत्यमार्जवम् ।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं शमो दमः ।।
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ।।
रजस्तमःसत्त्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः ।
शौचाशौचे न ते सक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ।।
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञास्तत्त्वदर्शिनः ।
शौचे निवृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ते ।।
नोदकक्लिन्नगात्रोऽथ स्नात इत्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।
अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्येष्वर्थेषु निर्ममाः ।
शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ।।
प्रज्ञा च शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः ।
तथा निष्किञ्चनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ।।
वृत्तशौचं परं शौचं तीर्थशौचं परं हि तत् ।
ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं मतम् ।।
मनसाऽथ प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानबलेन च ।

स्नाता ये मानसे तीर्थे ते ज्ञा क्षेत्रस्य दर्शिनः ।।
समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमन्वितः ।
केवलं गुणसम्पन्नः शुचिरेव नरः सदा ।।
शरीरस्थानि तीर्थानि प्रोक्तान्येतानि भारत! ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि शृणु तान्यपि ।।
यथा शरीरस्योद्देशाः शुचयः परिनिर्मिताः ।
तथा पृथिव्यां भागानि पुण्यानि सलिलानि च ।।
प्रार्थनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च परितर्पणात् ।
धावन्ति पापास्तीर्थेषु पूता यान्ति दिवं सुखम् ।।
परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा ।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा ।।
मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यतीर्थास्तथा परे ।
उभयोरेव यः स्नातः समृद्धि शीघ्रमाप्नुयात् ।।
यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया बलविवर्ज्जिता ।
नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति ।।
एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः ।
ततः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम् ।।

इति स्वधर्मामृतसिन्धौ पञ्चमस्तरङ्गः ।।५।।

अथ वाह्यशुद्धिप्रकारः ।

तत्रैवादिविधिः विष्णुपुराणे—

ततः कल्ये समुत्थाय कुर्यान्मैत्रं नरेश्वर! ।
नैर्ऋत्यादिषु विक्षेपमतीत्याभ्यधिकं गृहात् ।।
दूरादावसथान् मूत्रं पुरीषं च समुत्सृजेत् ।
पादावसेचनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे ।
आत्मच्छायां तरोश्छायां गोसूर्याग्न्यनिलांस्तथा ।

गुरुन्द्विजातींश्च बुधो न मेहेत कदाचन ।।
न कृष्टे सस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि ।
दिनवर्त्मनि नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभः ।।
नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे न श्मशाने समाचरेत् ।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ।।
उदङ्मुखो दिवोत्सर्गं विपरीतमुखो निशि ।
कुर्यान्मुक्तशिखो विद्वान्मूत्रोत्सर्गं च पार्थिव ! ।।
तृणैराच्छाद्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः ।
तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत् ।।

शौचविधिस्तत्रैव—

एका लिङ्गे गुदे त्रीणि दश वामकरे मृदः ।
हस्तद्वये च सप्तान्याश्चरणौ च त्रिभिस्त्रिभिः ।।

केवले मूत्रोत्सर्गे दक्षः—

एका लिङ्गे तु सव्ये त्रिरुभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् ।

पाद्मे च—

रात्र्यां तुर्य्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत सदा व्रती ।।
नैर्ऋत्यां च व्रजेद्ग्रामाद्बहिः सोदकभाजनः ।
दिवासंध्योः कर्णयोस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।।
अन्तर्द्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ।
वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ।।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ च दक्षिणामुखः ।
उत्त्थायातन्द्रितः शौचं कुर्याच्छुद्धो धृतैर्जलैः ।।
गन्धलेपक्षयकरं यथासंख्यं मृदा शुचा ।
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।।
उभयोर्हस्तयोः सप्त तिस्रस्तिस्रस्तु पादयोः ।

ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मखण्डे—

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।।
उभयोः सप्त दातव्याः पादौ षष्ठेन शुद्धचतः ।
पुरीषशौचं विप्राणां गृहीत्वा मृदमेव च ।।
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानां गृहिणां समम् ।
द्विगुणं वैष्णवादीनां मुनीनां परिकीर्त्तितम् ।।
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचशुद्धिमभीप्सताम् ।

अन्यत्र तु—

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं च वनस्थानां यतीनां स्याच्चतुर्गुणम् । इत्युक्तम् ।

काशीखण्डे तु—

दिवा विहितशौचाच्च रात्राबर्द्धं समाचरेत् ।
रुजार्द्धं च तदर्द्धं च पथि शौचादिबाधिते ।।
तदर्द्धं योषितादीनां स्वस्थे न्यूनं न कारयेत् ।। इति ।।

हस्तपादशौचानन्तरं षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं कुर्यात् । तदुक्तं

ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मखण्डे—

आदौ षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च ।
दन्तकाष्ठेन दन्तांश्च तत्पश्चात्परिमार्जयेत् ।।
पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ।। इति ।।

आचमनप्रकारः दक्षेणोक्तः—

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिवेदम्बु वीक्षितम् ।
संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।।
संहिताभिस्त्रिभिः पूर्वमास्यं तु समुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ।।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुः श्रोत्रे उपस्पृशेत् ।

कनिष्ठाङ्गुष्ठतो नाभिं हृदयं तु तलेन च ॥
सर्वाभिस्तु तले पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।
ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेन दृष्टपूताभिराचमेत् ॥
कण्ठगाभिर्नृपः शुद्ध्येत्तालुगाभिस्तथा रुजः ।
स्त्रीशूद्रौ चास्यसंस्पर्शमात्रेणापि विशुद्ध्यतः ॥

कौर्मे—

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठौ विलोपकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽनृतभाषणे ।
ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥
चत्वारं वा श्मशानं वा समभ्येत्य द्विजोत्तमः ॥
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोप्याचमेत्पुनः ॥
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद्बुधः ॥
न चैव वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुधः ।
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा ॥

हारीतस्मृतौ च—

आजङ्घान्मणिबन्धात्तु प्रक्षाल्य शुभवारिणा ।
उपविष्टः शुचौ देशे पवित्रपाणिराचमेत् ॥
पाणिं प्रसार्य तु पुनः प्रसृतिस्थेन वारिणा ।
त्रिः प्रास्याङ्गुष्ठमूलेन द्विरुन्मृज्य कपोलकौ ।
मध्यमाङ्गुलिभिः पश्चाद्द्विरोष्ठमामृजेत्तथा ।
नासिकोष्ठोत्तरं पश्चात् पूर्वाङ्गुलिभिरेव च ॥
पादौ हस्तौ शिरश्चैव जलैरुन्मार्जयेत्ततः ।

अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु चक्षुःश्रोत्रे जलैः स्पृशेत् ।।
कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं तलेन हृदयं ततः ।
सर्वाङ्गुलीभिः शिरसि बाहुमूले तथैव च ।।
नामभिः केशवाद्यैश्च यथासंख्यमुपस्पृशेत् ।
द्विराचमनं तु सर्वत्र विण्मूत्रोत्सर्ज्जने त्रयम् ।।
सामान्यमेतत्सर्वेषां शौचं तु द्विगुणोदितम् ।
आचम्यातः परं मौनी दन्तान्काष्ठेन शोधयेत् ।।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि कषायं तिक्तकण्टकम् ।
कनिष्ठाग्रमितं स्थूलं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।।
बहुग्रन्थिरहितं सौम्यं दन्ताग्रं तेन घर्षयेत् ।
ततोद्वादशगण्डूषैर्वक्त्रं संशोधयेन्नरः ।।
मुखं संमार्जयित्वाऽथ पश्चादाचमनं चरेत् ।। इति ।

कौर्मे—

मध्याङ्गुलिसमं स्थौल्ये द्वादशाङ्गुलसंमितम् ।।
सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण तु धावयेत् ।।

स्मृतौ—

सर्वे कण्टकिनः पुण्या आयुर्दा क्षीरिणः स्मृताः ।
कटुतिक्तकषायाश्च बलारोग्यसुखप्रदाः ।।
पलाशानां दन्तकाष्ठं पादुके चैव वर्जयेत् ।
वर्जयेच्च प्रयत्नेन वटं चाश्वत्थमेव च ।।

वसिष्ठः—

उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम् ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो हन्ति सप्तकुलानि च ।। इति ।

व्यासस्मृतौ—

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां दन्तधावनम् ।

पर्णैरन्यत्र काष्ठैश्च जिव्होल्लेखः सदैव हि ॥

दन्तकाष्ठाद्यलाभे आह व्यासः—

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे च तथा दिने ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥ इति ॥

वैष्णवानां दन्तधावनाकरणे तु दोष उक्तः वाराहे—

दन्तकाष्ठमखादित्वा यो मां समुपसर्पति ।
सर्वकालकृतं कर्म तेनैकेन च नश्यति ॥ इति ।

अथ स्नाननित्यता वैष्णवे—

नित्यं नदीतडागेषु देवखातजलेषु च ।
नित्यक्रियार्थं स्नायीत गिरिप्रस्रवणेषु च ॥
कूपेषूद्धृततोयेन स्नानं कुर्वीत वा गृहे ।

पाद्मे—

मानसे देवखाते वा नद्यामथ च सङ्गमे ।
क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थेऽनन्तफलं स्मृतम् ॥

उष्णजलस्नानमाह यमः—

आपः स्वयं सदा पूता वह्नितप्ता विशेषतः ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु उष्माम्भः पावनं स्मृतम् ॥

मुख्यतीर्थेतरजले वक्ष्यमाणप्रकारेण तीर्थावाहनं कर्त्तव्यं प्रसिद्धे तीर्थे तु न, तदुक्तं श्रीनारदपञ्चरात्रे—

प्रसिद्धेषु च तीर्थेषु यद्यन्यस्याभिधां स्मरेत् ।
स्नातकं तं तु तत्तीर्थमभिशप्य क्षणाद्व्रजेत् ॥

स्नानप्रकारस्तु संक्षेपतः श्रीगोपालार्च्चनतरङ्गे स्फुटीभविष्यति ॥

सन्ध्यानित्यता श्रुतौ—

'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' इति ॥

स्मृतौ च—

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः इति ।।

वसिष्ठः—

गृहे त्वेकगुणा सन्ध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ।
शतसाहस्रिका नद्यामनन्ता विष्णुसंनिधौ ।। इति ।

वस्त्रशुद्धिमाहात्रि :—

अधौतं कारुधौतं वा परेद्युर्धौतमेव च ।
न चार्द्रमेव वसनं परिदध्यात्कदाचन ।।

अन्यत्र—

कार्पासं कटिनिर्मुक्तं कौषेयं भोजनोत्तरम् ।
प्रक्षालनेन शुद्धं स्यादूर्णा वातेन शुद्ध्यति ।। इति ।

अङ्गिराः—

शौचं सहस्ररोमाणां वाय्वग्न्यर्केन्दुरश्मिभिः ।
रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं नैव दुष्यति ।।

अन्यत्र चापि—

छिन्नं वा सन्धितं दग्धमाविकं न प्रदुष्यति ।
रजकादाहृतं यच्च न तद्वस्त्रं भवेच्छुचिः ।।

गोभिलः—

एकवस्त्रो न भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् ।।

विष्णुधर्मे—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ।।

इति संक्षेपेणोक्तः बाह्यशुद्धिप्रकारः ।।

इति स्वधर्मामृतसिन्धौ षष्ठस्तरङ्गः ।। ६ ।।

अथ बाह्याभ्यन्तरं शुद्धेन पुरुषेण ब्रह्मादिशब्दवाच्यो विश्व

कारणभूतः समानातिशयशून्यः स्वाभाविकगुणशक्त्याद्याश्रयः सर्वेश्वरः श्रीवासुदेवो निरन्तरं—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।। इति—

सर्वभागवतोक्तैर्भजनप्रकारैर्भजनीयः । तत्र श्रवणानि श्रीभागवतादिषु प्रसिद्धानि ।। तत्र सततं स्मर्त्तव्यः तदुक्तं पाद्मे —

स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधिहरा ह्यास्युरेतस्यैव च किङ्कराः ।।

भगवद्गीतासु च—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर । इति ।।

भजनं भगवतः दृढविश्वासेन कर्त्तव्यम् । तथाह स्वयं भगवान्—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे मुक्ततमो मतः ।।
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमास्थिताः ।
भजन्ति नान्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।
सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।

हरिवंशे शिवः—

हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः ।
नान्यो जगति देवोस्ति विष्णोर्नारायणात्परः ।। इति ।

सर्वज्ञो भीष्मपर्वणि भीष्मः—

यस्य स्यादात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।
कथं न वासुदेवोऽयमभ्यर्च्यः श्रेष्ठमानवैः ।। इति ।

पुनस्तत्रैव–

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
अर्चनीयश्च सेव्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ।।
द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन यः ।। इति ।

अनुशासनपर्वणि च–

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ।। इति ।

व्यतिरेकोक्त्या भगवत्सेवा दृढीकृता गारुडे–

अन्तं गतोपि वेदानां सर्वशास्त्रर्थवेद्यपि ।
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्तं विद्यात्पुरुषाधमम् ।।

स्कान्दे–

विशिष्टः सर्वधर्माणां धर्मो विष्णवर्चनं नृणाम् ।
सर्वयज्ञतपोहोमतीर्थस्नानैश्च यत्फलम् ।।
तत्फलं कोटिगुणितं विष्णुं सम्पूज्य प्राप्नुयात् ।। इति ।

अस्यैवाराधनेन सर्वाराधनं भवति, तदुक्तं श्रीभागवते–

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ।।

हरिवंशे शिवः–

उपास्योऽहं सदा विप्रा ! उपास्येऽस्मिन्हरौ स्मृतः ।
उपायोऽयं मया प्रोक्तो नात्र सन्देह इत्यपि ।। इति ।

व्यासस्मृतौ—

दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ।
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ।।

भगवान् स्वानन्यदत्तैर्जलादिभिरपि सन्तुष्टो भवति किं पुनर्महत्या सपर्यया, तदुक्तं **स्कान्दे**—

सलिलेनापि भगवान्पूजितः क्लेशहा हरिः ।
निर्वृतिं परमां याति पान्थः स्वशरणं यथा ।।

तथैवाह भगवान्—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

तदभजने जीवन्मृतत्वमुक्तं **सभापर्वणि श्रीनारदेन**—

कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चयिष्यन्ति ये जनाः ।
जीवन्मृतास्ततो ज्ञेया न सम्भाष्याः कदाचन ।।

बहुदोषा उक्ता भगवता—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।। इति ।।

दुर्वृत्तानां तु महतीमपीज्यां नैव गृह्णाति ।

तदुक्तं श्रीभागवते—

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्य विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ।। इति ।

सर्वं चिदचिदात्मकं वासुदेवाश्रितं वासुदेवः स्वाश्रयः तदुक्तं मोक्षधर्मे—

रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः ।
ब्रह्मा मामाश्रितो राजन् ! नाहं कञ्चिदुपाश्रितः ।। इति ।

निःसमानातिशयत्वं भगवतो बोद्धव्यम् । तथात्वे कृष्णोपासना-

धिकारसंपादकमनन्यत्वं स्यात् तदुक्तमानुशासनिके—

यच्च किञ्चिजगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि च ।
तत्सर्वं केशवो देवो मृषा बादोस्त्यतः परम् ।। इति ।

नारसिंहे—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ।
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात्परः ।। इति ।

श्रीमद्भागवते ब्रह्माह—

वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ।। इति ।

हरिवंशे शिवः—

क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।
आवां तवाङ्गसम्भूतौ तस्मात्केशवनामवान् ।। इति ।
'मत्तः परतरं नान्यदिति' श्रीमुखवचनं च ।।

भगवद्गीतायामाहार्जुनः—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ! ।।
पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरोर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ।।

भीष्मपर्वणि ब्रह्माह—

एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाच पितामहः ।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान्सर्वान्मधुरया गिरा ।।
यत्तत्परं भविष्यं च भविता यच्च यत्परम् ।

भृगुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ।। इत्यारभ्य-
यत्तत्परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् ।
एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ।।
एतदक्षरमव्यक्तमेतत्तच्छाश्वतं महः ।
यत्तत्पुरुषसंज्ञोऽयं गीयते बहुधा च यत् ।।
एतत्परमकं तेजः एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्त्तितं विश्वकर्मणा ।। इत्यादि ।।

तत्रैव भीष्म आह—

वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद्दृश्यते भरतर्षभ ! ।।
मार्कण्डेयश्च गोविन्दं कथयत्यद्भुतं महत् ।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ।।
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।। इत्यादि ।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ।
परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ।। इत्यादि च ।।

श्रीमद्भागवते ब्रह्मस्तुतौ—

सर्वेषामपि भावानां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ।। इति ।।

विस्तरस्तु भगवतो निःसमानातिशयत्वस्य वेदान्तकौस्तुभे द्रष्टव्यः ।। अत एव परमात्मनोऽन्यसाधारणत्ववादिनोऽन्त्यजत्वमुक्तं पञ्चरात्रे—

यो मोहाद्विष्णुमन्येन हीनदेवेन दुर्मतिः ।
साधारणं सकृद्ब्रूते सोऽन्त्यजो नान्त्यजोऽन्त्यजः ।। इति ।।

श्रीभगवाननन्यभावेनैवोपास्यः तदुक्तं श्रीमुखेन—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते ।

धिकारसंपादकमनन्यत्वं स्यात् तदुक्तमानुशासनिके—

यच्च किञ्चिजगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि च ।
तत्सर्वं केशवो देवो मृषा बादोस्त्यतः परम् ।। इति ।

नारसिंहे—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ।
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात्परः ।। इति ।

श्रीमद्भागवते ब्रह्माह—

वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोस्ति तत्त्वतः ।। इति ।

हरिवंशे शिवः—

क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।
आवां तवाङ्गसम्भूतौ तस्मात्केशवनामवान् ।। इति ।
'मत्तः परतरं नान्यदिति' श्रीमुखवचनं च ।।

भगवद्गीतायामाहार्जुनः—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ! ।।
पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरोर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ।।

भीष्मपर्वणि ब्रह्माह—

एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाच पितामहः ।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान्सर्वान्मधुरया गिरा ।।
यत्तत्परं भविष्यं च भविता यच्च यत्परम् ।

भृगुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ।। इत्यारभ्य-
यत्तत्परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् ।
एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ।।
एतदक्षरमव्यक्तमेतत्तच्छाश्वतं महः ।
यत्तत्पुरुषसंज्ञोऽयं गीयते बहुधा च यत् ।।
एतत्परमकं तेजः एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्त्तितं विश्वकर्मणा ।। इत्यादि ।।

तत्रैव भीष्म आह—

वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद्दृश्यते भरतर्षभ ! ।।
मार्कण्डेयश्च गोविन्दं कथयत्यद्भुतं महत् ।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ।।
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।। इत्यादि ।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ।
परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ।। इत्यादि च ।।

श्रीमद्भागवते ब्रह्मस्तुतौ—

सर्वेषामपि भावानां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ।। इति ।।

विस्तरस्तु भगवतो निःसमानातिशयत्वस्य वेदान्तकौस्तुभे द्रष्टव्यः ।। अत एव परमात्मनोऽन्यसाधारणत्ववादिनोऽन्त्यजत्वमुक्तं पञ्चरात्रे—

यो मोहाद्विष्णुमन्येन हीनदेवेन दुर्मतिः ।
साधारणं सकृद्ब्रूते सोऽन्त्यजो नान्त्यजोऽन्त्यजः ।। इति ।।

श्रीभगवाननन्यभावेनैवोपास्यः तदुक्तं श्रीमुखेन—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। इति ।

विष्णुधर्मेपि—

पृथिवीं रत्नसम्पूर्णां यः कृष्णाय प्रयच्छति ।
तस्याप्यन्यमनस्कस्य सुलभो न जनार्दनः ।। इति ।।

ध्रुवोपञ्चरात्रेपि—

यावदन्याश्रयस्तावद्भगवानपि तं जनम् ।
विलोकयेन्न दयया ह्यनन्यजनवत्सलः ।। इति ।।

आराधनाय श्रीगोपालप्रतिमोक्ता विष्णुधर्मोत्तरे—

गोपालप्रतिमां कुर्याद्वेणुवादनतत्पराम् ।
अतिसौम्यां घनश्यामां द्विभुजामूर्द्ध्वसंस्थिताम् ।। इति ।।

प्रतिमाभेदाः श्रीमद्भागवते उक्ताः—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।। इति ।

पाद्मे—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।।
शालग्रामशिलायां तु साक्षाच्छ्रीकृष्णसेवनम् ।
नित्यं संनिहितस्तत्र वासुदेवो जगद्गुरुः ।। इति ।।

पारिजातहरणप्रकरणे हरिवंशे—

त्वयि संनिहितश्चाहं भविष्यामि महागिरे ! ।
अधिष्ठायासुरान् घोरान्निवत्स्यामि च पर्वत ! ।।
आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूपं दृष्ट्वा पर्वतसत्तम ! ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्स्यति शाश्वतम् ।।
त्वत्तोश्मभिश्च प्रतिमां कारयित्वेह भक्तितः
शुश्रूषन्ति च ये नित्यं मम यास्यन्ति ते गतिम् ।

इति तं पर्वतं कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान् ।।
तदाप्रभृति देवेशस्तत्र संनिहितोऽच्युतः ।
पाषाणैः प्रतिमां तत्र कारयित्वा च कौरव ! ।।
शुश्रूषन्ति कृतात्मानो विष्णुलोकाभिकांक्षिणः ।। इति ।।

विधिवद्दारुनिर्मिता दारुमयी । तथा सुवर्णादिमयी लौही । द्रवीभूतसुवर्णादिना लिखिता लेख्या । चन्दनादिना कुडचादौ स्थापिता लेप्या । सिकतामयी सैकती । मनोमयी ध्याननिष्पादिता, तन्माहात्म्यमुक्तं

श्रीभागवते—

सकृद्यदङ्गे प्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।। इति ।।

मणिमयी शालग्रामशिलारूपा, सा चोक्ता गौतमीयतन्त्रे—

शालग्रामशिलास्पर्शात् कोटिजन्माघनाशनम् ।
किं पुनर्यजनं तत्र हरेः सांनिध्यकारकम् ।।

स्कान्दे—

ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किञ्चित्कुरुते नरः ।
तत्सर्वं निर्दहत्याशु शालग्रामशिलार्चनम् ।।
न पूजनं न मन्त्राश्च न जपो न च भावना ।
न स्तुतिर्नोपचारश्च शालग्रामशिलार्चने ।।

पाद्मे—

यः पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे ।
राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ।।

बृहन्नारदीये यज्ञध्वजोपाख्याने—

शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ।
न बाधन्ते सुरास्तत्र भूतवेतालकादयः ।।

ब्राह्मे—

शालग्रामोद्भवो देवो देवो द्वारावतीभवः : ।
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ।।

स्कान्दे—

शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते ।
महापूजां तु कृत्वादौ पूजेयत्त ान्ततो बुधः ।। इति ।।

माघमाहात्म्ये—

लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैस्तु तैः ।
शालग्रामशिलायां तु एकेनापि हि तत्फलम् ।।

पाद्मे--

शालग्रामशिलापूजां विना योऽश्नाति किञ्चन ।
स चाण्डालादिविष्ठायामाकल्पं जायते कृमिः ।।

भगवदन्यानां स्त्रीशूद्राणामपि तत्पूजनाधिकार उक्तः ।

स्कान्दे--

स्त्रियो वा यदि वा शूद्रा ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः ।
पूजयित्वा शिलाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदम् ।। इति ।

स्कान्दे--

कृत्वा ताम्रमये पात्रे योऽर्चयेन्मधुसूदनम् ।
फलं प्राप्नोति पूजायाः प्रत्यहं शतवार्षिकम् ।।

गारुडे--

तुलसीमिश्रतोयेन स्नापयन्ति जनार्द्दनम् ।
पूजयन्ति च भावेन धन्यास्ते भुवि मानवाः ।।

स्कान्दे--

स्नानार्चनक्रियाकाले घण्टानादं करोति यः ।
पुरतो वासुदेवस्य तस्य पुण्यं फलं शृणु ।।
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ।

वसते देवलोके तु अन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ।।

विष्णुधर्मोत्तरे भगवानाह--

मम नाम्नाङ्किता घण्टा पुरतो मम तिष्ठति ।
अर्चिता वैष्णवगृहे तत्र मां विद्धि दैत्यज ! ।।
वैनतेयाङ्कितां घण्टां सुदर्शनयुतां यदि ।
ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु देहे तस्य वसाम्यहम् ।।

स्कान्दे--

शङ्खस्थितेन तोयेन यः स्नापयति केशवम् ।
कपिलाशतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।
कपिलाक्षीरमादाय शङ्खे कृत्वा जनार्द्दनम् ।
यः स्नापयति धर्मात्मा यज्ञायुतफलं लभेत् ।।
नाद्यं तडागजं वारि वापीकूपह्रदादिजम् ।
गाङ्गेयं च भवेत्सर्वं कृतं शङ्खे किल प्रियम् ।।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया ।
शङ्खे तिष्ठन्ति विप्रेन्द्र ! तस्माच्छङ्खं तदार्चयेत् ।।

गारुडे--

मालत्या न समं पुष्पं द्वादश्या न समा तिथिः ।
पुष्पेणैकेन मालत्या प्रीतिर्या केशवस्य हि ।।
न सा क्रतुसहस्रेण भवेद्वै नारदोऽब्रवीत् ।

विष्णुपूजने ग्राह्याणां सर्वेषां पुष्पाणां माहात्म्यं विष्णुधर्मोत्तरे—

न रत्नेन सुवर्णेन न च वित्तेन भूरिणा ।
तथा प्रसादमायाति यथा पुष्पैर्जनार्दनः ।। इत्यादि ।

नारदीये--

मालती बकुलाऽशोकशेफाली नवमस्तिका ।

आम्रञ्च तगराख्यं च मल्लिका मधुपिण्डिका ।।
यूथिकाऽष्टपदं कुन्दं कदम्बं शिखिपिङ्गका ।
पाटला चम्पकं हृद्यं लवङ्गमतिमुक्तकः ।।
केतकी कुरबकं शिल्बं कल्हारं वासकं द्विजम् ।
पञ्चविंशति पुष्पाणि लक्ष्मीतुल्यप्रियाणि मे ।। इति ।

हारीतस्मृतौ--

तुलस्यौ पङ्कजे जात्यौ केतक्यौ करवीरकौ ।
शस्तानि दश पुष्पाणि तथा रक्तोत्पलानि च ।।

स्कान्दे--

कृत्वा पुष्पगृहं विष्णोः पुष्पैर्वा तद्वितानकम् ।
फलेन योगमायाति राजसूयाश्वमेधयोः ।।

स्कान्दे--

स्नानं न कृत्वा ये केचित्पुष्पं गृह्णन्ति वै नराः ।
देवास्तन्नैव गृह्णन्ति पितरः खलु वै द्विज ! ।।

गारुडे--

तुलसीदललग्नेन चन्दनेन जनार्दनम् ।
विलेपयति यो नित्यं लभते चिन्तितं फलम् ।।

पाद्मे--

त्यक्त्वा तु मालतीपुष्पं मुक्त्वा चैव सरोरुहम् ।
गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्या माधवमर्चयेत् ।।
तस्य पुण्यफलं वक्तुमलं शेषोपि नो भवेत् ।

बृहन्नारदीये--

यद्गृहे नास्ति तुलसी शालग्रामशिलार्चने ।
श्मशानसदृशं विद्यात्तद्गृहं शुभवर्जितम् ।।

तुलसीग्रहणे मन्त्रः स्कान्दे--

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ! ।
केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ! ।।
त्वदङ्गसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम् ।
तथा कुरु पवित्राङ्गि ! कलौ मलविनाशिनि ! ।।

विष्णुधर्मोत्तरे—

न छिन्द्यात्तुलसीं विप्रा ! द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् ।

वायुपुराणे—

अस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते नरः ।
सोऽपराधी भवेत्सत्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।।

धूपविधिः गौतमीये—

अगुरूशीरगुग्गुलसिताज्यमधुचन्दनैः ।
सारंगारे विनिक्षिप्तैः साधको धूपमर्पयेत् ।।

विष्णुधर्मे—

तथैव शुभगन्धा ये धूपास्ते जगतः पतेः ।
वासुदेवस्य धर्मज्ञैर्निवेद्या दानवेश्वर ! ।।

दीपविधिः नारसिंहे—

घृतेन वाथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ।
विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं श्रृणु ।।
विहाय पापं सकलं सहस्रादित्यसम्प्रभः ।
ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोके महीयते ।।

नैवेद्यविधिः श्रीमद्भागवते—

गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ।
संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ।।
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि प्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ।।

श्रुतौ–

यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ।। इति ।

श्रीमद्भगवद्गीतायां च–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या समर्पयेत् ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।

स्कान्दे–

हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ।
नैवेद्यं देवदेवाय यावकं पायसं तथा ।।
नैवेद्यानामभावे तु तोयं च विनिवेदयेत् ।
तदभावे तु सर्वत्र मानसं प्रवरं स्मृतम् ।।

विष्णुधर्मोत्तरे–

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं पूजयेद्धरिम् ।
अपूज्य भोजनं कुर्वन् नरकानि व्रजेन्नरः ।।

अथ नीराजनमाहात्म्यं विष्णुधर्मे–

धूपं चारात्रिकं पश्येत्कराभ्यां च प्रवन्दते ।
कुलकोटि समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम् ।।

अन्यत्रापि–

बहुवर्त्तिसमायुक्तं ज्वलन्तं केशवोपरि ।
कुर्यादारात्रिकं यस्तु कल्पकोटि वसेद्दिवि ।।
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ।
दहत्यालोकमात्रेण विष्णोरारात्रिकं शुभम् ।।

केशवोपरि सजलशङ्खभ्रामणमाहात्म्यं द्वारकामाहात्म्ये—

शङ्खे कृत्वा तु पानीयं भ्रामयेत्केशवोपरि ।।

संनिधौ वसते विष्णोः कल्पान्तं क्षीरसागरे ।।

जपमाहात्म्यं स्मृतिषु—

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।
जप्येनैव च संसिद्धो ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यं न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।।

इत्यादि ।

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मीति' गीतायां च ।

जपभेदा नारसिंहे—

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदान्निबोधत ।
वाचिकश्च ह्युपांशुश्च मानसश्च त्रिधा मतः ।।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ।
यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः ।।
मन्त्रमुच्चारयेद्व्यक्तं जपयज्ञः स वाचिकः ।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयन् ।।
किञ्चिच्छब्दं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः ।

जपे दोषाः मन्त्रार्णवे—

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत्क्वचित् ।।

श्रीनारदपञ्चरात्रे—

अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोपि वा ।
प्रलपन्वा जपेद्यावत्तावन्निःफलमुच्यते ।।

व्यासस्मृतौ—

अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं तज्जप्तं मेरुलङ्घने ।
असङ्ख्यया तु यज्जप्तं तत्सर्वं निःफलं भवेत् ।।

भगवति जपसमर्पणमन्त्रः–

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव! त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिरा ।।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धौ सप्तमस्तरङ्गः ।। ७ ।।

अथ मुद्रा निरुप्यन्ते तत्त्वसारे–

आवाहनीं स्थापनीं च तथाऽन्यां सन्निधापनीम् ।
सन्निरोधकरीं चान्यां सकलीकरणीं पराम् ।।
तथावगुण्ठनीं पश्चादमृतीकरणीं तथा ।
परमीकरणीं चान्यां प्रागष्टौ दर्शयेदिमाः ।।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं मुसलं शार्ङ्गमेव च ।
खड्गपाशाङ्कुशौ तद्वद्वैनतेयं तथैव च ।।
श्रीवत्सकौस्तुभौ वेणुमभीतिवरदौ तथा ।
वनमालां तथा मन्त्री दर्शयेत्कृष्णपूजने ।।
मुद्रा चापि प्रयोक्तव्या नित्यं बिल्वफलाकृतिः ।
इत्येताश्च पुनः सप्तदशमुद्राः प्रदर्शयेत् ।
गन्धदिग्धौ करौ कृत्वा मुद्राः सर्वत्र योजयेत् ।
योऽन्यथा कुरुते मूढो न सिद्धिफलभाग्भवेत् ।

अष्टमुद्रालक्षणमागमे—

सम्यक् सम्पूरितैः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोऽञ्जलिः ।
आवाहनी समाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः ।। १ ।।
अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते ।। २ ।।
अश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मिका ।।
सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।। ३ ।।

अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ॥ ४ ॥
अङ्गैरेवाङ्गविन्यासः सकलीकरणा मता ॥ ५ ॥

अन्यत्र च—

मुष्टिद्वयस्थिराङ्गुष्ठौ सन्मुखौ च परस्परम् ।
संश्लिष्टौ चोच्छ्रितौ कृत्वा सेयं सन्मुखमुद्रिका ॥ ३ ॥
देवाङ्गेषु षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।
हृदयादिशरीरान्ते कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च ॥
हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ॥ ५ ॥
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ॥
अवगुण्ठनमूद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ।
अन्योन्यतर्जनीयुग्मभ्रमणादवगुण्ठनम् ॥ ६ ॥
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टकनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥
अमृतीकरणं कुर्यात्तया देशिकसत्तमः ॥ ७ ॥
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुलिः ॥
महामुद्रेयमुद्दिष्टा परमीकरणे बुधैः ॥ ८ ॥

आवाहनाद्यर्थं उक्त आगमे—

आवाहनं चादरेण सन्मुखीकरणं प्रभोः ।
भक्त्या निवेशनं तस्य संस्थापनमुदाहृतम् ॥
तवास्मीति तदीयत्वदर्शनं सन्निधापनम् ।
क्रियासमाप्तिपर्यन्तस्थापनं सन्निरोधनम् ॥
सकलीकरणं चोक्तं तत्सर्वाङ्गप्रकाशनम् ।
आनन्दघनतात्यन्तप्रकाशो ह्यवगुण्ठनम् ॥
अमृतीकरणं सर्वैरङ्गैरेवावरुद्धता ।
परमीकरणं नामाभीष्टसम्पादनं परम् ॥

सप्तदशमुद्रालक्षणमागमे—

वासाङ्गुष्ठं विधृत्वैव मुष्टिना दक्षिणेन तु ।
तन्मुष्ट्या पृष्ठदेशे तु योजयेच्चतुरङ्गुलीः ।।
दक्षिणे चोन्मुखेन्ति वामाग्राणितु योजयेत् ।
कथिता शङ्खमुद्रेयं वैष्णवार्चनकर्मणि ।। १ ।।
अन्योन्याभिमुखाङ्गुष्ठकनिष्ठायुगलं यदा ।
विस्तृताश्चेतराङ्गुल्यस्तदा सौदर्शनी मता ।। २ ।।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुल्य उन्नतौ मध्यमौ गतौ ।
संलग्नौ च तदा मुद्रा गदेयं सम्प्रकीर्तिता ।। ३ ।।
अन्योन्याभिमुखौ पाणी पद्माकारौ च मध्यतः ।।
कर्णिकावन्नताङ्गुष्ठौ पद्ममुद्रा प्रकीर्तिता ।। ४ ।।
मुष्टी कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कृत्वा मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ।। ५ ।।
वामस्य तर्जनीप्रान्ते मध्यमान्तं नियोजयेत् ।
प्रसार्य च करं वामं दक्षिणं करमेव च ।।
नियोज्य दक्षिणस्कन्धे बाणग्रहणवत्ततः ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्योगं कुर्यादेषा प्रकीर्त्तिता ।।
मुनिभिश्शार्ङ्गमुद्रेयं दर्शयेत्कृष्णपूजने ।। ६ ।।
कनिष्ठानामिके द्वे तु दक्षाङ्गुष्ठनिपीडिते ।
शेषे प्रसारिते कृत्वा खड्गमुद्रां प्रदर्शयेत् ।। ७ ।।
पाशाकारं नियोज्यैव वामाङ्गुष्ठान्ततर्ज्जनीम् ।
दक्षिणे मुष्टिमास्थाय तर्ज्जनीं च प्रसारयेत् ।।
तेनैवं संस्पृशेन्मन्त्री वामाङ्गुष्ठस्य मूलकम् ।
पाशमुद्रेयमुद्दिष्टा केशवार्चनकर्मणि ।। ८ ।।
तर्जनीमीषदाकुञ्च्य शेषाणां च निपीडयेत् ।

अङ्कुशं दर्शयेत्तद्वद्गृहीत्वा दक्षमुष्टिना ॥ ९ ॥
अन्योन्यपृष्ठे संयोज्य कनिष्ठे च परस्परम् ।
तर्जन्यग्रं समं कृत्वाङ्गुष्ठाग्रं च तथैव च ॥
ईषदालम्बनं कृत्वा मध्यमेन च पक्षवत् ।
प्रसार्य गारुडी मुद्रा कृष्णमुद्राविधौ स्मृता ॥ १० ॥
अन्योन्यसंमुखे तत्र कनिष्ठातर्जनीयुते ।
मध्यमानामिके तद्वदङ्गुष्ठेन निपीडिते ॥
दर्शयेद्धृदये मुद्रां यत्नाच्छ्रीवत्ससंज्ञकाम् ॥ ११ ॥
अन्योन्याभिमुखे तद्वत्कनिष्ठे संनियोजयेत् ।
तर्जन्यनामिके तद्वत्करौ त्वन्योन्यपृष्ठगौ ॥
उच्छ्रितान्योन्यसंलग्ना दक्षहस्तकराङ्गुलीः ।
निधाय मध्यदेशे तु वाममध्यमतर्जनी ॥
संयोज्य मणिबन्धे तु दक्षिणे योजयेत्ततः ।
वामाङ्गुष्ठेन मुद्रेयं प्रसिद्धा कौस्तुभा मता ॥ १२ ॥
ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका ।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ॥
तर्जनीमध्यमानाम्नाः किञ्चत्सङ्कुच्य चालिताः ।
वेणुमुद्रेयमुद्दिष्टा सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥ १३ ॥

अङ्गं प्रसारितं कृत्वा पृष्ठशाखं वरानने ! ।
प्राङ्मुखं तु करं कृत्वा अभयं परिकीर्त्तिता ॥ १४ ॥

दक्षं भुजं प्रसारित्वा जानूपरि निवेशयेत् ।
प्रसृतं दर्शयेद्देवि ! वरः सर्वार्थसाधिनी ॥ १५ ॥

स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्यङ्गुष्ठमूलयोः ।
करद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका ॥ १६ ॥

विल्वमुद्रालक्षणं क्रमदीपिकायाम्—

अङ्गुष्ठं वाममुद्दण्डितमितरकराङ्गुष्ठकेनात्र बद्ध्वा
तस्याग्रं पीडयित्वाङ्गुलिभिरपि ततो वामहस्ताङ्गुलीभिः।
बध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधीर्व्याहरन्मारबीजं
बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह कथिता स्थापनीया विधिज्ञैः ।।१७।।

स्थिरायामावाहनं विसर्जनं च नास्ति अस्थिरायामुभयमस्ति, तदुक्तं श्रीमद्भागवते—

उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्च्चने।
अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ।।इति।।

अन्यत्रापि—

उद्वासावाहने न स्तः स्थावरे वै यथा तथा ।
शालग्रामार्च्चने नैव ह्यावाहनविसर्जने ।।
शालग्रामे तु भगवानाविर्भूतो यथा हरिः ।
न तथान्यत्र सूर्यादौ वैकुण्ठेपि च सर्वगः ।। इति ।
अङ्गुल्यः करयुग्मस्य सम्प्रसार्य प्रबन्धयेत् ।
मध्यपृष्ठगतेऽनामे तर्ज्जनीभ्यां निरोधयेत् ।।
मध्यमाग्रे समं कृत्वा कनिष्ठे मध्यमोपरि ।
तयोरुपरि चाङ्गुष्ठौ मुद्रायोनिस्तु खेचरी ।।
द्वौ करौ पृष्ठसंलग्नौ भ्रामयेच्चतुरङ्गुलीः ।
छोटिकेयं समाख्याता प्रणामे तां प्रदर्शयेत् ।।
अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्ताङ्गुलीरङ्गुलीभिः संयोज्य परिवर्त्तयेत् ।।
एषा संहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ मता ।

आसनादिषोडशोपचारेषु क्रमात् षोडशमुद्राः प्रदर्शयेत् ।।

तास्तु—

आसने पद्ममुद्रा या केशवस्य सदा प्रिया ।। १ ।।

ईषन्नम्राङ्गुलिर्दक्षः सन्त्यज्याङ्गुष्ठकङ्करः ।
स्वागते स्वस्तिमुद्रा तु मध्यामूलगताङ्गुलः ।। २ ।।
स्वस्तिमुद्रा द्विहत्ता चेन्मुद्रा त्वर्घ्यस्य कीर्त्तिता ।। ३ ।।
तौ च प्रसारितौ हस्तौ पाद्यमुद्रा प्रसाधिता ।। ४ ।।
देशिनीमूलगाङ्गुष्ठा दक्षिणाधःकनीयसी ।
आचाममुद्रा विख्याता देवताचमने विधौ ।। ५ ।।
संयुक्तानामिकाङ्गुष्ठाः तिस्रोऽन्याः संप्रसारिताः ।
मधुपर्के च सा मुद्रा ६ सन्त्यज्य च कनीयसीम् ।।
कृत्वा मुष्टिं तथा स्नाने ७ मध्यमाङ्गुष्ठकौ युतौ ।
अन्या प्रसारितास्तिस्रो मुद्रा वस्त्रस्य चोदिता ।। ८ ।।
मधुपर्की समुत्ताना मुद्रालङ्कारकी स्मृता ।। ९ ।।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ तिस्रो मध्याः प्रसारिताः ।।
यज्ञोपवीतमुद्रेयं देशिकैः परिकीर्त्तिता ।। १० ।।
मुक्तिनिर्माणिका मुष्टिर्गन्धमुद्रेति सा स्मृता ।। ११ ।।
उत्थिताधोमुखी मध्या साङ्गुष्ठावितरेतराः ।
पुष्पमुद्रा तथा ख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।। १२ ।।
अङ्गुष्ठं तर्जनीलग्नं तिस्रः सङ्कुचिताः पराः ।
मुद्रा धूपप्रदाने स्याद्देवानां तुष्टिकारिणी ।। १३ ।।
उत्ताना धौपकी मुद्रा दीपमुद्रेति कीर्त्तिता ।। १४ ।।
पञ्चाङ्गुल्यग्रसंलग्ना प्रोत्थितोर्ध्वमुखी यदि ।।
द्विधा निबद्धा मुद्रेयं नैवेद्यस्य प्रकीर्त्तिता ।। १५ ।।
नाभौ हृदि ललाटे च करसम्पुटयोगतः ।।
नमस्कारे त्वियं मुद्रा देवतानां प्रसादिनी ।। १६ ।।
अक्षमालां च मुद्रां च मन्त्रं चैव विशेषतः ।
गोपयेद्यत्नतो विद्वान् गौतमीयादिवाक्यतः ।।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धावष्टमस्तरङ्गः ।। ८ ।।

राधया सहितो देवो माधवो वैष्णवोत्तमैः ।
अर्च्यो वन्द्यश्च ध्येयश्च श्रीनिम्बार्कपदानुगैः ।।

अथार्चनप्रकारः ।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय मूर्द्धनि श्रीगुरुं स्मरेत्—
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि

ततः श्रीकृष्णं स्मरेत्—

प्रातः स्मरामि दधिघोषनिवृत्तनिद्रम्
निद्रावसानरमणीयमुखारविन्दम् ।।
हृद्यानवद्यवपुषं नवपङ्कजाभ-
मुन्निद्रपद्मनयनं नवनीतचौरम् ।।

ततः पृथिवीं प्रार्थयेत्—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले ! ।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।। इति ।।

तत उत्थितो यथावत् शौचाचमनदन्तधावनानि विधाय स्नानार्थं तीर्थे गच्छेत् ।। तत्र पाणिपादं प्रक्षाल्याचम्य ओं अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहेऽष्टाविंशतितमे कलौ युगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्त्ते वैवस्वतमन्वन्तरे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकतीर्थे श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे श्रीकृष्णबलेन श्रीकृष्णकैङ्कर्याङ्गभूतं प्रातःस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, शिरसः पादपर्य्यन्तं मृदमालिप्य कटिस्नानं कृत्वा, सूर्य्यमण्डल मालोक्य—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे !।
तेन सत्येन मे देव ! तीर्थं देहि दिवाकर !॥

इति सूर्य्यं प्रार्थ्य,—

गङ्गे च यमुने ! चैव गोदावरि सरस्वति !।
नर्मदे सिन्धुकावेरि ! जलेस्मिन्संनिधिं कुरु ॥

इत्थङ्कुशमुद्रया तीर्थान्यावाह्य, जले एकीकृत्य सम्पूज्य नमस्कृत्य मूलमन्त्रं पठन् निमज्योन्मज्ज्य कुण्डलमुद्रयाऽऽत्मानमेकादशवारं मूलनाभिषिञ्चेत् ॥ जले तिलकाचमने कृत्वा शुद्धे वाससी परिधाय मूलमुच्चार्य श्रीकृष्णं तर्पयामि श्रीमद्गुरुं तर्पयामीत्यादिवद्यथोदितं तर्पणं विधाय ततः स्त्रोत्रं पठन् मौनी वा गृहमागत्य पाणिपादानन-प्रक्षालनं कृत्वा, दक्षिणपादेन देहलीमस्पृशन् बहुधा प्रणामविनयपूर्वकं प्रविश्य, ॐ **आधारशक्तिकमलासनाय नम** इति पठन्, आसनमास्तीर्य्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, आसने उपविश्य, मुद्रितकरः प्राचीदिग्वदनः उत्तराभिमुखो वा कृतस्वस्तिकाद्यासनः यथाशास्त्रमाचमनमूर्ध्वपुण्ड्रं चक्रादि-चिह्नं च कृत्वा गुरून् प्रणम्य, **अस्त्राय फडि**त्यनेन गन्धपुष्पाभ्यां हस्तौ संशोध्य अस्त्रमन्त्रेणैवोर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं कृत्वा अस्त्रमन्त्रेणैव च्छोटिकया दिग्बन्धनं कृत्वा तेनैव मन्त्रेणात्मनः जलेन परिवेष्टनरूपं वह्निप्राकारं भावयेत् ॥ ततः श्रीकृष्णाराधनयोग्यतासिध्यर्थं भूतशुद्धिमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, कच्छपीमुद्रया हृत्पद्मकर्णिकास्थं जीवात्मानमंशभूतं **सोह**मिति मन्त्रेण सुषुम्नामार्गेण मस्तकोपरि सहस्रदलकमलावस्थिते परमात्मन्यं-शिनि संयोज्य पृथिव्यादिपञ्चविंशतितत्त्वानि तत्र विलीनानि विभाव्य भूतशुद्धिं कुर्य्यात् ॥ **यमिति** वायुबीजं षोडशवारं जपन् वामनासापुटेन वायुमापूर्य्य कुम्भकेन तदेव बीजं चतुःषष्टिवारं जपित्वा देहं शुष्कं विभाव्य दक्षिणनासापुटेन तद्बीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन् वायुं विमुञ्चेत् ।

तथारुणवर्णं सपापपुरुषदेहनाशकं **रमित्यग्निबीजं** षोडशवारं जपन् दक्षिणनासापुटेन वायुं पूरयेत् । तदेव बीजं कुम्भके चतुर्गुणं जपन् देहनाशं विभाव्य तदेव बीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन् वामनासापुटेन वायुं रेचयेत् ।। ततः श्वेतवर्णं **ठमिति** चन्द्रबीजं षोडशवारं जपन् वामनासापुटेन वायुं पूरयेत् तद्बीजं ललाटचन्द्रे विलापयेत् ।। **शुक्लवर्णं वमिति** वरुणबीजं चतुःषष्टिवारं जपेत् ।। तेनाऽमृतवृष्टिं मातृकामयीं विभाव्य, तया सकलं श्रीमद्गोपालाराधनयोग्यं शुद्धं भावितं देहं सम्पन्नं विभावयेत् ।। ततः **लमिति** पीतवर्णं पृथिवीबीजं त्रिंशद्वारं जपन् दक्षिणनासापुटेन वायुं रेचयेत् ।।

इति भूतशुद्धिप्रकारः ।।

अथ हृदि हस्तं दत्वा **सोह**मित्यात्ममन्त्रेण हंसः सोऽहं मम प्राणा मम देहन्द्रियाणि मम वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुचिरं श्रीगोपालाराधनाय चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।। ततो हृदयं स्पृष्ट्वा षोडशप्रणवावृत्त्या यथोचितान् संस्कारान् विभावयेत् ।।

इति प्राणप्रतिष्ठा ।।

अथ मातृकान्यासः ।।

अंनमो ललाटे ।। आंनमो मुखवृत्ते ।। इंनमो दक्षिणनेत्रे ।। ईंनमो वामनेत्रे ।। उंनमो दक्षिणश्रोत्रे ।। ऊंनमो वामश्रोत्रे ।। ऋंनमो दक्षिणनासापुटे ।। ॠंनमो वामनासापुटे ।। ऌंनमो दक्षिणगण्डे ।। ॡंनमो वामगण्डे ।। एंनमो उत्तरोष्ठे ।। ऐंनमोऽधरोष्ठे ।। ओंनम उत्तरदन्तपङ्क्तौ ।। औंनमोऽधरदन्तपंक्तौ ।। अंनमः शिरसि ।। अःनमो मुखे ।। कंनमो दक्षिणबाहुमूले ।। खंनमो दक्षिणकूर्परे ।। गंनमो दक्षिणमणिबन्धे ।। घंनमो दक्षिणाङ्गुलिमूले ।। ङंनमो दक्षिणाङ्गुल्यग्रे ।। चंनमो वामबाहुमूले ।। छंनमो वामकूर्परे ।। जंनमो वाममणिबन्धे ।। झंनमो वामाङ्गुलिमूले ।। ञंनमो वामाङ्गुल्यग्रे ।। टंनमो दक्षिणपादमूले ।।

ठंनमो दक्षिणजानुनि ।। डंनमो दक्षिणगुल्फे ।। ढंनमो दक्षिणापादाङ्गु-लिमूले ।। णंनमो दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे ।। तंनमो वामपादमूले ।। थंनमो वामजानुनि ।। दंनमो वामगुल्फे ।। धंनमो वामपादाङ्गुलिमूले ।। नंनमो वामपादाङ्गुल्यग्रे ।। पंनमो दक्षिणपार्श्वे ।। फंनमो वामपार्श्वे ।। बंनमः पृष्ठे ।। भंनमो नाभौ ।। मंनम उदरे ।। यंनमो हृदये ।। रंनमो दक्षिणकक्षे ।। लंनमः ककुदि ।। वंनमो वामकक्षे ।। शंनमो हृदयादिदक्षिणबाहौ ।। षंनमो हृदयादिवामबाहौ ।। संनमो हृदया-दक्षिणपादे ।। हंनमो हृदयादिवामपादे ।। ळंनमो हृदयाद्युदरे ।। क्षंनमो हृदयादिवक्त्रे ।।

इति केवलमातृकान्यासः

ततस्तेषु स्थानेषु **बिन्दुमातृकान्यासम्**-अं नमो ललाटे इत्यादि क्षं नमो हृदयादिवक्त्रे इत्यन्तं कुर्यात् ।। ततस्तेष्वेव स्थानेषु अःनमो ललाटे इत्यारभ्य क्षःनमो हृदयादिवक्त्रे इत्यन्तं **सविसर्गमातृकान्यासं** विन्यसेत् ।। ततस्तेष्वेव स्थानेषु अंःनमो ललाटे इत्यादिरूपं क्षंःनमो हृदयादिवक्त्रे इत्यन्तं **सविसर्गानुस्वारं मातृकान्यासं** विन्यसेत् ।। एवमात्मनो भगवदाराधने कलेवरशुद्धिसम्पादनाय चतुर्विधं **मातृका-न्यासं** कुर्य्यात् ।।

अथ केशवादिन्यासप्रकारः ।।

अं केशवाय कीर्त्यै नमो ललाटे ।। आं नारायणाय कीर्त्यै नमो मुखवृत्ते ।। इं माधवाय तुष्ट्यै नमो दक्षिणनेत्रे ।। ईं गोविन्दाय तुष्ट्यै नमो वामनेत्रे ।। उं विष्णवे धृत्यै नमो दक्षिणकर्णे ।।ऊं मधुसू-दनाय शान्त्यै नमो वामकर्णे ।। ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमो दक्षिणनासापुटे ।। ॠं वामनाय दयायै नमो वामनासापुटे ।। ऌं श्रीधराय मेधायै नमो दक्षिणगण्डे ।। ॡं ऋषीकेशाय हर्षायै नमो वामगण्डे ।। एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नम उत्तरोष्ठे ।। ऐं दामोदराय

लज्जायै नमोऽधरोष्ठे ।। ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नम ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ।। औं सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमोऽधोदन्तपङ्क्तौ ।। अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः शिरसि ।। अः अनिरुद्धाय रत्यै नमो मुखे ।। कं चक्रिणे जयायै नमो दक्षिणबाहुमूले ।। खं गदिने दुर्गायै नमो दक्षिणकूर्परे ।। गं शार्ङ्गिणे प्रभायै नमो दक्षिणमणिबन्धे ।। घं खड्गिने सत्यायै नमो दक्षिणहस्ताङ्गुलिमूले ।। ङं शङ्खिने चन्द्राय नमो दक्षिणाहस्ताङ्गुल्यग्रे ।। चं हलिने वाण्यै नमो वामबाहुमूले ।। छं मुसलिने विलासिन्यै नमो वामकूर्परे ।। जं शूलिने विजयायै नमो वाममणिबन्धे ।। झं पाशिने विरजायै नमो वामहस्ताङ्गुलिमूले ।। ञं अङ्कुशिने विश्वायै नमो वामहस्ताङ्गुल्यग्रे ।। टं मुकुन्दाय विदायै नमो दक्षिणपादमूले ।। ठं नन्दजाय सुनन्दायै नमो दक्षिणजानुनि ।। डं नन्दिने स्मृत्यै नमो दक्षिणगुल्फे ।। ढं नराय ऋद्ध्यै नमौ दक्षिणपादाङ्गुलिमूले ।। णं नरकजिते समृद्ध्यै नमो दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे ।। तं हरये शुद्ध्यै नमो वामपादमूले ।। थं कृष्णाय वृद्ध्यै नमो वामजानुनि ।। दं सत्याय मुक्त्यै नमो वामगुल्फे । धं सात्वताय सत्यै नमो वामपादाङ्गुलिमूले ।। नं शौरये क्षमायै नमो वामपादाङ्गुल्यग्रे ।। पं शूराय रमायै नमो वामपार्श्वे ।। फं जनार्दनाय उमायै नमो दक्षिणपार्श्वे ।। बं भूधराय क्लेदिन्यै नमः पृष्ठे ।। भं विश्वादिमूर्त्तये क्लिन्नायै नमो नाभौ ।। मं वैकुण्ठाय वसुदायै नम उदरे ।। यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमो हृदये । रं असृगात्मने बलिने परायै नमो दक्षिणकक्षे ।। लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नमः ककुदि ।। वं मेदात्मने बलाय सुक्ष्मायै नमो वामकक्षे ।। शं अस्थ्यात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमो हृदयादिवामहस्ते ।। सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नमो हृदयादिदक्षिणपादे ।। हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमो हृदयादिवामपादे ।। ळं शक्त्यात्मने विमलाय अमोघायै नमो हृदया-

द्य ुदरे ।। क्षं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्य ुते नमो हृदयादिमुखे ।। लक्ष्मीकामः शीघ्रं भगवद्भावापत्तिकामश्च श्रींअंकेशवाय कीर्त्त्यै नमो ललाटे, इत्यादीन् प्रयोगान् कुर्य्यात् ।। श्रींअंकेशवकीर्तिभ्यां नमो ललाटे इत्येवं वा प्रयोगाः कर्त्तव्याः ।।

न्यासाधिष्ठातृध्यानं न्यासफलं च सकलविद्वद्वृन्दवन्दितैः सर्वतंत्रसिद्धान्तविद्भिः श्रीकेशवभट्टैः **क्रमदीपिकायां** प्रथमपटले प्रोक्तम्—

उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वयात्र्या च जुष्टम् ।
नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं
विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ।।
ध्यात्वैवं परमपुमांसमक्षरैर्यो
विन्यस्येद्दिनमनु केशवादियुक्तैः ।
मेधायुःस्मृतिधृतिकीर्तिकान्तिलक्ष्मी–
सौभाग्यैश्चिरमुपबृंहितो भवेत्सः ।। इति ।।

इति केशवादिन्यासः ।

अथ तत्त्वन्यासः ।।

मंनमः पराय जीवात्मने नमः ।। भंनमः पराय प्राणात्मने नमः ।। **इति द्वयं सकलशरीरे ।** बंनमः पुराय बुद्ध्यात्मने नमः ।। फं नमः पराय अहङ्कारात्मने नमः ।। पंनमः पराय मनआत्मने नमः ।। **इति त्रयं हृदि** ।। नंनमः पराय शब्दात्मने नमः शिरसि ।। धंनमः पराय स्पर्शात्मने नमो मुखे ।। दंनमः पराय रूपात्मने नमः हृदि ।। थंनमः पराय रसात्मने नमो गुह्ये ।। तंनमः पराय गन्धात्मने नमः पादयोः ।। णंनमः पराय श्रोत्रात्मने नमः श्रोत्रयोः ।। ढंनमः पराय त्वगात्मने नमस्त्वचि ।। डंनमः पराय चक्षुरात्मने नमः चक्षु-

षोः ।। ठंनमः पराय जिह्वात्मने नमः रसने ।। टंनमः पराय घ्राणात्मने नमः घ्राणयोः ।। ञंनमः पराय वागात्मने नमो मुखे ।। झंनमः पराय पाण्यात्मने नमः हस्तयोः ।। जंनमः पराय पादात्मने नमः पादयोः ।। छंनमः पराय पाय्वात्मने नमः पायौ ।। चंनमः पराय गुह्यात्मने नमो गुह्ये ।। ङंनमः पराय आकाशात्मने नमः शिरसि ।। घंनमः पराय वाय्वात्मने नमः मुखे ।। गंनमः पराय तेजआत्मने नमो हृदि ।। खंनमः पराय अब्वात्मने नमो गुह्ये ।। कंनमः पराय पृथिव्यात्मने नमः पादयोः ।। क्षंनमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमः ।। हं नमः पराय द्वादशकलासूर्य्यमण्डलात्मने नमः । संनमः परायषोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः ।। षंनमः पराय दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः ।। **एतच्चतुष्टयं हृदि** ।। शंनमः पराय वासुदेवाय परमेष्ठ्यात्मने नमः शिरसि ।। वंनमः पराय सङ्कर्षणाय पुरुषात्मने नमो मुखे ।। लंनमः पराय प्रद्युम्नाय विश्वात्मने नमो हृदि ।। रंनमः पराय अनिरुद्धाय निवृत्त्यात्मने नमः गुह्ये ।। यंनमः पराय नारायणाय सर्वात्मने नमः पादयोः ।। क्षौंनमः पराय नृसिंहाय कोपतत्त्वात्मने नमः सर्वशरीरे ।।

इति तत्त्वन्यासः ।।

तत्त्वन्यासान्ते वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणायामं कुर्य्यात् ।

अथ पूजापीठप्रकारः ।।

आधारशक्तये नमः ।। प्रकृत्यै नमः ।। कूर्माय नमः ।। अनन्ताय नमः ।। पृथिव्यै नमः ।। क्षीरसिन्धवे नमः ।। श्वेतद्वीपाय नमः ।। महामण्डपाय नमः ।। कल्पवृक्षाय नमः ।। **एतन्नवकं हृदि विन्यसेत्** ।। धर्म्माय नमो दक्षिणांशे ।। ज्ञानाय नमो वामांसे ।। वैराग्याय नमो वामोरौ ।। ऐश्वर्याय नमो दक्षिणोरौ ।। अधर्माय नमो मुखे ।। अज्ञानाय नमो वामपार्श्वे ।। अवैराग्याय नमः कट्यां ।।

अनैश्वर्याय नमो दक्षिणपार्श्वे । अनन्ताय नमः ।। पद्माय नमः ।। अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्य्यमण्डलात्मने नमः ।। उं षोडशकलाव्याप्तचन्द्र-मण्डलात्मने नमः ।। मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः ।। सं सत्त्वाय नमः ।। रं रजसे मनः ।। तं तमसे नमः ।। अं आत्मने नमः ।। अं अन्तरात्मने नमः ।। पं परात्मने नमः ।। ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।। **इति हृदि विन्यसेत्** ।। अथ हृत्पुण्डरीके कर्णिकायां पूर्वादिकेशरेषु प्रादक्षिण्येन--विमलायै नमः १ उत्कर्षिण्यै नमः २ ज्ञानायै नमः ३ क्रियायै नमः ४ योगायै नमः ५ प्रह्व्यै नमः ६ सत्वायै नमः ७ ईशायै नमः **८-इति अष्टौ शक्तयो विन्यसेत्** । कर्णिकायां अनुग्रहायै नमः **९ इति विन्यसेत** ।। एवमुक्तप्रकारेण पीठव्यापकतया ॐनमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः **इतिपीठमन्त्रं विन्यसेत्** ।। तत्र-योगपीठे नित्यानन्तानन्दं सर्वप्रकाशज्ञानघनं स्वाभाविकानन्तगुणशक्तिसिन्धुं श्रीकृष्णं चिन्तयेत् । ततः कलाविद्यादन्तसंख्याभेदेन वामनासापुटपूर्वकपूरकादिक्रमेण कामबीजजयेन प्राणायामं कुर्यात् ।। यद्वा वेदकलावसुसंख्ययाऽन्यत् पूर्ववत् ।। यदि सर्वगोपालमनुमौलिना स्मरणमात्रेण सर्वपुरुषार्थप्रदेन श्रीमदष्टादशाक्षरेण प्राणायामः क्रियते तदा तु रविसंख्यया ।। एवं जपाद्यन्ते प्राणायामं कुर्यात् ।।

इति प्राणायामप्रकारः ।।

अथ मन्त्रादौ न्यासः । तत्रादौ—

ऋषिनारद इत्युक्तो गायत्रीछन्द उच्यते ।
गोपवेशधरः कृष्णो देवता परिकीर्त्तितः ।।
बीजं मन्मथसंज्ञं तु प्रियाशक्तिर्हविर्भुजः ।
योगमाया महेशानी ह्यस्याधिष्ठातृदेवता ।।
चतुर्वर्गफलावाप्तौ विनियोगः प्रकीर्त्तितः । इति—

संमोहनतन्त्रोक्तर्ष्यादिस्मरणं कर्त्तव्यम् ।।

ॐअस्य श्रीमद्गोपालमन्त्रस्याष्टदशाक्षरस्य श्रीमन्नारद ऋषिर्गायत्री छन्द: श्रीमद्गोपालो देवता कामो बीजं स्वाहा शक्तिर्योगमाया कीलकं श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे सर्वपुरुषार्थसिद्धये जपे ,विनियोग: । ॐ नारदऋषये नम: शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीमद्गोपालाय देवतायै नमो हृदि, क्लींबीजाय नमो गुह्ये, स्वाहा शक्तयै नम: पादयो:, योगनिद्राकीलकाय नम: सर्वाङ्गे ।।

इति ऋष्यादिन्यास: ।।

मन्त्रस्य प्रथमाक्षरं १ तदनन्तरमक्षरत्रयं २ तदनन्तरमक्षरचतुष्टयं ३ तदनन्तरं द्वितीयमक्षरचतुष्कं ४ तदनन्तरं ,तृतीयमक्षरचतुष्कं ५ तदनन्तरमक्षरद्वयं ६ क्रमेणैकैकस्यादौ यथासंख्यं योजयित्वा करन्यासं हृदयादिन्यासञ्च कुर्यात् ।। अङ्गुष्ठाभ्यां नम: १ तर्जनीभ्यां नम: २ मध्यमाभ्यां नम: ३ अनामिकाभ्यां नम: ४ कनिष्ठिकाभ्यां नम: ५ करतलकरपृष्ठाभ्यां नम: ६ ।

इति करन्यास: ।।

हृदयाय नम: १ शिरसे स्वाहा २ शिखायै वषट् ३ कवचाय हुं ४ नेत्रत्रयाय वौषट् ५ अस्त्राय फट् ६ ।। यद्वा नेत्रवर्जितैर्हृदयादिभिर्मन्त्रपदपूर्वकैर्न्यास: ।

इति हृदयादिन्यास: ।

मन्त्रस्य पञ्चपदानि यथासंख्यं नकारादौ संयोज्य पदन्यासं कुर्यात्-नमो मूर्द्धनि १ नमो वक्त्रे २ नमो हृदि ३ नमो नाभौ ४ नमो मूले । ५ ।।

इति पदयान्स: ।

अथाष्टादशाक्षराणि अष्टादशानां नकाराणामादिषु विन्यस्याक्षरन्यासं कुर्यात्-नमो ब्रह्मरन्ध्रे १ नमो ललाटे २ नमो भ्रुवोर्मध्ये ३

नमो दक्षिणकर्णे ४ नमो वामकर्णे ५ नमो दक्षिणनेत्रे ६ नमो वामनेत्रे ७ नमो दक्षिणनासापुटे ८ नमो वामनासापुटे ९ नमो वदने १० नमो कण्ठे ११ नमो हृदि १२ नमो नाभौ १३ नमो दक्षिणकटचां १४ नमो वामकटचां १५ नमो मूले १६ जानुनोः १७ नमः पादमोः १८ ॥

इति वर्णन्यासः ।

मूलेन त्रिव्यापकं कृत्वा-

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढचं वनमालिनमीश्वरम् ॥
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ।
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमलताश्रितम् ॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयेच्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥

इत्येवं श्रीमद्गोपालं घ्यात्त्वा तं मानसोपचारैः सम्पूज्य यथाशक्ति जपं कुर्यात् ॥ उक्तप्रकारेण जपान्ते प्राणायामं कुर्य्यात्—
'गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्' । इति जपं समर्पयेत् । इति जपप्रकारः ॥

अथ श्रीमूर्तिपूजां समारभेत् । दक्षिणे सघृतदीपपूजाद्रव्यस्थापनम् । पृष्ठे करप्रक्षालनपात्रस्थापनम् वामे कलशतैलदीपादिस्थापनम् । पुरतो देवसिंहासनस्थापनम् ।

अथ शङ्खस्थापनम् ॥

स्वपुरतो वामभागे गन्धोदकेन त्रिकोणवत्त ुलचतुरस्रमण्डलमालिख्य ॐनम इति गन्धपुष्पाभ्यां मण्डलं सम्पूज्य तत्र प्रक्षालितां त्रिपादिकां संस्थाप्य **मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नम** इति गन्धपुष्पाक्षतैस्त्रिपादिकां सम्पूज्य **अं द्वादशाकलात्मने सूर्य-**

मण्डलाय नम इति शङ्खं सम्पूज्य मूलमन्त्रेण शुद्धोदकेन शङ्खमापूर्य्य **ॐषोडशकलात्मने सोममण्डलाय नम** इति शङ्खतोयं च पूजयित्वा '**गङ्गे च यमुने चैवे**'ति तीर्थान्यावाह्य संयोज्य संपूज्य **ॐअमृते अमृतोद्भवे अमृतस्राविणि अमृतं स्रावय क्लीं** इतिमन्त्रेण धेनुमुद्रां प्रदर्शयित्वा शङ्ख १ चक्र २ गदा ३ पद्म ४ गरुड ५ मुद्राः प्रदर्शयित्वा दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां शंखोभयपार्श्वे धृत्वा उपरिप्रसादिततर्जनीमध्यमाभ्यां जपाकुसुमेन वा शङ्खजलं स्पृशन् अष्टवारं मन्त्रं जपेत् ।। ततः सूक्ष्मपात्रेण शङ्खजलं गृहीत्वा कलशे निक्षिपेत्। मूलेन सकृत् आत्मानं प्रोक्ष्य सकलं पूजासाधनं प्रोक्षयेत्।

इति शङ्खपूजाविधिः ।।

अथ शङ्खदक्षिणे पाद्यपात्रे श्यामाकं १ दूर्वा २ अब्जं ३ विष्णुक्रान्तां ४ निक्षिप्य, शङ्खोत्तरे अर्घपात्रे गन्धं १ पुष्पाणि २ अक्षतान् ३ यवान् ४ कुशाग्रम् ५ तिलानि ६ सर्षपाः ७ दूर्वा ८ एतानि निक्षिपेत्। शंखपूर्वे आचमनपात्रे जातीफल १ लवङ्ग २ कङ्कोल ३ पीपरि ४ समाख्यानि द्रव्याणि निक्षिपेत्। शंखपश्चिमे मधुपर्कपात्रे दधिमधुघृतानि निक्षिपेत्। द्रव्याभावे तत्तन्नाम्ना गन्धतुलस्यक्षतान् निक्षिपेत्। ततः सर्वाणि मूलमुच्चार्य कलशजलेन पूरयित्वा गन्धपुष्पैरभ्यर्च्य एकैकशो मूलेनाभिमन्त्र्य किच्चित् किञ्चित् शंखाम्बु धृत्वा धेनुमुद्रां महामुद्रां प्रदर्शयेत् **इति पात्रपूरणम्** ।। भूमौ अष्टदलं पद्मं लिखित्वा तस्मिन्सिंहासनं न्यसेत्।। पीठमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा तस्मिन् ज्ञानानन्दरूपं परं धाम श्रीकृष्णं चिन्तयेत् ।।

इति पीठपूजाविधिः ।।

ततः ताम्रपात्रे श्रीकृष्णमूर्तिं स्थापयित्वा बहुविनयपूर्वकं पुष्पाञ्जलिं दत्वा पञ्चाङ्गन्यासं कुर्यात् ।। ततो मूलमुच्चार्य **श्रीकृष्ण एस**

ते अर्घः स्वाहा इति शिरसि अर्घं दद्यात् ।। मूलमुच्चार्य **श्रीकृष्ण इदं ते पाद्यं नमः** इति पादयोर्दद्यात् ।। मूलमुच्चार्य **श्रीकृष्ण इदं ते आचमनीयं स्वाहा** इति श्रीमन्मुकुन्दमुखे दद्यात् ।। मूलमुच्चार्य **श्रीकृष्ण एष ते मधुपर्कः स्वधा** इति मुखे पुनराचमनं दत्वा शंखतोयेन स्नापयेत् ।। ततोऽङ्गप्रोक्षणं कृत्वाऽथ वस्त्रयज्ञोपवीतभूषणानि समर्पयेत् । गन्धं पुष्पं धूपं दीप च समर्पयेत् ।। नैवेद्यमानीय मूलेन प्रोक्ष्य गन्धपुष्पाभ्यासभ्यर्च्य **यं** इति वायुबीजेनाष्टवारं जप्तेन नैवेद्यदोषान्संशोष्य रं इति अग्निबीजेन नैवेद्यदोषान् दग्ध्वा वं इति अमृतबीजेन वारुणेन नैवेद्यं अमृतमयं विचिन्त्य धेनुमुद्रां महामुद्रां प्रदर्श्य चक्रमुद्रया **अस्त्राय फडिति** संरक्ष्य मूलेनाभिमन्त्रयेत् । **ॐअमृतोपस्तरणमसि स्वाहा** इति आपोशानं विभाव्य मूलमन्त्रेण **साङ्गाय सपरिवाराय नमः सायुधाय सवाहनाय श्रीकृष्णाय यथाक्रमं नैवेद्यं समर्पयामि** इतिशंखजलं किञ्चिद्दत्वा नैवेद्यपात्रं स्पृष्ट्वा धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् **ॐप्राणाय स्वाहा ॐअपानाय स्वाहा ॐव्यानाय स्वाहा ॐउदानाय स्वाहा ॐसमानायस्वाहा इति** पञ्च प्राणाहुतीश्चिन्तयेत् । ततो भगवन्तं भुञ्जानं चिन्तयन् यथाशक्ति जपं कुर्य्यात् ।। तत **ॐअमृतपिधानमसि स्वाहा** इति उत्तरापोशानं दत्वा आचमयेत् ।। ततस्ताम्बूलार्पणम् ।। ततो नीराजनम् । ततः सजलं शङ्खं देवोपरि भ्रामयित्वा तज्जलेन जनतामात्मानं च प्रोक्षयेत् । ततो—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव दीनं मामात्मसात्कुरु ।।

इति क्षमाप्य **सर्वतीर्थमयाय श्रीकृष्णपादोदकाय नमः** इति गन्धपुष्पाभ्यां अभ्यर्च्य तीर्थपात्रं शिरसि निधाय आधारे निधाय

पार्षदेभ्यो हरिदासेभ्यो दत्वा पश्चात्स्वयं निवेदयेत् । ततः यथाशक्ति स्तोत्रजपादि कृत्वा प्रदक्षिणानमस्कारादीन् कृत्वा स्वकृतं श्रीगोपालार्च्चनं तस्मै समर्प्य श्रीभगवन्नैवेद्यशेषं पार्षदादिभ्यः समर्पयेत् ।

तदुक्तं नारसिंहे—

ततस्तदन्नशेषेण पार्षदेभ्यः समन्ततः ।
पुष्पाक्षतैर्विमिश्रेण बलिं यस्तु प्रयच्छति ।।
बलिना वैष्णवेनाथ तृप्ताः सन्तो दिवौकसः ।
शान्तिं तस्य प्रयच्छन्ति श्रियमारोग्यमेव च ।। इति ।।

ततः सपरिकरो निषेवयेत् । ततो यथाशक्ति भगवन्नामसहस्रादिपाठेन **श्रीभगवद्गीतायाः श्रीमद्भागवतस्य** च श्रवणपठनादिना कालक्षेपं कुर्यात् । **गीतानिरन्तरं भीष्मपर्वणि—**

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिर्गता ।।

श्री भागवते—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां धनं
यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविःकृतम्
तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ।।

इति श्रीगोपालाराधनप्रकारः—

कृत्वाऽभिगमनं पूर्वमुपादाय च सम्पदः ।
इष्ट्वाऽध्यायं प्रयुञ्जानो योगैः कालं नयेद्यतिः ।। इति—

श्रीभारद्वाजोक्तः ।

अभिगमनोपादानेज्यास्वाध्याययोगाख्यपञ्चविधभजनकालः पञ्च-कालानुष्ठानमीमांसादौ पूर्वाचार्यैर्विस्तरतो व्याख्यातस्तत्रैव द्रष्टव्यः ।।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धौ नवमस्तरङ्गः ।। ९ ।।

-o-☀-o-

द्वात्रिंशदपराधा वैष्णवेन प्रयत्नतो वर्जनीयाः । ते चोक्ता आगमे—

यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे ।
देवोत्सवे सुसेवायामप्रणामस्तदग्रतः ॥

उच्छिष्टे वाप्यशौचे वा भगवद्वन्दनादिकम् ।
एकहस्तात्प्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणा ॥

पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् ।
शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च ॥

उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः ।
निग्रहानुग्रहौ चैव तथैव क्रूरभाषणम् ॥

कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।
अश्लेषभाषणं चैवमधोवातविमोक्षणम् ॥

शक्तौ गौणोपचारश्च ह्यनिवेदितभक्षणम् ।
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम् ॥

विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनादिके ।
पृष्टीकृत्यासनं चैव सन्निन्दाऽसतां स्तुतिः ॥

गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ।
अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः ॥

अपराधशमनं स्कान्दे—

अहन्यहनि यो मर्त्यो गीताध्यायं तु सम्पठेत् ।
द्वात्रिंशदपराधैस्तु ह्यहन्यहनि मुच्यते ॥

कार्त्तिकमाहात्म्ये—

तुलस्या कुरुते यस्तु शालग्रामशिलार्चनम् ।
द्वात्रिंशदपराधानि क्षमते तस्य केशवः ॥

सर्वपापशमनप्रकारः श्रीमद्भागवते--

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुक् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजमित्रगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ।।
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ।। इति ।।
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ।। इति च ।

अन्यत्र शङ्करवाक्यम्—

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तस्योक्तं हरिसंस्मरणं परम् ।। इति ।।

अथ भगवत्तोषकास्तद्भृत्यगुणाः । विष्णुधर्मोत्तरे—

आपद्यपि च कष्टायां देवेश ! शपथं नरः ।
न करोति हि यो ब्रह्मन् ! तस्य तुष्यति केशवः ।।
न धारयति निर्माल्यमन्यदेवधृतं तु यः ।
भुङ्क्ते न चान्यनैवेद्यं तस्य तुष्यति केशवः ।।

वैष्णवे—

परापवादं पैशुन्यमनृतं ये न भाषते ।
अनुद्वेगकरं वाऽपि तोष्यते तेन केशवः ।।
परपत्नीपरद्रव्यपरहिंसासु यो मतिम् ।
न करोति पुमान् भूयः तोष्यते तेन केशवः ।।
न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र ! तोष्यते तेन केशवः ।।

विष्णुधर्मे—

परद्रव्येषु जात्यन्धाः परदारेष्वपुंसकाः ।
परवादेषु ये मूकास्तेऽतीवदयिता मम ।।

पुनस्तत्रैव—

रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टानृतादिना ।
हिंसादिरहितः कायः केशवाराधनं त्रयम् ।।

श्रीमद्भागवते—

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै—
राराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदययाऽसदलभ्ययैको
नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ।।

श्रीमद्भगवद्गीतायां च—

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्ज्जितः ।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।

चतस्रः प्रदक्षिणाः श्रीमद्विष्णोः कुर्यात्, तथोक्तं स्कान्दे—

चतुर्वारं भ्रमीभिस्तु जगत्सर्वं चराचरम् ।
क्रान्तं भवति विप्राग्र्य ! तत्तीर्थं गमनाधिकम् ।।

नारसिंहे—

एका चण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके ।

चतस्रः केशवे दद्याच्छिवे त्वर्द्धप्रदक्षिणाम् ।।

स्तुतिमाहात्म्यं नारसिंहे—

स्तोत्रैर्बहुविधैर्देवं यः स्तौति मधुसूदनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।

विष्णुधर्मोत्तरे—

न वित्तदाननिचयैर्बहुभिर्मधुसूदनः ।
तथा तोषमवाप्नोति यथा स्तोत्रैर्द्विजोत्तमाः ! ।।

ततः स्तोत्राणि पूर्वाचार्यैर्बहूनि कृतानि सर्वश्रुतिस्मृतिसारार्थदानि शान्तिकान्तीत्यादीनि (पठेत्) श्रुतिषु इतिहासे पञ्चरात्रे च बहूनि स्तोत्राणि सन्ति । तत्र—

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ।।
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ।।
नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ।।
वर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ।।
कंसवंशविनाशाय केशचाणूरघातिने ।
वृषभध्वजबन्धाय पार्थसारथये नमः ।।
वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्द्दिने ।
कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ।।
बल्लवीनयनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ।।
नमः पापप्रणाशाय गोवर्द्धनधराय च ।

पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ।।
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ।।
—इति श्रुतिप्रोक्तं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।।

महाभारते च पुराणगीतायाम् ब्रह्मस्तोत्रम्—

ध्यानेनावेद्य तद्ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् ।
नमश्चकार हृष्टात्मा पुरुषं परमेश्वरम् ।।
ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वाब्रह्माणमुत्थितम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदुद्भवम् ।।
यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ।।
विश्वावसुर्विश्वभूर्तिर्वरेशो
विश्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च ।
विश्वेश्वरो वासुदेवोसि तस्मा-
द्योगात्मानं दैवतं त्वासुपैमि ।।
जय विश्वमहादेव! जय लोकहिते रत! ।
जय योगीश्वर विभो! जय योगपरावर ! ।।
पद्मगर्भविशालाक्ष ! जय लोकेश्वरेश्वर ! ।
भूतभव्यभवन्नाथ ! जय सौम्य ! परात्पर ! ।।
असंख्येयगुणाधार ! जय सर्वपरायण ! ।
नारायण सुदुष्पार ! जय शार्ङ्गधनुर्धर ! ।।
जय सर्वगुणोपेत विश्वमूर्त्ते निरामय ! ।।
सर्वेश्वर महाबाहो ! जय लोकार्थतत्पर ! ।।
महोरग वराहाद्य हरिकेश प्रभो ! जय ।
हरिवासदिशामीश विश्ववासापिताव्यय ! ।।

व्यक्ताव्यक्तामितस्थान नियतेन्द्रियसत्क्रिय ! ।
असंख्येयात्मभावज्ञ ! जय गम्भीरकामद ! ।।
अनन्तविदितब्रह्म नित्यभूतविभावन ! ।
आत्मयोने महाभाग कल्पसंख्येयतत्पर ! ।।
उद्भावनमनोभाव! जय ब्रह्मजनप्रिय ! ।
निसर्गसर्गनिरत कालेश परमेश्वर ! ।।
अमृतोद्भवसद्भाव व्यक्तात्मन् विजयप्रद ! ।
प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल ! ।।
आत्मभूत महाभूत कर्मात्मन्! जय सर्वद ! ।
न सांख्यं न परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् ।।
न बलं योगयोगीश ! जानीमस्ते न सम्भवम् ।
त्वद्भक्तिनिरता देव! नियमैस्त्वां समाश्रिताः ।।
अर्चयामः सदा विष्णो ! परमेशं जयं हि त्वाम् ।
ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।।
पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः ।
पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःखविनाशन ! ।।

पञ्चरात्रे च – जितं ते यप्रभृतीनि स्तोत्राणि सन्ति, पुराणेषु च बहूनि स्तोत्राणि सन्ति विस्तरभयान्नोदाहृतानि ।।

प्रार्थनाप्रकारः श्रुतौ—

प्रसीद परमानन्द ! प्रसीद परमेश्वर ! ।
आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ! ।।
श्रीकृष्ण रुक्मिणीनाथ गोपीजनमनोहर ! ।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ! ।।
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्द्दनं ! ।

गोविन्द परमानन्द ! मां समुद्धर माधव ! ।।

विष्णुपुराणे—

नाथ ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ।।
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु ।।

प्रणाममाहात्म्यं नारदीये—

एकोपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।।

आगमे प्रणामप्रकारः—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।।
जानुभ्यां चैव बाहुभ्यां शिरसा वचसा धिया ।
पञ्चाङ्गकः प्रणामः स्यात्पावनौ प्रवराविमौ ।। इति ।।

स्कान्दे—

गीतं वाद्यं च नृत्यं च नाट्यं विष्णुकथां मुने ।
यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः ।।

नारदीये—

विष्णोर्गीतं च नृत्यं च नटनं च विशेषतः ।
ब्रह्मन् ! ब्राह्मणजातीनां कर्त्तव्यं नित्यकर्मवत् ।।

पुष्पधूपशेषादिकं तन्निर्माल्यं शिरसा धारणीयमित्युक्तं स्कान्दे—

कृष्णोत्तीर्णं तु निर्माल्यं यस्याङ्गं स्पृशते मुने ! ।
सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति नारद ! ।।

चरणोदकमाहात्म्यं पाद्मे–

कोटितीर्थसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् ।
नित्यं यदि पिबेत्पुण्यं शालग्रामशिलाजलम् ।।

प्रसादान्नभक्षणमाह श्रुतिः—

'एक एव नारायण आसीत्, न ब्रह्मा न द्यावापृथिव्यौ, सर्वे देवाः सर्वे पितरः सर्वे मनुष्याः विष्णुना अशितमश्नन्ते विष्णुना घ्रातं जिघ्रन्ति विष्णुना पीतं पिबन्ति, तस्माद्विद्वांसो विष्णूपहृतं भक्षयेयुः' इति ।

विष्णुधर्मे—

गन्धान्नवरभक्षांश्च स्रजो वासांसि भूषणम् ।
दत्वा तु देवदेवाय तच्छेसानुपभुञ्जते ।।

स्कान्दे—

शङ्खोदकं तीर्थवराद्वरिष्ठम्
पादोदकं तीर्थगणाद्वरिष्ठम् ।
नैवेद्यशेषं क्रतुकोटिपुण्यं
निर्माल्यशेषं व्रतदानतुल्यम् ।।
नैवेद्यशेषं तुलसीविमिश्रितं
विशेषतः पादजलेन सिक्तम् ।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः
प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम् ।।

अनिवेदितं तु पत्रपुष्पादिकं नैव सेवनीयम्, तदुक्तं ब्रह्माण्ड-पुराणे-

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यथौषधम् ।
अनिवेद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पितम् ।।
अनिवेद्य तु भुञ्जानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ।

तस्मात्सर्वं निवेद्यैव विष्णोर्भुञ्जीत सर्वदा ।।

भगवन्निवेदितमन्नादि भगवद्भक्ताय दद्यात्स्वयं च गृह्णीत, तदुक्तं श्रीभागवते—

निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् ।

व्रतपञ्चके प्रह्लादपञ्चरात्रे—

अभावस्थान्कर्मजडान्वञ्चयेद्दक्षिणादिभिः ।
हरेर्नैवेद्यसम्भारान्वैष्णवेभ्यः समर्पयेत् ।।

किञ्च—

नैवेद्यप्रतिपत्त्यर्थं सात्वतश्चेन्न विद्यते ।
ग्रासमात्रं समुद्धृत्य शेषमप्सु विनिःक्षिपेत् ।।

वैष्णवस्य सर्वार्थसिद्धिर्विष्णुचरणोपासनेनैव भवतीत्युक्तं नारायणीयोपाख्याने—

या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये ।
तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ।। इति ।।

इति श्रीमन्निम्बार्कचरणचिन्तकशुकसुधीसङ्गृहीते
स्वधर्मामृतसिन्धौ दशमस्तरङ्गः ।। १० ।।

अथ वैष्णवलक्षणं विष्णुपुराणे—

न चलति निजवर्णधर्मतो यः
सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः
स्थिरमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ।।
कलिकलुषबलेन यस्य नात्मा
विमलमतेर्मलिनीकृतोऽस्तमोहे ।
मनसि कृतजनार्दनं मनुष्यं
सततमवेहि हरेरतीवभक्तम् ।। इति ।।

अत्र वर्णधर्मः आश्रमधर्मोपलक्षणार्थः, स च भगवद्भजनप्रधानो ग्राह्यः, भगवद्भजनकण्टकभूतो वर्णाश्रमधर्मस्तूपेक्षणीय एव। अत एव **श्रीभागवते**—स्कं. ११/अ.१८/श्लो.२८

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः।। इत्युक्तम्।

बृहन्नारदीये च—

ये हिता सर्वजन्तूनां गतासूया विमत्सराः।
वासनानिस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः।।
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः।।
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः।
तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः।।
मन्मानसाश्च मद्भक्ता मद्भक्तजनलोलुपाः।
सर्वभूतदयायुक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः।।
बहुनात्र किमुक्तेन सङ्क्षेपात्ते ब्रवीम्यहम्।
कृष्णनामरता ये च ते धन्या नात्र संशयः।। इति।

श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे—

ज्ञात्वा ज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः।
भजन्त्यनन्यभावेन ते वै भागवता मताः।।

तृतीयस्कन्धे च-देवहूतिं प्रति कपिलदेवेनोक्तम्—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः।।
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः।।
मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च।

तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥ इति ॥

तथैव महन्माहात्म्यं महल्लक्षणं चोक्तं पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवेन—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥
ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था
जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु।
गृहेषु जायात्मजरार्त्तिमत्सु
न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ इति।

पाद्मे उत्तरखण्डे—

तापादिपञ्चसंस्कारी नवेज्याकर्मकारकः।
अर्थपञ्चकविद्विप्रो महाभागवतो हि सः ॥

तापादिपञ्चसंस्काराः प्रागुक्तास्ते सन्त्यस्य स तथा। अग्नितप्तलाञ्छित एव तापसंस्कारवानिति न शङ्क्यम्, **अग्निर्वै सहस्रार** इति श्रुतौ सुदर्शनस्यैवाग्नित्वादनशीताङ्कधारिणोपि तापसंस्कारित्वात्। नव प्रागुदाहृतानि श्रवणादीनीज्याकर्माणि तत्कारकः। अर्थपञ्चकं वेत्तीति स तथा। अर्थपञ्चकमुक्तम् श्रीपूर्वाचार्येण—

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च
कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्ते-
र्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः ॥ इति।

गारुडे—

येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भावो निवेशितः ।
वैष्णवेषु कृतात्मत्वान्महाभागवतो हि सः ।।

तत्सत्कारहीनानां गृहाणां निन्दोक्ता श्रीमद्भागवते—

व्यालालयद्रुमा ह्येतेऽप्यरिक्ताखिलसम्पदः ।
यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ।। इति ।।

तन्निन्दकानां धर्मादिनाशः नरकपातश्चोक्तः स्कान्दे--

यो वै भागवतानां हि ह्युपहासं नृपोत्तम ! ।
करोति तस्य नश्यन्ति धर्मोर्थश्च यशः सुताः ।।
निन्दां कुर्वन्ति ये मूढा वैष्णवानां महात्मनाम् ।
पतन्ति पितृभिः सार्द्धं महारौरवसंज्ञके ।। इति ।

श्रीभागवतेपि—

निन्दां भगवतः श्रुत्वा तत्परस्य जनस्य वा ।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृतात् च्युतः ।।

भागवतजनवशवर्त्तित्वमात्मनः श्रीभगवानेवाह श्रीभागवते—'अहं भक्तपराधीन' इति ।

भागवतसंस्कारपराणां धन्यत्वमुक्तं श्रीमद्भागवते--

अधना अपि ते धन्या साधवो गृहमेधिनः ।
यद्गृहा अर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरा वराः ।। इति ।।

साधुसत्कारप्रकार उक्तो महाभारते--

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्यात् सुसूनृताम् ।
उत्थाय चासनं दद्यात्स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ।।

पुनस्तत्रैव—

पीठं दत्वा साधवेऽभ्यागताय
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ ।

सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥

लैङ्गे च—

विष्णुभक्तमथायान्तं यो दृष्ट्वा सुमुखः प्रियः।
प्रणामादि करोत्येव वासुदेवे यथा तथा॥
स वै भक्त इति ज्ञेयः स पुनाति जगत्त्रयम्।
रुक्षाक्षरा गिरः शृण्वन् तथा भागवतेरिताः॥
प्रणामपूर्वकं क्षान्त्वा यः सेवेद्भक्त एव सः।

पाद्मे—

वैष्णवं जनमालोक्य नाभ्युत्थानं करोति यः।
प्रणयादरतो विप्र! स नरो नरकातिथिः॥

स्कान्दे—

दृष्ट्वा भागवतं दूरात्सन्मुखे यो न याति हि।
न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजा द्वादशवार्षिकीम्॥

महत्सेवाया विमुक्तिद्वारत्वमुक्तं श्रीभागवते—
'महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः' इति॥

सत्सङ्गस्य मोक्षप्रदत्वमुक्तं श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे—
संयोगः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वाराय कल्पते॥ इति।
प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्॥ इति च॥

दशमस्कन्धे—

भवापवर्गो भ्रमतो तदा भवे-
ज्जनस्य यर्ह्यच्युतसत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ

परावरेशे त्वयि जायते मतिः ।। इति ।

एकादशस्कन्धे श्रीमद्भगवद्वचनम्—

अथैतत्परमं गुह्यं शृणु मे यदुनन्दन ! ।
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्युः सुहृत्सखा ।।
न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव वा ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ।।
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमाः यमाः ।।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो नृणाम् ।। इति ।।

नारदीये श्रीनारदं प्रति श्रीसनत्कुमारवाक्यम्—

असारभूते संसारे शृणु मे तदजात्मज ! ।
भगवद्भक्तसङ्गो हि हरिभक्त समिच्छताम् ।। इति ।

अथ सत्सङ्गात् हीनयोनिजानामपि भगवत्पदप्राप्त्युक्ता श्रीमद्भागवते

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना खगा मृगाः ।
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्टका यादवादयः ।। इति ।।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुष्कसाः
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः
शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।। इति च ।।

भगवदनन्यभक्तानामेव भगवत्प्राप्तिर्भवति तदुक्तं श्रीमुखेन—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ ! नित्ययुक्तस्य योगिनः ।। इति ।।

अतएव विष्णुपुराणे प्रह्लादेनोक्तम्—

धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि ।।

वामनपुराणेऽपि तेनैवोक्तम्—

न तां गतिमाप्नुवन्ति श्रुतिशास्त्रविचारकाः ।
विप्रा दानवशार्दूल ! विष्णुभक्ता व्रजन्ति याम् ।। इति ।

अतिदुराचारिणामपि अनन्ययोगेन स्वभजनपरत्वमात्रतः साधुत्वं धार्मिकत्वं शान्त्यर्हत्वमुक्तं **श्रीमुखेनैव—**

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।।
कौन्तेय ! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।। इति ।।

अत एव विष्णुभक्तानां यमशासनानर्हत्वेनेतरजनवैलक्षण्यं परमपद-प्राप्त्यर्हत्वं चोक्तं भवति । **तथोक्तं वैष्णवे यमेनैव—**

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्ना-
न्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ।।

अहममरगणार्चितेन धात्रा
यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः
प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः ।।

विमलमतिविमत्सरः प्रशान्तः
शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः ।
प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो
वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ।।

कमलनयन वासुदेव विष्णो !
धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ! ।

भव शरणमुदीरयन्ति ये वै
त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ।।
यमनियमविधूतकल्मषाणा-
मनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् ।।
अपगतमदमत्सराणां
त्यज भट दूरतरेण मानवानाम् ।।
सकलमिदमहं च वासुदेवः
परमपुमान्परमेश्वरः स एकः ।
इति मतिरमला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ।।
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा
पुरुषपरस्य न तस्य दृष्टिः ।
तव गतिरथवा ममास्ति चक्र-
प्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोकः ।।

नारसिंहे—

अहममरगणार्चितेन धात्रा
यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुविमुखान्प्रशास्मि मर्त्या-
न्हरिचरणप्रणतान्नमस्करोमि ।।
सुगतिमभिलषामि वासुदेवा--
दहमपि भागवतस्थितान्तरात्मा ।
मधुवरवशगोस्मि न स्वतन्त्रः
प्रभवति संयमने ममापि कृष्णः ।।

श्रीभागवते—

ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां

स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः।
ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः।
तान्नोपसिदत हरेर्गदयाऽभिगुप्ता-
न्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे॥

पाद्मे—

प्राहात्मान्यमुनाभ्राता सादरं हि पुनः पुनः।
भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्या न ते स्युर्मम गोचराः॥
दुराचारो दुष्कुलोपि सदा पापरतोपि वा।
भवद्भिः सर्वथा त्याज्यो विष्णुं चेद्भजते नरः॥
वैष्णवो यद्गृहे भुंक्ते येषां वैष्णवसङ्गतिः।
तेऽपि वः परिहार्याः स्युस्तत्सङ्गहतकिल्बिशाः॥

असत्सङ्गो वार्य एव, तदुक्तं श्रीमद्भागवते—

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम्॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु योषित्क्रीडामृगेषु च।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु खण्डितात्मस्वसाधुषु॥

विष्णुरहस्ये—

आलिङ्गनं वरं मन्ये व्यालव्याघ्रजलौकसाम्।
न सङ्गः शल्ययुक्तानां नानादेवोपसेविनाम्॥

कात्यायनवाक्ये—

वरं हुतवहज्वालापञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरिचिन्ताविमुखजनसंवासवैशसम्॥

महतां दुर्गतरणोपायः राजधर्मे प्रपञ्चितः, युधिष्ठिर उवाच—

विलश्यमानेषु भूतेषु तैस्तैर्भावैस्ततस्ततः
दुर्गाण्यतितरेद्येन तन्मे ब्रूहि पितामह ! ॥

भीष्म उवाच—

आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं ये द्विजातयः ।
वर्त्तन्ते संयतात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥
ये दम्भान्न चरन्तिस्म येषां वृत्तिश्च संयता ।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥
प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः ।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥
वासयन्त्यतिथीन्नित्यं नित्यं ये वाऽनसूयकाः ।
नित्यं स्वाध्यायशीलाश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥
मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तन्ते धर्मकोविदाः ।
वर्ज्जयन्ति दिवा स्वप्नं दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥
ये वा पापं न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ॥
निक्षिप्तदण्डा भूतेषु दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
ये न लोकान्नयन्त्यर्थान् राजानो रजसान्विताः ॥
विषयान्परिरक्षन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
आहवेषु चये शूरास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥
धर्मेण जयमिच्छन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
ये वदन्तीह सत्यानि प्राणत्यागेप्युपस्थिते ॥
प्रमाणभूता भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
कर्माण्यकुहकार्थानि येषां वाचश्च सूनृताः ॥
येषामर्थाश्च सम्बद्धा दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
अनध्यायेषु ये विप्राः स्वाध्यायं नेह कुर्वते ॥
तपोनिष्ठासु तपसो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।

ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारब्रह्मचारिणः ।।
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
ये च संशान्तरजसः संशान्ततमसश्च ये ।।
सर्वे स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
येषां न कश्चित्त्रसति न त्रसन्ति हि कस्यचित् ।।
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
परश्रिया न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः ।
ग्राम्यादर्थान्निवृत्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
सर्वान्देवान्नमस्यन्ति सर्वधर्मांश्च शृण्वते ।
ये श्रद्दधानाः शान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान् ।
मान्यमानान्नमस्यन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान्संशमयन्ति च ।
न च कुप्यन्ति भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह मानवाः ।
जन्मप्रभृति मद्यं च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
यात्रार्थं भोजनं येषां धर्मार्थं संग्रहस्तथा ।।
वाक्सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम् ।।
भक्ता नारायणं देवं दुर्गाण्यति तरन्ति ते ।
य एष पद्मपत्राक्षः पीतवासा महाभुजः ।।
सुहृद् भ्राता च मित्रं च सम्बन्धी च तथाच्युतः ।
य इमान्सकलांल्लोकान् चर्मवत्परिवेस्टयेत् ।
इच्छन्प्रभुरचिन्त्यात्मा गोविन्दः पुरुषोत्तमः ।।
स्थितः प्रियहिते जिष्णोः स एष पुरुषोत्तमः ।

राजंस्तव च दुर्द्धर्षो वैकुण्ठः पुरुषर्षभः ।।
ये एनं संश्रयन्तीह भक्त्या नारायणं हरिम् ।
ते तरन्तीह दुर्गाणि न चात्रास्ति विचारणा ।।
दुर्गातितरणं ये च पठन्ति श्रावयन्ति च ।
वर्त्तयन्ति हरिं ये वै दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।
इति कृत्यसमुद्देशः कीर्तितस्ते मयानघ ! ।
तरन्ते येन दुर्गाणि परत्रेह च मानवाः ।।

असद्भिर्मूर्खैराक्रुष्यमाणेन साधुना विदुषा यत्कर्त्तव्यं तदपि तत्रैव प्रपञ्चितम् । **युधिष्ठिर उवाच—**

विद्वान्मूर्खप्रगल्भेन मृदुतीक्ष्णेन भारत ! ।
आक्रुष्यमाणः सदसि कथं कुर्यादरिन्दम ! ।।

भीष्म उवाच—

श्रूयतां पृथिवीपाल ! यथैषोऽर्थोऽनुगीयते ।
सदा सुचेताः सहते नरस्येहाल्पमेधसः ।।
अक्रुष्यन् क्रुष्यमाणस्य सुकृतं नाम विन्दति ।
दुष्कृतं चात्मनो मर्षी (१) रुष्यत्येवापमार्ष्टि वै ।।
टिट्टिवत्तमुपेक्षेत वाशमानमिवातुरम् ।
लोके विद्विषमापन्नो निष्फलं प्रतिपद्यते ।।
इति संश्लाघते नित्यं तेन पापेन कर्मणा ।
इदमुक्तो मया कश्चित्संमतो जनसंसदि ।।
स तत्र व्रीडितः श्रुत्वा मृतकल्पोऽवतिष्ठते ।
श्लाघन्नश्लघनीयेन कर्मणा निरपत्रपः ।।
उपेक्षितव्यो यत्नेन तादृशः पुरुषाधमः ।
यद्यद्ब्रूयादल्पमतिस्तत्तदस्य दहेद्बुधः ।।

(१) मर्षी--तितिक्षुः । रुष्यति-क्रोधवति ।

प्राकृतो हि प्रसंशन् वा निन्दन्वा किं करिष्यति।
वने काक इवाबुद्धिर्वाशमानो निरर्थकम्॥
यदि वाग्भिः प्रयोगः(१) स्यात्प्रयोगे पापकर्मणः।
वागेवार्थो भवेत्तस्य न ह्येवार्थो जिघांसतः॥
निषेके(२)विपरीतं स आचष्टे व्रतचेष्टया।
मयूर इव कौपीनं नृत्यं सन्दर्शयन्निव॥
यस्यावाच्य न लोकेऽस्ति नाकार्यं चापि किञ्चन।
वाचं तेन न सन्दध्याच्छुचिः संश्लिष्टकर्मणा॥
प्रत्यक्षं गुणवादी यः परोक्षे चापि निन्दकः।
स मानवः श्ववल्लोके नष्टलोकपरावरः॥
तादृग्जनशतस्यापि यद्ददाति जुहोति च।
परोक्षेणापवादी यस्तन्नाशयति तत्क्षणात्॥
तस्मात्प्राज्ञो नरः सद्यस्तादृशं पापचेतसम्॥
वर्ज्जयेत्साधुभिर्वर्ज्यं सारमेयामिषं यथा॥
परिवादं ब्रुवाणो हि दुरात्मा वै महाजने।
प्रकाशयत्ति दोषांस्तु सर्पः फणमिवोच्छ्रितम्॥
तं स्वकर्माणि कुर्वाणं प्रतिकर्तुं य इच्छति।
भस्मकूट इवाबुद्धिः खरो रजसमृच्छति॥

मनुष्यशालावृकमप्रशान्तं
जनापवादे सततं निविष्टम्।
मातङ्गमुन्मत्तमिवोन्नदन्तं
त्यजेत तं श्वानमिवातिरौद्रम्॥

---

(१) तव पुत्रो म्रियतामिति वाक्येन यदि मृत्युसिद्धिरूपः प्रयोगः स्यात्तर्हि रूपं जिघांसतोऽर्थः न किं तु वागेवार्थो भवेत्।
(२) मातरि पितुरन्येन कर्त्तव्यमाचष्टे कथयति।

अधीरजुष्टे पथि वर्त्तमानं
दमादपेतं विनयाच्च पापम् ।
अरिव्रतं नित्यमभूतिकामं
धिगस्तु तं पापमतिं मनुष्यम् ।।
प्रत्युच्यमानस्त्वभिभूय एभि-
र्निशाम्य माभूस्त्वमथार्त्तरूपः ।
उच्चस्य नीचे न हि सम्प्रयोगं
विगर्हयन्ति स्थिरबुद्धयो ये ।।
क्रुद्धो दशार्द्धेन हि ताडयेद्वा
स पांशुभिर्वा विकरेत्तुषैर्वा ।
विवृत्य दन्तांश्च विभीषयेद्वा
सिद्धं हि मूढे कुपिते नृशंसे ।।
विगर्हणां परमदुरात्मना कृतां
सहेत यः संसृतिदुर्ज्जनां नरः ।
पठेदिदं चापि निदर्शनं सदा
न वाङ्मयं स लभति किञ्चिदप्रियम् ।। इति ।

ते एव यमदण्डचा इत्युक्तं वैष्णवे--

हरति परधनं निहन्ति जन्तून्
वदति तथाऽनृतनिष्ठुराणि यश्च ।
अशुभजनितदुर्मदस्य पुंसः
कलुषमतेर्हृदि तस्य नास्त्यनन्तः ।।
संहरति परसम्पदं विनिन्दां
कलुषमतिः कुरुते सतामसाधुः ।
न यजति न ददाति यश्च सन्तं
मनसि न तस्य जनार्द्दनोऽधमस्य ।।

परमसुहृदि बान्धवे कलत्रे
सुततनयपितृमातृभृत्यवर्गे ।
शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णां
तमधमचेष्टितमवेहि नास्य भक्तम् ।।
अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्तः
सततमनार्यविशालसङ्गमत्तः ।
अनुदिनकृतपापबन्धयत्नः
पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ।।

श्रीमद्भागवते—

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-
र्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ।।
जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ।।

इतिश्री शुकसुधीसङ्गृहीते स्वधर्मामृतसिन्धौ
एकादशस्तरङ्गः ।। ११ ।।

-o-☼-o-

अथ सदाचारविशेष उच्यते । स च इतिहासपुराणादिषु प्राचां ग्रन्थेषु च विस्तरतः प्रोक्तः सक्षेपतः: प्रसङ्गादत्रापि ज्ञेयः । स च सर्वैर्यथोपयोगं ग्राह्य एव । तदाह श्रुतिः--

धर्मान्न प्रमदितव्यमाचारान्न प्रमदितव्यम् । इति ।।

सदाचारलक्षणमाह देवलः--

यस्मिन्कुले य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।

श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते ।। इति ।

महाभारते उद्योगपर्वणि गरुडशाण्डीलीसमागमे

सदाचारगुणा उक्ताः—

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ।

आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ।। इति ।

आचारहीनस्य साङ्गवेदाध्ययनमपि निष्फलं भवतीत्युक्तं भविष्योत्तरे—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः

यदप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।

छन्दास्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति

नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ।।

गृहस्थस्य तु ऐहिकामुष्मिकसुखकामस्य सदाचार आवश्यकः, तदुक्तं मार्कण्डेयेन—

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।

न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र च ।। इति ।।

महाभारते दानधर्मेषु—

आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।

आचारात्कीर्त्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ।।

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् ।

त्रस्यन्ति चास्माद्भूतानि तथा परिभवन्त्युत ।।

तस्मात् कुर्यादिहाचारं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ।

अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम् (१) ।।

आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः ।

साधूनां च तथावत्त्वमेतदाचारलक्षणम् ।।

(१) अलक्षणं--कुष्ठापस्मारादिविरुद्ध लक्षणम् ।

अप्यदृष्टं श्रयेदेव पुरुषं धर्मचारिणम् ।
भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुरुते प्रियम् ।।

गुरुशास्त्रातिलङ्घिनः—

अधर्मजागताचारास्ते भवन्ति गतायुषः ।
विशीला भिन्नमर्य्यादा नित्यं सङ्कीर्णमैथुनाः ।।
स्वल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः ।
सर्वलक्षणहीनोपि समुदाचारवान्नरः ।।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।
अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः ।।
अनसूयुरजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति ।
लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।।
नित्योच्छिष्टः कामुकश्च नेहायुर्विन्दते महत् ।
स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ।।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।।
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तमस्तं यान्तं कदाचन ।
(१)नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ।।
ऋषयो नित्यसेवित्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः ।।
उपासते न पूर्वां ये द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ।
सर्वांस्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ।।
परदारा न गन्तव्या सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ।
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ।।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।

(१) राहुग्रस्तम् ।

यावन्तो रोमकूपाः स्यु स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः ।।
तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ।
प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम् ।।
पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ।
पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत्कदाचन ।।
उदक्यया च सम्भाषां न कुर्वीत कदाचन ।
अन्नं बुभुक्षमाणस्तु त्रिर्मुखेन स्पृशेदपः ।।
भुक्त्वा चान्नं तथैव त्रिर्द्भिः पुनः परिमार्जयेत् ।
प्राङ् मुखो नित्यमश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।।
प्रस्कन्दयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत् ।
आयुष्यं प्राङ् मुखो भुङ् क्ते ऋतं भुङ् क्त उदङ् मुखः ।।
अग्निमालभ्य तोयेन सर्वान्प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ।।
नाधितिष्ठेत्तुषान् जातु केशभस्मकपालिकाः ।
अनस्य चाप्युपस्नातं(१) दूरतः परिवर्जयेत् ।।
शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च कारयेत् ।
निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कथञ्चन ।।
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानः शतं वर्षाणि जीवति ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन ।।
अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते(२) ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ।।
सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः ।

(१) स्नानजलं । (२) न हिंस्यते ।

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।
अभिवादयते वृद्धांश्चासनं चैव दापयेत् ।।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ।
न चासीतासने भिन्ने भिन्नं कांस्यं च वर्ज्जयेत् ।।
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोपि संविशेत् ।।
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः ।
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ।।
नो पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयेज्जातु वै शिरः ।
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं तथाऽस्यायुर्न रिष्यते ।।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत् ।
तिलभृष्टं न चाश्नीयात्तथायुर्विन्दते महत् ।।
नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयेत कदाचन ।
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत् ।।
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्त्तयन्ति पुराविदः ।
आयुरस्य निकृन्तामि प्रजामस्याददे तथा ।।
य उच्छिष्टः प्रवदति स्वाध्यायं चाधिगच्छति ।
यश्चानध्यायकालेपि मोहादभ्यस्यते द्विजः ।।
तस्माद्युक्तोऽप्यनध्याये नाधीयेत कदाचन ।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिगां च प्रतिद्विजम् ।।
ये मेहन्ति च मार्गेषु ते भवन्ति गतायुषः ।
उभे मूत्रपुरीषे च दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथास्यायुर्न रिष्यते ।
त्रीन् कृपान्नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।।

यावन्तो रोमकूपाः स्यु स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः ।।
तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ।
प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम् ।।
पूर्वाह्न एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ।
पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत्कदाचन ।।
उदक्यया च सम्भाषां न कुर्वीत कदाचन ।
अन्नं बुभुक्षमाणस्तु त्रिर्मुखेन स्पृशेदपः ।।
भुक्त्वा चान्नं तथैव त्रिर्द्विः पुनः परिमार्जयेत् ।
प्राङ् मुखो नित्यमश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।।
प्रस्कन्दयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत् ।
आयुष्यं प्राङ् मुखो भुङ् क्ते ऋतं भुङ् क्त उदङ् मुखः ।।
अग्निमालभ्य तोयेन सर्वान्प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभि पाणितलेन तु ।।
नाधितिष्ठेत्तुषान् जातु केशभस्मकपालिकाः ।
अनस्य चाप्युपस्नातं(१) दूरतः परिवर्जयेत् ।।
शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च कारयेत् ।
निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कथञ्चन ।।
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानः शतं वर्षाणि जीवति ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन ।।
अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते(२) ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ।।
सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः ।

---

(१) स्नानजलं । (२) न हिंस्यते ।

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।
अभिवादयते वृद्धांश्चासनं चैव दापयेत् ।।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ।
न चासीतासने भिन्ने भिन्नं कांस्यं च वर्ज्जयेत् ।।
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोपि संविशेत् ।।
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः ।
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ।।
नो पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयेज्जातु वै शिरः ।
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं तथाऽस्यायुर्न रिष्यते ।।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत् ।
तिलभृष्टं न चाश्नीयात्तथायुर्विन्दते महत् ।।
नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयेत कदाचन ।
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत् ।।
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्त्तयन्ति पुराविदः ।
आयुरस्य निकृन्तामि प्रजामस्याददे तथा ।।
य उच्छिष्टः प्रवदति स्वाध्यायं चाधिगच्छति ।
यश्चानध्यायकालेपि मोहादभ्यस्यते द्विजः ।।
तस्माद्युक्तोऽप्यनध्याये नाधीयेत कदाचन ।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिगां च प्रतिद्विजम् ।।
ये मेहन्ति च मार्गेषु ते भवन्ति गतायुषः ।
उभे मूत्रपुरीषे च दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथास्यायुर्न रिष्यते ।
त्रीन् कृपान्नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।।

ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः ।
हन्यादाशीविषः क्रुद्धो यावत्पश्यति चक्षुषा ।
क्षत्रियो हि दहेत्क्रुद्धो यावत् स्पृशति तेजसा ।
ब्राह्मणस्तु कुलं हन्याद्ध्यानेनावीक्षितेन च ।।
तस्मादेतत्त्रयं यत्नादुपसेवेत पण्डितः ।
गुरुणा वैरनिर्बन्धो न कर्त्तव्यः कदाचन ।।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ! ।
सम्यक् मिथ्याप्रवृत्तेपि वर्त्तितव्यं गुराविह ।।
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ।
दूरादवसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।।
उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा ।
नातिकल्यं नातिसायं न च मध्यन्दिने स्थिते ।।
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह ।
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ।।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ।
प्रदक्षिणां च कुर्वीत परिज्ञातान्वनस्पतीन् ।।
मध्यन्दिने निशाकाले मध्यरात्रे च नित्यदा ।
चतुष्पथं न सेवेत उभे सन्ध्ये तथैव च ।।
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।
ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात्पादं पादेन नाक्रमेत् ।।
अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां च सर्वशः ।
अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ।।
वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च ।
आक्रोशं परिवादं च पैशून्यं च विवर्जयेत् ।।
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी

न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥

संरोहतीषुणा विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥
कर्णनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शरस्तु न निर्हर्त्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोतिगान् ।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्त्वहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥
नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषस्तम्भाभिमानांश्च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत् ॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धोप्येनं न पातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्टयर्थं ताडनं स्मृतम् ॥
न ब्राह्मणान्परिवदेन्न नक्षत्राणि निर्दिशेत् ।
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥
कृत्वा मूत्रपुरीषे च रथ्यामाक्रम्य वा पुनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा ॥
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अस्पृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥
यवागुं कृशरं मांसं षष्कुलीं पायसं तथा ।
आत्मार्थे न तु कर्त्तव्यं देवतानां तु कल्पयेत् ॥

नित्यमग्निं परिचरेद्भिक्षां दद्याच्च नित्यदा ।
वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत् ।।
न चाभ्युदितशायी स्यात्प्रायश्चित्ती तथा भवेत् ।
मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ।
आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत् ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ।।
भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि च वर्जयेत् ।
उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात्समाहितः ।।
अकृत्वा देवतापूजामाचरेद्दन्तधावनम् ।
अनभ्यर्च्य च देवांस्तु ना(१)न्यं गच्छेत्कदाचन ।।
वर्जयित्वा गुरुं (२)वृद्धं धार्मिकं वा विचक्षणम् ।
अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ।।
न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद्गर्भिणीं वा कदाचन ।
उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा नरः ।।
प्राक्शिरास्तु स्वपेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिराः ।
न भग्ने न विदीर्णे वा शयने प्रस्वपेत च ।।
(३)अन्तर्धाने न संयुक्ते (४)न च तिर्यक् कदाचन ।
आसनं न पदा कृष्यन् प्रसृजेद्वा तथा नरः ।।
न नग्नः कर्हिचित्स्नायान्न निशायां कदाचन ।
स्नात्वा न चैवमार्जेत गात्राणि सुविचक्षणः ।।
आर्द्र एव तु वासांसि स्नात्वा सेवेत मानवः ।

---

(१) अन्यं–राजादिम् ।
(२) गुर्वादीन् प्रति यदा गन्तव्यं तदा नायं नियमः ।
(३) अत्यन्तैकान्ते ।
(४) स्त्र्यादिना ।

स्रजश्च न विकर्षेत न बहिर्धारयेत च ॥
रक्तमाल्यं न धार्यं स्यात् शुक्लं धार्यं तु पण्डितैः।
वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं विभो!॥
रक्तं शिरसि धार्यं तु तथा वानेयमित्यपि।
काञ्चनी चैव या माला न च दुष्यति कर्हिचित्॥
स्नातस्य वर्णकं नित्यमार्द्रं दद्याद्विशाम्पते!।
विपर्ययं न कुर्वीत वाससोर्बुद्धिमान्नरः॥
तथा नान्यधृतं धार्यं न चोपदेशमेव हि।
अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नराधिप!॥
अन्यद्रथ्यासु देवानामर्च्चायामन्यदेव हि।
प्रियङ्गुचन्दनाभ्यां च बिल्वेन तगरेण च॥
पृथगेवानुलिम्पेत केशरेण च बुद्धिमान्।
उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलङ्कृतः॥
एवं कालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत्।
नालीढं नापरिहृतं भक्षयेत विचक्षणः॥
तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्षतान्त्रासदायि च।
न सन्निकृष्टे मेधावी (१) अशुचेर्न च सत्सु वै॥
प्रतिसिद्धान्नधर्मेण भक्ष्यान् भुञ्जीत पृष्ठतः।
पिप्पलं च वटं चैव सणशाकं तथैव च॥
उदम्बरं न खादेत भवार्थी पुरुषः सदा।
आजगव्यं च यन्मांसं मायूरं चैव वर्जयेत्॥
वालेन (२) तु न भुञ्जीत पर (३) श्राद्धे तथैव च।

---

(१) अशुचेः सन्निकृष्टे समीपे न भुंजीत।

(२) केशोपलक्षितं न भंजीत।

(३) परः-शत्रुः।

सायं प्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः ।।
वाग्यतो निर्विवासाश्च नासंविष्टः कदाचन ।
भूमौ सदैव नाश्नीयान्नाशीलो न शब्दवत् ।।
तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशाम्पते ! ।
पश्चाद्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः ।।
समानमेकपंक्त्यां तु भोज्यमन्नं नरेश्वर ! ।
विषं हालाहलं भुक्तं योऽप्रदाय सुहृज्जने ।।
पानीयं पायसं सर्पिर्दधिसक्तून् मधून्यपि ।
(१) निरस्य शेषमेतेषां न प्रदेयं तु कर्हिचित् ।।
भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शङ्कां समाचरेत् ।
(२) दधि चाप्यनुपानं वै सुकर्त्तव्यं भवार्थिना ।।
आचम्य चैव हस्तेन परिश्रव्यं तथोदकम् ।
अङ्गुष्ठचरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचयेत् ।।
पाणिं मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वा चाग्नि समाहितः ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नोति प्रयोगकुशलो नरः ।।
अद्भिः प्राणान्समालभ्य नाभिं पाणितलेन च ।
संस्पृश्यैव प्रतिष्ठेत म चाप्यार्द्रेण पाणिना ।।
अङ्गुष्ठस्यान्तरं लेखा ब्राह्मं तीर्थमुदाहृतम् ।
अङ्गुष्ठस्य च यन्मध्यं प्रदेशिन्याश्च भारत ! ।।
तेन पित्र्याणि कुर्वीत स्पृष्ट्वापो न्यायतः सदा ।
परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन ।।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना ।

---

(१) पानीयादीन् निरस्य विहाय एतेषां प्रसिद्धानां भक्ष्याणां शेषं अन्यस्मै न देयं पानीयादेरपि शेषं पुत्रादिभ्य एव देयम् ।

(२) दधि सलवणान्तकम् ।

पतितैस्तु कथां नेच्छेद्दर्शनं चापि वर्जयेत् ॥
संसर्गं च न गच्छेत तथायुर्विन्दते महत् ।
स्वे स्वे तीर्थे सदाचम्य कार्ये समुपकल्पिते ॥
त्रिः पीत्वा यो द्विः प्रमृज्य कृतशौचो भवेन्नरः ।
इन्द्रियाणि सकृत्स्पृष्ट्वा त्रिरभ्युक्ष्य च मानवः ॥
दैवं पित्र्यं च कुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ।
ब्राह्मणार्थे च यच्छौचं तच्च मे श्रृणु कौरव! ॥
प्रवृत्तं च हितं चोक्त्वा भोजनाद्यं तपस्तथा ।
सर्वशौचेन ब्राह्मेण तीर्थेन समुपस्पृशेत् ॥
निष्ठीव्य तु तथा क्षुत्वा स्पृष्ट्वा यो हि शुचिर्भवेत् ।
वृद्धो जातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदिति ॥
गृहे वासयितव्यास्ते धन्यमायुष्यमेव तत् ।
गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च गृहसारिकाः ॥
गृहेष्वेते न पापाय तथा वै तैलपायिकाः ।
उपदीपकाश्च गृद्ध्राश्च कपोता भ्रमरास्तथा ॥
निर्विशेयुर्यदा तत्र शान्तिमेव तदाऽऽचरेत् ।
अमङ्गल्यानि चैतानि तथाक्रोशो महात्मनाम् ॥
महात्मनां च गुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित् ।
अगम्याश्च न गच्छेत राजपत्नी सखीस्तथा ॥
वैद्यानां बालवृद्धानां भृत्यानां च युधिष्ठिर ! ।
वधूनां ब्राह्मणानां च तथा सारणिकस्य च ॥
सम्बन्धिनां च राजेन्द्र ! तथायुर्विन्दते महत् ।
ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ॥
तदावसेत्सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर ! ।
सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन् ! विद्यां च मनसाऽऽददन् ॥

न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत् ।
नक्तं न कुर्य्यात्पित्र्याणि रात्रेरन्यत्र दर्शनम् ।।
पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता ।
वर्जनीयाश्च वै नित्यं सक्तवो निशि भारत ! ।।
शेषाणि चान्नपानानि पानीयं चैव भोजनम् ।
सौहित्यं (१) च न कर्त्तव्यं रात्रौ च मनसाचरेत् ।।

महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तलक्षणां तथा ।
वयसा च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति ।।
अपत्यमुत्पाद्य तथा प्रतिष्ठाप्य कुलं तथा ।
पुत्रा प्रदेया ज्ञातेषु कुलधर्मे च भारत ! ।।
कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते ।
पुत्र्या निवेश्याश्च कुलान् वृत्त्या लभ्याश्च (२) भारत ! ।।
शिरःस्नानं प्रकुर्वीत दैवे पित्र्ये तथापि च ।
नक्षत्रेपि च कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः ।।
न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथा (३) ग्नेये च भारत ! ।
दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यहं च विवर्जयेत् ।।
ज्योतिषे यानि चोक्तानि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ।
प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयेत समाहितः ।।
उदङ्मुखो वा राजेन्द्र ! तथायुर्विन्दते महत् ।
परिवादं च न ब्रूयात्परेषामात्मनस्तथा ।।
परिवादो न धर्मोयं प्रोच्यते भरतर्षभ ! ।
वर्जयेद्व्यङ्गिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तमः ।।

(१) अत्यन्तभोजनम् ।

(२) लभ्याः-लम्भनीयाः ।

(३) कृत्तिकायाम् ।

समर्षां व्यङ्गितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा ।
वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम् ।।
तथा निकृष्टवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत् ।
अयोनिं च सुयोनिं च न गच्छेत्सुविचक्षणः ।।
पिङ्गलां कुष्ठिनीं नारीं न तामावोढुमर्हति ।
अपस्मारकुले जातां विहीनां चैव वर्जयेत् ।।
श्वित्रिणां च कुले जातां त्रयाणां मनुजेश्वर ! ।
लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता लक्षणैस्तथा ।।
मनोज्ञा दर्शनीया च तां त्वमारोढुमर्हसि ।
महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे च युधिष्ठिर ! ।।
अवरात्पतिताच्चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ।
अग्निमुत्पाद्य यत्नेन क्रियाः सुविहिताश्च याः ।।
वेदेषु ब्राह्मणैश्चोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेत् ।
न चेर्षा स्त्रीषु कर्त्तव्या दारा रक्ष्याश्च सर्वशः ।।
अनायुष्या भवेदीर्षा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।
अनायुष्यो दिवा स्वप्नस्तथाभ्युदितशायिता ।।
प्रगे निशायां च तथा न चोच्छिष्टा स्वपन्ति वै ।
परदार्यमनायुष्यं नापितोच्छिष्टता तथा ।।
यत्नं तेनैव कर्त्तव्यमभ्याशश्चैव भारत ! ।
सन्ध्यायां न च भुञ्जीत न स्नायान्न पठेत्तथा ।।
प्रयतश्च भवेत्तस्यां न च किञ्चित्समाचरेत् ।
ब्राह्मणान्पूजयेच्चापि तथा स्नात्वा नराधिप ! ।।
देवांश्च प्रणमेत् स्नात्वा गुरूंश्चाप्यभिवादयेत् ।
अमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेच्च दर्शकः ।।
अनिमन्त्रिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ! ।

न चैकेन परिव्राज्यं न चैकेन तथा निशि ।।
अनागतायां सन्ध्यायां पश्चिमायां गृहे वसेत् ।
मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् ।।
हितं वाप्यहितं वापि न विचार्यं नरर्षभ ! ।
धनुर्वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप ! ।।
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्य्यासु चैव ह ।
यत्नवान्भव राजेन्द्र ! यत्नवान्सुखमेधते ।।
अप्रधृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च ।
प्रजापालनयुक्तश्च न क्षतिं लभते क्वचित् ।।
युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत ! ।
गन्धर्वशास्त्रस्य कला विज्ञेया च नराधिप ! ।।
पुराणमितिहासाश्च तथाख्यानानि यानि च ।
महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव च ।।
पत्नीं रजस्वलां चैव नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत् ।
स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ।।
पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान् भवेत् ।
एतेन विधिना पत्नीमुपगच्छेत पण्डितः ।।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि नित्यशः ।
यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ।।
अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नरोत्तम ! ।
एष ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः ।।
शेषस्त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्याहार्यो युधिष्ठिर ! ।
आचारो भूतिजनन आचारः कीर्त्तिवर्धनः ।।
आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ।
आगमानां च सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ।।

आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।।
अनुकम्पिता सर्ववर्णान् ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।। इति ।

बृहन्नारदीये—

असावहमिति ब्रूयाद्द्विजो वै ह्यभिवादने ।
श्राद्धं व्रतं जपं दानं देवताभ्यर्चनं तथा ।।
यज्ञं च तर्पणं चैव कुर्यात्तं नाभिवादयेत् ।
तथा स्नानं प्रकुर्वन्तं धावन्तमशुचिं तथा ।।
भुञ्जानं च शयानं च अभ्यक्तशिरसं तथा ।
भिक्षान्नधारिणं चैव वमन्तं जलमध्यगम् ।।
कृताभिवादनो यस्तु न कुर्यात्प्रतिवादनम् ।।

वैष्णवे—

देवगोब्राह्मणान् सिद्धान् वृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत् ।
किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पमप्यप्रियं वदेत् ।।
प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् ।
नान्यश्रियं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषेश्वर ! ।।

महाभारते आदिपर्वणि—

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददोत ।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदसतीं पापलोक्याम् ।।
आत्मनिन्दा च पूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां व्रतमेतच्चतुर्विधम् ।।

उद्योगे—

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।

आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति ।।
अप्रशस्तानि कर्माणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स एषां तु परिभ्रंशाद्भ्रश्यते जीवितादपि ।।
कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं परम् ।।

हरिवंशे—

पश्चात्तापकरं यत्स्यादारब्धं कार्यमीदृशम् ।
आरभेन्नैव तद्विद्वानेष बुद्धिमतां नयः ।।

वैष्णवे—

न दुष्टयानमारोहेत् कुलच्छायां न संश्रयेत् ।
विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरातिकीटकैः ।।
बन्धकीबन्धकीभर्तृक्षुद्रानृतकथैः सह ।
तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैः शठैः ।।
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् ।।

उद्योगे—

अवलिप्तेषु धूर्त्तेषु रौद्रसाहसिकेषु च ।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद्बुधः ।।

मार्कण्डेयपुराणे—

असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वर्जयेत् ।।
न चापि रक्तवासाः स्यात् चित्रवासधरोपि वा ।
क्षुरकर्मणि वान्ते च स्त्रीसम्भोगे च पुत्रक ! ।।
स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च ।
युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः ।।
नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत् ।

शौचकालेषु सर्वेषु गुरुस्वल्पेषु वा पुनः ॥
अविलम्बेत शौचार्थं न मुखेनाऽनलं धमेत् ।
अश्वाजौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् ॥
मातुः प्रस्रवणे मेध्यं शकुनेः फलपातने ।
उदक्याशौचनग्नांश्च सूतकान्त्यावसायिनः ॥
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥

भविष्योत्तरे—

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टोत्सर्जनं दूरात्सदा कार्यं हितैषिणा ।
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः ।
केशग्रहान् प्रहारं च शिरस्येतानि वर्जयेत् ॥
न पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयाज्जातु वै शिरः ॥

कौर्मे—

न पापं पापिनं ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमः ।
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं वाऽनिमित्ततः ॥
नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम् ।
नग्नां स्त्रियं पुमांसं वा पुरीषं मूत्रमेव वा ॥
पतितव्यङ्गचाण्डालान् उच्छिष्टान्नावलोकयेत् ।

किञ्च—

न पाणिपादवाङ्नेत्रचापलानि समाश्रयेत् ।
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना न कदाचन ॥
न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च ।
न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्न कर्षेच्च पदासनम् ।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यं गां च संवेशयेन्न हि ।
नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत स्त्रीभिर्वादं न चाचरेत् ॥

न दन्तैर्नखलोमानि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ।
नाऽकारणाद्वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ।।
न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन ।
नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धारयेद्बुधः ।।

किञ्च—

न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टः क्वचिद्गोब्राह्मणानलान् ।
न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत् ।।
नोत्तरेदनुपस्पृश्य स्रवन्तीं नो व्यतिक्रमेत् ।
चैत्यं वृक्षं नैव छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत् ।

अत्रिस्मृतौ—

न्यूनाधिकस्तनी या गौर्याथ वाऽभक्षचारिणी ।
तस्या दुग्धं होतव्यं न पातव्यं कदाचन ।।

इति श्रीमद्भगवन्निम्बार्कचरणचिन्तकशुकसुधीसंगृहीते
स्वधर्मामृतसिन्धौ द्वादशस्तरङ्गः ।। १२ ।।

अथ व्रतविधिर्वैष्णवैर्ज्ञातव्यस्तदज्ञानेऽवैष्णवत्वं स्यात्, तच्चोक्तं
श्रीमन्नारदपञ्चरात्रे—

अविज्ञातव्रतविधिर्वैष्णवः स्यादवैष्णवः ।
तस्माद्विज्ञानसाराः स्युर्वैष्णवा व्रतसेविनः ।। इति ।

तत्रैकादशीव्रतस्यैकस्मिन्मासे द्विरनुष्ठानत्वादादौ तन्निर्णीयते ।।
वैष्णवानां तद्व्रतस्यावश्यंकरणीयत्वमुच्यते स्कन्दपुराणे—

परामापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ।।
समात्मा सर्वजीवेषु निजाचारादविच्युतः ।
विष्णर्वापिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ।। इति ।

तथा भविष्यपुराणे—

एकादश्यां निराहारो यो भुंक्ते द्वादशीदिने ।
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे तद्व्रतं वैष्णवं मतम् ।। इति ।

वाराहे—

एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ।
द्वादश्यां योऽर्चयेद्विष्णुं स मुक्तिफलभाग्भवेत् ।। इति ।

नारदीये—

नित्यं भक्तिसमायुक्तै र्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
पक्षे पक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ।। इति ।

आग्नेये—

एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमेतद्धि वैष्णवम् ।
उपोष्यैकादशी राजन् ! यावदायुः सुवृत्तिभिः ।। इति ।

सनत्कुमारसंहितायाम्—

एकादशी सदोपोष्या पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।। इति ।

विष्णुरहस्ये—

द्वादशी च प्रयोक्तव्या यावदायुः सुवृत्तिभिः ।। इति ।

पुनस्तत्रैव—

परामापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
सूतके मृतके चैव न त्यजेद्द्वादशीव्रतम् ।। इति ।

कण्वोप्याह—

एकादश्यामुपवसेन्न कदाचिदतिक्रमेत् ।।

कूर्मपुराणेपि—

वदन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने ! ।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं प्राप्ते चैकादशीदिने ।। इति ।

पाद्मे च—

रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने ।

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं प्राप्ते चैकादशीदिने ।। इति ।

बृहन्नारदीये—

उपवासफलप्रेप्सुर्ज्जह्याद्भुक्तचतुष्टयम् ।

पूर्वापरदिने रात्रावहर्नक्तं च मध्यमे ।।

गारुडे—

उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि ।। इति ।

एवं नित्यसदादिशब्दैरेकादश्युपवासस्य नित्यत्वं सिद्धम् । किञ्चैकादशीव्रतस्य मोक्षसाधनत्वाच्च तत्कामैरप्येतदेव कर्त्तव्यम्, तच्चोक्तं विष्णुरहस्ये—

यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं सुतान्सम्पदमात्मनः ।

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।। इति ।

नारदीयेपि—

स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रदायिनी ।

सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ।। इति ।

कात्यायनः—

संसारसागरोत्तारमिच्छन् विष्णुपरायणः ।

ऐश्वर्यं सन्तर्ति स्वर्गं मुक्तिं वा यद्यदिच्छति ।

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।। इति ।

एकादशीव्रतस्य श्रीविष्णुप्रियतरत्वमत एव सर्वेषां हरिभक्तानां मुक्तिभुक्तिप्रदत्वं चोक्तं बृहन्नारदीये एकादशीमाहात्म्यारम्भे—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चैव योषिताम् ।

मोक्षदं कुर्वतां भक्त्या विष्णोः प्रियतरं द्विजाः ! ।।

एकादशीव्रतं नाम सर्वकामफलप्रदम् ।

कर्त्तव्यं सर्वथा विप्रैर्विष्णुप्रीणनकारणम् ।। इति ।।

किञ्च—

हरिवासरस्य सर्वव्रतेभ्यः श्रेष्ठत्वमुक्तं मार्गशीर्षमाहात्म्ये—

शिवव्रतसहस्रैस्तु यत्तु ब्राह्मैश्च कोटिभिः ।
तत्फलं कविभिः प्रोक्तं वासरैकेन वै हरेः ।। इति ।।

एवं एकादशीव्रतस्य नित्यत्वं सर्वार्थप्रदत्वं विष्णुप्रियतरत्वं त्रिष्णिवतरदेवव्रतेभ्यः श्रेष्ठत्वं च सिद्धम् । तदकरणे प्रत्यवायमाह श्रीसनत्कुमारः—

न करोति हि यो मूढ एकादश्यामुपोषणम् ।
स नरो नरकं याति रौरवं तमसा वृतम् ।।
एकादश्यां मुनिश्रेष्ठ ! यो भुंक्ते मूढचेतनः ।
प्रतिमासं स भुंक्ते तु किल्विषं श्वादिविट्समम् ।।
निष्कृतिर्नाधमस्योक्ता धर्मशास्त्रे मनीषिभिः ।
एकादश्यान्नकामस्य पितृभिः सह मज्जति ।।
मातृहा पितृहा चैव भ्रातृहा गुरुहा तथा ।
एकादश्यां तु यो भुंक्ते पक्षयोरुभयोरपि ।। इति ।

नारदीये—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्याशतानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे ।।
तानि पापान्युपाश्नाति भुञ्जानो हरिवासरे ।। इति ।

स्कान्दे उमां प्रति शिववाक्यम्—

अग्निवर्णायसं तीक्ष्णं क्षिपन्ति यमकिङ्कराः ।
मुखे तेषां महादेवि ! यो भुञ्जति हरेर्दिने ।। इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ वा यतिः ।
एकादश्यां हि भुञ्जानो भुंक्ते गोमांसमेव हि ।।

ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य स्तेनस्य गुरुतल्पिनः ।
निष्कृतिर्धर्मशास्त्रेऽस्ति नैकादश्यन्नभोजिनः ॥
एक एव नरः पापी नरके नृप ! गच्छति ।
एकादश्यन्नभोजी तु पितृभिः सह मज्जति ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्ते—
स केवलमघं भुंक्ते यो भुंक्ते हरिवासरे ।
दिनेऽत्र सर्वपापानि भवन्त्यन्नस्थितानि तु ॥
तानि मोहेन योऽश्नाति न स पापैर्विमुच्यते । इति ॥

पाद्मे—
भुंक्ष्व भुंक्ष्वेति यो ब्रूयात्सम्प्राप्ते हरिवासरे ।
यो ब्राह्मणं स्त्रियं वापि जहीति वदति क्वचित् ॥
मद्यं पिबेति यो ब्रूयात्तेषां स्याद्वै अधोगतिः ॥ इति ॥

तत्राधिकारिणमाह श्रीनारदः—
अष्टाब्दादधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिहायनः ।
भुंक्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापकृत् ॥ इति ।

कात्यायनोपि—
अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यनशीतिस्तु हायनैः ।
एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥ इति ।

पद्मोत्तरखण्डे पार्वतीं प्रति शिवः—
वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीणां च वरवर्णिनि ! ॥
एकादश्युपवासश्च कर्त्तव्यो नात्र संशयः ॥ इति ॥

यत्तु—
षड्भिर्मासोपवासैश्च यत्फलं परिकीर्त्तितम् ।
विष्णोर्नैवेद्यसिक्थेन तत्फलं भुञ्जतां कलौ ॥ -इत्यादि

विष्णुप्रसादान्नमाहात्म्यमुक्तं तत्त्वेकादशीं विना तथाह, श्रीनारदः

प्रति श्रीकृष्णः ।।

प्रसादान्नं सदा ग्राह्यमेकादश्यांन नारद !।
रमादिसर्वदेवानां मनुष्याणां तु का कथा ।। इति ।

श्रीकुमारा अपि—

एकादश्यां प्रसादान्नं यदि भुञ्जीत वैष्णवैः ।
स धर्ममोहितो ज्ञेयो न तु स धर्मपण्डितः ।।

पाद्मे नारदः—

वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रसादधीः ।
विष्णोरच्चर्चा वृथा तस्य नरकं घोरमाप्नुयात् ।। इति ।।

विष्णोः प्रसादं तुलसीं चरणोदकं च प्राशयेदेव तथोक्तं हारीते—

विष्णोः प्रसादतुलसीं तीर्थं वापि द्विजोत्तम !।
उपवासदिने वापि प्राशयेदविचारयन् ।।
उपवासदिने यस्तु तीर्थं वा तुलसीदलम् ।
न प्राशयेद्विमूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ।। इति ।।

किञ्चैकादशीदिवसे श्राद्धनिषेध उक्तो ब्रह्मवैवर्त्ते—

ये कुर्वन्ति महीपाल ! श्राद्धमेकादशीदिने ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ता परेतकः ।। इति ।।

श्राद्धमपि कर्त्तव्यं द्वादश्यामित्युक्तं पाद्मे—

एकादश्यां यदा राम ! श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ।।
द्वादश्यां तत्प्रदातव्यं नोपवासदिने क्वचित् ।
गर्हितान्नं च नाश्नन्ति पितरश्च दिवौकसः ।।

स्कान्दे—

एकादशी यदा नित्या श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्याद्द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ।। इति ।।

किञ्चाघ्राणपूर्वकं यच्छ्राद्धं वाराहे ईरितम्—

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ।। इति–

तत्त्ववैष्णवविषयम्, तथाह नारदः—

कव्यमाघ्राय कुर्वन्ति वैष्णवागमवर्जिताः ।

पापान्नैः पितृवञ्चका एकादश्यां न वैष्णवाः ।। इति ।

अथैकादशीमहिमा ।।

तत्र नारदीये वसिष्ठः—

एकादशीसमुत्थेन वह्निना पातकेन्धनम् ।

भस्मतां याति राजेन्द्र! अपि जन्मशतोद्भवम् ।।

नेदृशं पावनं किञ्चिन्नराणां भुवि विद्यते ।

यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ।।

तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप! ।

यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभशुभं दिनम् ।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।

एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।

एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भवति प्रभो! ।

एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ।।

एकादशीसमं किञ्चित्पापत्राणं न विद्यते ।

स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राजपुत्रप्रदायिनी ।।

सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ।

न गंगा न गया भूयो न काशी न च पुष्करम् ।।

न चापि कौरवं क्षेत्रं न रेवा न च देविका ।

यमुना चन्द्रभागा च तुल्याभूय हरेर्दिनात् ।।

अनायासेन राजेन्द्र ! प्रापयेद्वैष्णवं पदम् ।
चिन्तामणिसमा ह्येषा ह्यथवापि निधेः समा ।।
सा कल्पपादपप्रख्या वेदवादो यथा तथा ।। इति ।

पाद्मे वैशाखमाहात्म्ये देवदूतविकुण्ठलासंवादे—

उपोष्यैकादशीमेकां प्रसङ्गेनापि मानवः ।
न याति यातनावाप्तिमिति नो यमतः श्रुतम् ।।
एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं वैश्य ! मानवैः ।
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ।।
एकादशीसमं किञ्चित्पुण्यं लोके न विद्यते ।
व्याजेनापि कृता यैस्ते वशं यान्ति न भास्करेः ।। इति ।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

यथा दावाग्निरुदितः शुष्कमार्द्रं च गह्वरे ।
दहत्येव समस्तानि कलुषानि हरेर्दिनम् ।।
पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्य च भार्गव ! ।
नान्यद्विनाशाय मतं विनैकादश्युपोषणम् ।। इति ।

भविष्ये—

एकादशी महापुण्या सर्वपापविनाशिनी ।
भक्तेश्च दीपनी विष्णोः परमार्थगतिप्रदा ।।
यामुपोष्य नरो भक्त्या न संसारे भविष्यति ।
एकादश्यां निराहारो यो भुंक्ते द्वादशीदिने ।।
न स दुर्गतिमाप्नोति नरकानि न पश्यति ।
कृत्वा पापसहस्राणि एकादश्यामुपोषितः ।।
द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुं न स दुर्गतिमाप्नुयात् ।
एषा तिथिः परा पुण्या श्रीविष्णोः परमप्रिया ।।
तस्यामेव जगन्नाथो ह्यमूर्त्तौ मूर्त्तिमास्थितः ।

तेन सासर्वपापघ्नी सर्वदुःखविनाशिनी ।।
या सा विष्णुमयी शक्तिरनन्ता परमाद्भुता ।
सा तेन तिथिरूपेण द्रष्टव्यैकादशी सती ।। इति ।

स्कान्दे—

अभोज्यभोजनाज्जातमगम्यागमनाच्च यत् ।
अयाज्ययाजनाद्यच्च ह्यभक्ष्याणां च भक्षणात् ।।
अस्पृश्यस्पर्शनाद्यच्च परेषां निन्दनाच्च यत् ।
आत्मसंभावनाद्यच्च पारदार्यकृतं च यत् ।।
विहिताकरणाद्यच्च परवित्तापहारतः ।
ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च पातकं चोपपातकम् ।।
तत्सर्वं विलयं याति ह्येकादश्यामुपोषणात् ।। इति ।

आग्नेये—

एकादश्युपवासं यः सदैव कुरुते नरः ।
स याति परमं धाम यत्र देवो हरिः स्थितः ।। इति ।

गारुड़े—

एकादशीव्रतं भक्त्या यः करोति नरः सदा ।
स विष्णुलोकं व्रजति याति विष्णोः स्वरूपताम् ।। इति ।

श्रीसनत्कुमारः—

कृत्वा पापसहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि वै ।
एकामेकादशीं भक्त्या समुपोष्य शुचिर्भवेत् ।। इति ।

सा चैकादशी द्विधा-शुद्धा विद्धा चेति । तत्र दशम्या विद्धा श्रेयस्कामैस्त्याज्यैव, तथोक्तं सामान्यतः श्रीमन्नारदपञ्चरात्रे—

सर्वसिद्धान्तविज्ञानं वैष्णवानां विदुर्बुधाः ।
पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ।।
तस्मादुत्तरसंयोगिमतं वैष्णविकं व्रतम् ।। इति ।

नारदीये—

लववेधेऽपि विप्रेन्द्र! दशम्यैकादशीं त्यजेत् ।
सुराया विन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भःकलशं यथा ॥
दशम्यानुगता यत्र तिथिरेकादशी भवेत् ।
तत्रापत्यविनाशश्च परेत्य नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

भविष्ये च—

पूर्णाविद्धां पलार्द्धेन नन्दां पूर्णामपि त्यजेत् ॥ इति ।

स्कन्दपुराणे च—

कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो! ।
एकादश्यां न कर्त्तव्यं व्रतं राजन्! कदाचन ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेपि—

कलार्द्धेनापि विद्धा स्याद्दशम्यैकादशी यदि ।
तदाप्येकादशीं हित्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

दशमीदोषसंयुक्तं यः करोति विमूढधीः ।
एकादशीफलं तस्य न स्याद्द्वादशवार्षिकम् ॥

विष्णुरहस्ये—

दशमीदोषसंयुक्तामुपोष्यैकादशीं किल ।
संवत्सरकृतेनेह नरो धर्मेण मुच्यते ॥

पाद्मे प्राचीमाधववाक्यम्—

भुक्तं हालाहलं तेन श्वविष्ठाभक्षणं कृतम् ।
दशमीमिश्रितं येन कृतमेकादशीव्रतम् ॥
ज्ञात्वा ह वै न कर्त्तव्यं मद्दिनं दशमीयुतम् ।
जन्मकोटिकृतं पुण्यसन्तानं याति संक्षयम् ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्त्ते श्रीमद्व्यासः—

द्वादशी दशमीयुक्ता यत्र शास्त्रे प्रतिष्ठिता ।
नैतच्छास्त्रमहं मन्ये यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ।। इति ।

वसिष्ठः—

दशम्येकादशी यत्र तत्र नोपवसेद्बुधः ।
अपत्यानि विनश्यन्ति स्वर्गलोके न गच्छति ।।

गारुडे—

विद्धामेकादशीं विप्रास्त्यजन्ते तां मनीषिणः ।
तस्यामुपोषितो याति दारिद्र्यं दुःखमेव च ।।

ब्राह्मे व्रतखण्डे—

उपोष्यैकादशीं मोहाद्दशमीशेषसंयुताम् ।
न नरः सुखमाधत्ते इह लोके परत्र च ।। इति ।

मार्कण्डेयपुराणे—

पूर्णाविद्धामुपास्ते को नन्दावेधबलादपि ।
को वेदवचनात्तात ! गोसवे गां निहन्ति वै ।।

भविष्ये च—

दशमीशेषसंयुक्तामाश्रयेत्को व्रतं व्रती ।
को वेदवचनात्तात गोसवे गां निहन्ति वै ।।
तस्मादेकादशी त्याज्या दशमीपलसंयुता ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां च पारणम् ।। इति ।

स्कान्दे—

ये शंसन्ति दिनं विष्णोर्दशमीशेषसंयुतम् ।
ज्ञेयास्ते पापपुरुषाः शुक्रमायाविमोहिताः ।।
उपोषणदिने विद्धे जागरः पूजनं हरेः ।
वृथा दानादिकं सर्वं कृतघ्नेषु कृतं यथा ।।
उपोषणदिने विद्धे प्रारब्धे जागरे सति ।

विहाय स्थानं तद्विष्णुः शापं दत्वाऽथ गच्छति ।।

यद्यज्ञानाद्दशमीविद्धे व्रते कृते सति शुद्धो भवितुमिच्छेत्तदा श्रीकृष्णं दृष्ट्वा पुनर्न तथा कुर्यादित्युक्तं तत्रैव—

एकादशीं यदा विद्धां कुर्यादज्ञानमोहितः

दशमीवेधजं पापं नश्यते कृष्णदर्शनात् ।।

न चास्ति संशयः कश्चित्पुनर्न कुरुते यदि ।। इति ।।

अथ यावता कालेन दशम्या विद्धैकादशी त्याज्या भवति स वेधकालो विचार्यते शुद्धोपादानाय। तत्र तावद्वेधस्त्रिविधः-सूर्योदय-वेधोऽरुणोदयवेधोऽर्द्धरात्रवेधश्चेति। तत्राद्योऽवैष्णवविषयः। तथा स्मर्यते माधवीये—

अतिवेधा महावेधा ये वेधास्तिथिषु स्मृताः।

सर्वेऽप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये मतः ।। इति ।।

तत्र सूर्योदयारुणोदयवेधयोरन्तराले अतिवेधमहावेधौ उक्तौ ब्रह्मवैवर्त्ते—

अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम्।

अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासन्दर्शनाद्रवेः ।।

महावेधोपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते।

तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः ।। इति ।।

ते च वेधाः स्पर्शादय इत्यर्थः ।। तं चोदयवेधं कण्वोप्याह—

उदयोपरि विद्धा या दशम्यैकादशी यदा।

दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान्पाकशासनः ।। इति ।।

स्मृत्यन्तरेपि—

दशम्याः प्रातरादाय यदोदिति दिवाकरः।

तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तु ।। इति ।।

अरुणोदयवेधो भविष्यपुराणे दर्शितः—

अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ।
सा विद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम् ।।
अरुणोदयवेलायां दशम्या गन्धो भवेद्यदि ।
दुष्टं तत्तु प्रयत्नेन वर्जनीयं नराधिप ! ।। इति ।

गारुडेपि——

दशमीवेधसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ।। इति ।।

अरुणोदयप्रमाणं स्कान्दनारदाभ्यामुक्तम्—

उदयात्प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः ।। इति ।

ब्रह्मवैवर्त्ते च——

चतस्रो घटिका प्रातररुणोदयनिश्चयः ।।इति ।

अयमप्यनेकधा सूर्योदयात्प्राक् सार्द्धघटिकात्रयादिवाक्यबलात् ।। अयमरुणोदयवेधः वक्ष्यमाणवेधानभिज्ञानां वैष्णवानां मान्यो भवति । यथारुणोदयवेधापेक्षयातिवेधो हेयस्तदपेक्षया महावेधस्तदपेक्षया सूर्योदयवेधश्च तथा वक्ष्यमाणसञ्ज्ञाख्यवेधापेक्षयाऽस्य हेयत्वात् । स च वक्ष्यमाणस्पर्शाख्यवेधापेक्षया हेयस्तस्मान्निरपवादो हरिप्रियाचार्याणामभिमतः स्पर्शाख्यवेधपोषकः कपालवेधाख्योऽर्द्धरात्रवेधो विचार्यते ।

स चोक्तः स्मृतौ——

अर्द्धरात्रात्परा यत्र एकादश्युपलभ्यते ।
तत्रोपवासः कर्त्तव्यो न तु चेद्दशमीकला ।। इति ।

श्रीमत्कुमाराः——

महानिशामतिक्रम्य दशमी परगामिनी ।
तत्र व्रतं तु वैष्णवा न कुर्वन्त्यस्मदाश्रयाः ।। इति ।

श्रीमन्नारदस्तथाह——

निशामध्यं परित्यज्य दशमी चेत्परं गता ।
तत्र नोपवसेत्साधुर्वैष्णवीं पदवीं गतः ।। इति ।

श्रीमद्धयग्रीवः—

निशीथसमयं त्यक्त्वा दशमी स्यात्ततः परा ।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ।। इति ।

अन्यत्र च—

अर्द्धरात्रमतिक्रम्य दशमी चेत्परं गता ।
न कर्त्तव्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ।। इति ।।

पाद्मे—

अर्द्धरात्रं स्पृशेत्पूर्णाऽपक्षवृद्धिर्यदाऽग्रतः ।
कपालवेधिनी सा च शुद्धां भद्रामुपोषयेत् ।। इति ।।

अत्रापक्षवृद्धिरिति च्छेदः । पक्षवृद्धौ तु दशमीवेधं विनापि द्वादश्युपोषणं **पाद्मे** उक्तं तच्च वक्ष्यते ।। **कौर्मे च—**

अर्द्धरात्रमतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि ।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।। इति ।

किञ्च—

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे ।
निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः ।। इति ।

भविष्यपुराणगते श्रीमद्व्यासवाक्ये—उदयव्यापिनीत्यस्याद्यतनोदयव्यापिनी अद्यतनप्रवृत्तिव्यापिनीत्यर्थः । अद्यतनप्रवृत्तिरर्द्धरात्रादनन्तरं भवति तच्चाग्रे स्फुटीभविष्यति । एवंसति स्वमतेऽर्द्धरात्रोपरि पूर्वतिथिप्रवेशे सर्वेषु व्रतेषु वेधो भवतीति गम्यते ।। यत्तु—**व्रतहेमाद्रौ** निम्बसप्तमीव्रते अन्यत्र चोदयव्यापिनी चन्द्रोदयव्यापिनीति कृष्णजन्माष्टमीव्रते, क्वचिच्च सूर्योदयमाश्रित्य जन्माष्टमीव्रते श्लोको नीतः, तन्नस्मार्त्तपक्षप्रवेशात् एकदेशित्वाच्च ।

ब्रह्मवैवर्त्ते शौनकोक्तौ–

अर्द्धरात्रे तु केषाञ्चिद्दशम्या वेध इष्यते ।
अरुणोदयवेलायां नावकाशो विचारणे ।।
कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ।
नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ।। इति ।।

अर्द्धरात्रे इत्यस्य श्लोकस्यायमर्थः-दशम्या वेधः केषाञ्चिदाचार्याणां मतेऽर्द्धरात्रे इष्यते। तुशव्दो हेत्वर्थः। अतो हेतोररुणोदयवेलायां, विचारणे-वेधविषयकविचारणेऽवकाशो नास्ति तद्वदित्यर्थः। एवमेकादशीविषयं वेधं प्रतिपाद्य जन्माष्टम्यादावप्ययमेव तेषामाचार्याणां मते वेध इति सामान्यतो वदन् तेषां हरिप्रियत्वं स्वस्य तन्मतानुवर्त्तित्वं चाह-द्वितीयेन वाक्येन। ये हरिप्रियाः यथार्थभगवद्धर्मपरत्वेन भगवतः प्रियाः।

यद्वा सर्वस्य भगवदितरस्य प्राकृतपदार्थस्य ससाधनस्य दुःखमूलत्वात्परमानन्दनिधिर्भक्तवत्सलो भगवान्प्रियो येषां ते हरिप्रियास्ते आचार्याः सूक्ष्मार्थविवेचनकुशलाः कपालवेधः इत्याहुः। सूक्ष्मकालावयवविद्बृहद्वसिष्ठादिसंमत्या भूतभविष्यवर्त्तमानार्थवित्पाणिन्यादिमहर्षिसंमत्या च रात्रेः पूर्वार्द्धरूपं कपालमतिक्रम्यापरार्द्धरूपे कपाले पूर्वतिथिप्रवेशे कपालवेधमाहुरित्यर्थः। अयमेव वेधो व्रतविधौ सार्वत्रिकोऽपिप्रसङ्गात् '**अर्द्ध रात्रे तु दशम्या वेध**' इति पूर्वश्लोके विशेषतो दर्शितः। अस्मिन् श्लोके तु सामान्यतो दर्शितः अन्यथा पुनरुक्तिः स्यात्। एतद्धरिप्रियाचार्यमतं यस्मात्त्रियामरात्रिः क्वचित्कस्मैचित्प्रयोजनाय इष्यते तस्मान्मम मतं किं न, अपि तु ममाप्येतदेव मतमित्यर्थः। क्वचित्पूर्वदिनकृत्यसमाप्त्याद्यर्थं रात्रेः किञ्चित्पूर्वभागः अग्निमदिनकृत्योपक्रमाद्यर्थः पश्चाद्भागः रात्र्यां न गण्यतेऽतः सा त्रियामेत्युच्यते।

वस्तुतस्तु चतुर्यामा रात्रिर्भवति–

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे । –इति

कलामुहूर्त्तादिकालनिर्णयानन्तरं दिवारात्र्योश्चतुर्यामात्मकत्वविधायक-भागवतविष्णुपुराणवाक्यात् । मम मतं नैतदिति व्याख्यानेऽपि न काचिदस्माकं क्षतिः—

नैतच्छास्त्रमहं मन्ये यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् । इति–

पूर्वप्रदर्शितब्रह्मवैवर्त्तवाक्यादसिद्धान्ते प्रवृत्तो जगन्मान्यो ब्रह्माप्युपेक्षणीयः स्यात्तत्र कः **शौनकः । श्रीहरिप्रियाचार्याणां** तु ज्योतिःशास्त्रसंमत्या स्मृतिपुराणवाक्यसंमत्या चैष एव वेधः संमतः ज्योतिःशास्त्रेऽर्द्धरात्रानन्तरमग्रिमदिनप्रवृत्त्यङ्गीकारात् **तत्र वृद्धवसिष्ठः—**

अह्नि संक्रमणे पूर्वमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम् ।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्थं स्नानदानयोः ।।
अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया ।
ऊर्ध्वसंक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ।। इति ।।

ब्रह्मसिद्धान्ते च–

भवनान्तं विम्बमध्यं रात्र्यर्द्धात्प्रागुदेति चेत् ।
स्नानदानादिमध्याह्नात्कुर्यादूर्ध्वगते दिने ।।
रात्र्यर्द्धादुपरि क्षेत्रं याति चेदन्यथाऽर्यमा ।
अह्न्यागामिनि मध्याह्नात्पूर्वं स्नानादि पुण्यदम् ।।
यद्यर्द्धरात्रे एव स्यात्सम्पूर्णे सङ्क्रमो रवेः ।।
तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानादानादिकर्मसु ।। इति ।।

मुहूर्त्तचिन्तामणौ च–

निशीथतोऽर्वागपरत्र सङ्क्रमे
पूर्वापराहाऽन्तिमपूर्वभागकौ ।
पूर्णे निशीथे यदि सङ्क्रमः

स्याद्दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात् ।। इति ।।

अन्येपि ज्योतिःशास्त्रे श्लोका बहवः सन्ति विस्तरभयान्नोदाहृताः ।। तथा **कालनिर्णयदीपिकाकारे**णाप्ययमेव वेध उपन्यस्तः—

दिग्वेधोस्ति निशीथयुग्व्रतविधावाद्ये स वर्ज्यो भवेत् ।इति।

अस्यार्थस्तट्टीकायाम्—

यदा आद्ये अद्यदिवसे निशीथयुक् अर्द्धरात्रयोगी दिग्वेधो दशमीवेधोस्ति तदा स दिवसो व्रतविधौ उपवासविधाने वर्ज्यो भवेत्, तद्दिने व्रतं न कार्यमित्यर्थः ।। किञ्च निशीथकालेऽग्रिमदिनारम्भस्तु सर्वैरेवाङ्गीकर्त्तव्योस्ति । तथा नाङ्गीक्रियते चेत्सङ्कल्पवाक्येऽद्यपदस्यानर्थक्यं स्यात्-यतोऽतीताया रात्रेः पश्चादर्द्धेनागामिन्याः पूर्वार्द्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनशब्देन शाब्दिकैरङ्गीक्रियते, अत एव **पाणिनिना-'ल्यनद्यतने लङि'**त्येतदधिकाल एव लङ् प्रत्ययो विहितः अद्यभवः कालोऽद्यतनः न अद्यतनः अनद्यतनः तस्मिन् ।। न च सङ्कल्पवाक्येऽद्यपदे तत्कालिको मुहूर्त्तोभिहित इति वाच्यम् । एकादश्यादिव्रतस्य मुहूर्त्तमात्रत्वापत्त्या मुहूर्त्तानन्तरं पारणापत्तेः ।। किञ्चार्द्धरात्रादग्रिमदिनप्रवृत्त्यनङ्गीकारे **वाराहपुराणोक्तं** गृहस्थधर्मविषयकप्रश्नोत्तरं न सङ्गच्छेत्

तथाहि—

एकादशी यदा राम ! पितुः सम्वत्सरं दिनम् ।

ऋतुकालो वरस्त्रीणां कथं धर्मः प्रवर्त्तते ।।

तत्रोत्तरम्—

श्राद्धं कुर्याद्व्रतं कुर्यात्पिण्डमाघ्राय निक्षिपेत् ।

अर्द्धरात्रे ऋतुं दद्यात्त्रिषु धर्मः प्रवर्त्तते ।। इति ।।

अर्द्धरात्रे इति । अर्द्धरात्रानन्तरमृतुदानं कुर्यादित्यर्थः । अन्यथार्द्धरात्रादर्वागृतुदानेनाद्यकरणीयत्वेन सङ्कल्पितयोरुभयोः श्राद्धव्रतयोर्भङ्गः स्यात् ।। अर्द्धरात्रोत्तरकालस्य परदिने गण्यमानत्वात्तत्रर्तुदाने न दोषः ।।

तथान्यत्रापि शास्त्रे उक्तम्--

कलार्द्धां द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्ध्वमेव हि ।

आमध्याह्नं क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भुशासनात् ।।

किञ्च धर्मशास्त्रे उपाकर्मप्रकरणे **वृद्धमनुकात्यायनौ**—

अर्द्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिर्ग्रहणं तथा ।

उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषभाक् ।।—

इत्यादीनि बहूनि शास्त्रवाक्यानि बाध्येरन् । तस्मादर्द्ध रात्रानन्तरमग्रिमदिनारम्भो ज्योतिःशास्त्रेण धर्मशास्त्रेणापि सिद्धः । अतोऽर्द्ध रात्रे दशमीयोगे रात्रेर्भागद्वयेन कपालद्वयवत्सम्बन्धे कपालवेधो भवति । कपालवेधे सत्येकादशीव्रतं नैव कार्यम्, **अत एवोक्तं स्कान्दे**—

नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा ।

भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ।। इति ।।

अन्यत्रापि—

सार्द्धसप्तमुहूर्त्तैस्तु वेधोयं बाधते व्रतम् ।।

इत्यर्द्ध रात्रवेधाभिप्रायेणैवोक्तम् । अन्यथा सूर्योदयादूर्ध्वपञ्चदशघटिकावेधस्य कस्याप्यनङ्गीकारादनर्थकमेव स्यात् । अयमेव कपालवेधो दिवारात्र्योः समत्वाभिप्रायेण स्पर्शशब्देनाप्युच्यते । **तथाहि**—

विष्णुधर्मोत्तरे—

पञ्चचत्वारिंशः स्पर्शः सङ्गः पञ्चशता मतः ।

पञ्चपञ्चाशता शल्यो वेधः षष्टिशता मतः ।।

स्पर्शे तु घटिका पञ्च पञ्च सङ्गे तथैव च ।

शल्ये पञ्च तथा वेधे एवंवेधश्चतुर्विधः ।।

स्पर्शादींश्चतुरो वेधान् वर्जयेद्वैष्णवो नरः ।।

तेषामेव नामान्तरमाह **तत्रैव**—

गन्धिनी सङ्गिनी शल्या विद्धा लोकेषु विश्रुता ।

गन्धिनी सङ्गिनी शल्या चतुर्द्धा वेधसंयुता ।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं न कर्त्तव्या कदाचन ।
गन्धिनी धर्महीना च अर्थहीना च सङ्गिनी ।।
कामविध्वंसिनी शल्या विद्धा मोक्षविनाशिनी ।।

स्कान्देपि स्कन्दं प्रति रुद्रवाक्यम्—

एकादशी यदा पुत्र ! चतुर्वेधविवर्जिता ।
प्रकर्त्तव्या विशेषण चतुर्वर्गफलप्रदा ।।
सस्पर्शा कुलनाशाय ससङ्गा धर्मनाशिनी ।
सदल्या निष्कला प्रोक्ता सवेधा नरकं नयेत् ।। इति ।।

पाद्मे गौतमः—

सवेधं वासरं विष्णोर्यस्मिन् राष्ट्रे प्रवर्त्तते ।
लिप्यते तेन पापेन राजा भवति नारकी ।।
वेधं चतुर्विधं त्यक्त्वा समुपोष्यं हरेर्दिनम् ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य नरकाद्व्रजते दिवम् ।। इति ।।

मे तु—

स्पर्शादिचतुरो वेधाः सुप्रसिद्धाः कृते हि वै ।
सङ्गादयस्तु त्रेतायां शल्यादि द्वापरे कलौ ।। इति—

विष्णुधर्मोक्तिमादाय द्वापरे कलियुगे च क्षल्यवेधावेवादरणीयौ इत्याहुः ।। **तत्र केचि**(१)द्द्वापरे कलियुगेऽविशेषेण द्वौ वेधावादरणीयाविति **वदन्ति** । **अन्ये तु**(२) क्रमोल्लङ्घने मानाभावाद्द्वापरे शल्यः कलौ वेध इति **वदन्ति** । ते शुक्रमायाविमोहिताः—

कलौ प्राप्ते मुनिश्रेष्ठ ! महावेधं चतुर्विधम् ।
साहङ्कारा न पश्यन्ति चासुरं भावमाश्रिताः ।।

---

(१) अरुणोदयवेधवादिनः ।
(२) सूर्योदयवेधवादिनः ।

स्पर्शादिचतुरो देधान्न पश्यन्ति नराधमाः।
अज्ञानतिमिरान्धास्ते शुक्रमायाविमोहिताः॥
इति स्कान्दोक्तेः॥

अथ—

व्यालमुखी महाव्याला भया चैव महाभया।
वज्रातिवज्रा रौद्रा च महारौद्रासुरी तथा॥
वन्ध्या चैव महावन्ध्या छाया ग्रस्ता विधीयते।
वेधातिवेधा विज्ञेया महावेधा षडाधिका॥
प्रलया महाप्रलया महाघोरा तथैव च।
सम्पूर्णा राक्षसी चैव विंशद्दोषाः प्रकीर्त्तिताः॥ इति—

श्रीमन्नारदपञ्चरात्रे चत्वारिंशघटिकोत्तरे षष्टयवधौ ये विंशद्दोषा उक्तास्तेषां मध्ये बहूनां निराकरणं कपालवेधावलम्बिसस्पर्शवेधविदूषितैकादशीव्रतत्यागादेव भवति॥ अवशिष्टा दोषाः पूर्वैरुपेक्षिताः। तत्र वेधाभावात्तन्मात्रेण हेतुना प्रमाणान्तरं विना व्रतत्यागासम्भवाच्च। एवमन्यास्वपि विष्णुव्रततिथिषु वेधो ज्ञेयः॥ तथा **बृहत्स्वधर्मदीपिकायां स्कान्दे**—

कपालवेधनी पूर्णा व्रते ह्येकादशीं यथा।
तथैवान्यां हरेः पूर्वा दूषयेदुत्तरान्तिथिम्॥ इति।

इत्थं दशमीविद्धैकादशीव्रते निषिद्धे ये केचित्तु **स्कन्दपुराणे**—

त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किञ्चन।
उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रतापि च॥

बृहद्वसिष्ठः—

द्वादशी स्वल्पमल्पापि यदि न स्यात्परे हनि।
दशमीमिश्रता कार्या महापातकनाशिनी॥ इति॥

ऋष्यशृङ्गः—

एकादशी न लभ्यते द्वादशी सकला भवेत् ।
उपोष्यैकादशी विद्धा ऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत् ।।

इत्यादीनि वाक्यान्याहृत्य दशमीविद्धैकादशीव्रतं कुर्वन्ति कारयन्ति ते शुक्रस्य मायया मोहिता भगवद्विमुखा ज्ञेयाः । तथा पद्मपुराणे पितामहोवाच—

कस्मात्कृष्ण ! तवासाध्यो दानवेन्द्रो महाबलः ।
भस्मसाद्याति हेमाद्रिस्तव दृष्टचवलोकितः ।।

श्रीभगवानुवाच—

शुक्रेण मोहिताः सर्वे दैत्यानां कारणाय वै ।
तुष्टचर्थं दशमीविद्धं कुर्वन्ति मम वासरम् ।।
यावच्च दशमीविद्धं कुर्वन्ति मम वासरम् ।
तावद्रक्षांसि दैत्येन्द्रा भविष्यन्ति बलाधिकाः ।।
दशमीवेधसंयुक्तं ये कुर्वन्ति दिनं मम ।
तत्पुण्यं दैत्यजातीनां सुरैर्दत्तं पितामह ! ।।
तेन पुण्येन सन्तुष्टो हिरण्याक्षो महासुरः ।
निर्जित्य वासवं संख्ये हृतं राज्यं दिवौकसाम् ।।
शुक्रेण मोहिताः सर्वे दैत्यानां विजयाय वै ।
अतो विद्धं प्रकुर्वन्ति वासरं मम वल्लभम् ।।
सवेधं मद्दिनं मूढाः कुर्वन्ति कारयन्ति ये ।
शुक्राचार्यकुलोद्भूता ज्ञेयास्ते मम वैरिणः ।।
मार्कण्डे ! गच्छ भद्रं ते भूर्लोकं ममाज्ञया ।
दशमीवेधविषये मायां शुक्रस्य नाशय ।।
श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा ऋषयो नैमिषालयाः ।
शुक्रमायाविनिर्मुक्ता विस्मयं परमं गताः ।।

विष्णुरहस्ये—

दशमी दोषसंयुक्ता गान्धार्या समुपोषिता ।
तस्या पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।
धृतराष्ट्रेण मैत्रेयः पृष्टः प्राह नराधिपम् ।
यदर्थं ते वियोगोऽभूत्पुत्राणां भार्यया सह ।।
पुत्र ! त्वया सभार्येण दशमी शेषसंयुता ।
कृता चैकादशी राजन्तदेकं कारणं मतम् ।।

स्कन्दपुराणे वाल्मीकिं प्रति श्रीसीतावाक्यम्--

न चाहं स्वैरिणी भार्या न चाहमपतिव्रता ।
न चेह कलुषं किञ्चित्किं पापं त्वन्यजन्मनि ।।
रामपत्न्या वचः श्रुत्वा वाल्मीकी ऋषिपुङ्गवः ।
चिरं ध्यात्वा महाराज ! तामुवाचेदृशं वचः ।।
दशम्यैकादशीं युक्तां समुपोष्य जनार्द्दनः ।
अभ्यर्चितस्त्वयादेवि ! तस्येदं कर्मणः फलम् ।।
वसिष्ठस्तामुवाचेदं पृष्टो मान्धातृभार्यया ।
दशम्यैकादशी देवि ! पुरा चोपोषिता त्वया ।।
तेन ते कर्मणा चेह भ्रातृपुत्रादिबान्धवैः ।
वियोगः समनुप्राप्तः सत्यं विद्धि पतिव्रते ! ।।

अत एव दुष्टं व्रतं ये कारयन्ति कुर्वन्ति च ते नरकार्हा अनवलोक्या:

इत्युक्तं शौनकं प्रति सूतेन ब्रह्मवैवर्त्ते--

ये तु मिथ्याभिधानेन मोहयन्ति नरा भुवि ।
विमूढा पापिनस्तेषां रौरवं शरणं चिरम् ।।
अध्यापयन्त्यविज्ञेयं पण्डितंमन्यबुद्धयः ।
कारयन्त्यबुधा लोके द्वादशींदशमीयुताम् ।।
ये कारयन्ति कुर्वन्ति द्वादशीं दशमीयुताम् ।
शुद्ध्यर्थं तन्मुखं वीक्ष्य सूर्यदर्शनमाचरेत् ।।

नमो नारायणायेति जपेद्वा द्वादशाक्षरम् ।
वराकाः किमु जानन्ति प्राणिनः कार्यनिश्चयम् ।।
धिग्धिङ्मूढधियः पापान् धर्मविप्लवकारिणः ।
हिंसितो भगवांस्तेन द्वादशी दशमीयुता ।।
कृता येन द्विजश्रेष्ठ! सम्यगुक्तं मया तव ।
संस्थितो भगवान्कृष्णो द्वादशीरूपधृग्यतः ।।
तस्मादसंशयं त्याज्या द्वादशी दशमीयुता ।। इति ।।

अत एव द्वादश्युपवासविषयाणि त्रयोदश्यां पारणाविषयाणि वाक्यानि सन्ति । तत्र एकादश्याधिक्ये—

सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादिशी वृद्धिगामिनी ।
द्वादश्यां लङ्घनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति ।।

द्वादश्याधिक्ये श्रीव्यासः—

एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत् ।
उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमां गतिम् ।। इति ।।

उभयाधिक्ये भृगुः—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभावे पुनरेव सा ।
सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदा ।।

तथा स्कन्दपुराणे—

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी भवेत् ।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।।

गारुडे—

पूर्णा भवेद्यदा नन्दा भद्रा चैव विवर्द्धते ।।
तदोपोष्या तु भद्रा स्यात्तिथिवृद्धिः प्रशस्यते ।।

गोभिलः—

एकादश्यां यदा ब्रह्मन्! दिनक्षयतिथिर्भवेत् ।

तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।।

श्रीनारदीये—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति ।

कौर्मे—

द्वितिथ्यन्तावेकवारे यस्मिन्स्यात्स दिनक्षयः ।
दिनक्षये तु सम्प्राप्ते उपोष्या द्वादशी भवेत् ।।

सम्पूर्णालक्षणं तु स्कान्दे—

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादोदयं(१)रवेः ।
सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिता ।। इति ।।

हरिवासरशब्दो द्वादश्येकादशीयोगे रूढः, इह तु हरिव्रततिथिगणे हरिसम्बन्धेन निरुच्यते । यथा पुष्ययुक्तायां द्वादश्यां पापनाशिनीशब्दः रूढः—

उन्मीलिनी भृगुश्रेष्ठ ! कथिता पापनाशिनी ।। इति—

पापनाशकत्वेनोन्मीलिन्यां निरुच्यते । प्रतिपत्प्रभृतयः सूर्योदयादिकालसूचितषष्टिघटिकात्मिकाः सम्पूर्णाः । हरिव्रततिथयस्तु यथोपयोगम् इति कलितोर्थः ।

पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने ।
मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ।। इति

पाद्मोक्तिवत् । ये तु श्लोके रामनवमीनृसिंहचतुर्दशीकृष्णजन्माष्टम्यादीनां प्रतिपत्प्रभृतिषु अन्तर्भावमभिप्रेत्य तद्व्रते सूर्योदये वेधं कल्पयन्ति ते उपेक्षणीया निर्मूलत्वात् । नन्वेवं पूर्वोक्तप्रकारेण दशमीवेधविषये विवादबाहुल्यात्कस्मिन्वेधे एकादशी त्याज्या कस्मिन्न वेति कथं निश्चय

(१) ओदयं-आ उदयम् ।

इति चेन्न ।

सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः ।।

इत्युक्तत्वात्सर्वप्रकारविद्धैकादशीं त्यक्त्वा द्वादश्येवोपोष्या ।

तथा मार्कण्डेये श्रीमद्भगवद्वाक्यम्–

विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम् ।
पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने! ।। इति ।
बह्वागमविरोधेषु ब्राह्मणेषु विवादिषु ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति च ।

स्कान्दे च हरिः—

द्वयोर्विवदतोः श्रुत्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।
पारणं तु त्रयोदश्यामेवं शास्त्रविनिश्चयः ।। इति ।

श्री नारदीये—

बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदि ।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति ।।

अत एव च कपालवेधोऽस्माभिः स्वीकृतः कपालवेधवादिनामस्माकं मते एव द्वादशीयोगाधिक्यलाभात्‌ **अत एवोक्तं पाद्मे—**

द्वादशीमिश्रिता ग्राह्या सर्वत्रैकादशीतिथिः ।
द्वादशी च त्रयोदश्यां विद्यते यदि वा नवा ।। इत्युक्तम् ।।

अत एव द्वादशीमिश्रस्यैवैकादशीव्रतदिनस्य हरिवासर इति संज्ञोच्यते

स्मृतौ—

द्वादश्येकादशी मिथः पूर्वोत्तरस्वपादतः ।
सङ्गते क्रमतो ज्ञेयो हरिवासरनिश्चयः ।। इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

द्वादश्येकादशीयोगे विख्यातो हरिवासरः ।
एकादश्यन्तपादेन द्वादश्याः पूर्वमेव हि ।।

हरिवासरमित्याहुर्भोजनं न समाचरेत् ।।

पुनस्तत्रैव—

द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञकः ।
तन्मध्ये पारणं कुर्वन् विष्णुद्रोही प्रजायते ।। इति ।।

कपालवेधवादिनां मते द्वादश्याः पूर्वपादस्य व्रतेऽन्तर्भावोऽन्येषां मते तु प्रायः पारणादिने इति विवेकिभिर्बोध्यम् ।

यत्तु—

वानप्रस्थो यतिश्चैव शुक्लामेव सदा गृही । इति—कौर्मे

मतमुपन्यस्तं तत्त्ववैष्णवविषयं--तदकरणे प्रत्यवायश्रवणाद्वैष्णवलक्षण-विरोधाच्च ।

यथा शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथोत्तरा ।
तुल्येन मन्यते यस्तु स हि वैष्णव उच्यते ।।

इति तत्त्वसारे ।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।।

इत्याग्नेये ।

स ब्रह्महा सुरापश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।
विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सिताऽसिते ।।

इति कौर्मे विष्णुधर्मोत्तरयोः ।

एवं ज्ञात्वा सदोपोष्ये द्वादश्यौ कृष्णशुक्लके ।
तयोर्भेदं न कुर्वीत भेदेन नरकं व्रजेत् ।।

इति भविष्ये च ।

सपुत्रश्च सभार्यश्च सयत्नो भक्तिसंयुतः ।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि ।।
स ब्रह्महा सुरापश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।

विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सितासिते ।।

इति कालिकापुराणे ।

सर्वेषामिह पापानामाश्रयः स तु कीर्त्तितः ।
विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सितासिते ।। इति ।
शुक्ला वा यदि वा कृष्णा विशेषो नास्ति कश्चन ।
विशेषं कुरुते यस्तु पितृहा स तु कीर्त्तितः ।।

इति च गारुडे ।

किञ्च—

संक्रान्तौ कृष्णपक्षे तु रविशुक्रदिने तथा ।
एकादश्यां न कुर्वीत ह्युपवासं न पारणम् ।।

इत्येतदप्यवैष्णवविषयम् —

संक्रान्तौ रविवारे वा यदाप्येकादशी भवेत् ।
उपोष्या सा महापुण्या सर्वपापहरा तिथिः ।।

इति कात्यायनस्मृत्युक्तेः ।

परापवादमापन्ने हर्षे वा समुपस्थिते ।
नैकादशीं त्यजेद्यस्तु तस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ।।
एवं कुर्वन्नरो भक्त्या विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
अन्यथा कुरुते यस्तु स याति नरकं ध्रुवम् ।।

इति स्कान्दोक्तेश्च ।

यच्च–

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रातरेव पुनश्च सा ।
पूर्वामुपवसेत्कामी निःकामा तु परा भवेत् ।।
निःकामस्तु गृही कुर्यादुत्तरैकादशीं सदा ।
प्रातर्भवतु मा सा वा द्वादशी तु द्विजोतम ! ।।

इति मार्कण्डेये-तदप्यवैष्णवविषयम् ।

पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ॥

इति श्रीमन्नारदपञ्चरात्रोक्तेः ।

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रातरेव पुनश्च सा ।
पूर्वां त्यक्त्वोत्तरां कुर्यात्काम्यऽकामश्च वैष्णवः ॥

इति श्रीमत्कुमारवचनाच्च ।

अथ महाद्वादश्योऽष्टौ तन्नित्यता तथा पाद्मे—

न करिष्यन्ति ये लोके द्वादश्योऽष्टौ ममाज्ञया ।
तेषां यमपुरोवासो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते तन्नामानि—

उन्मीलिनी वञ्जुलिनी त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी ।
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ॥
द्वादश्योऽष्टौ महापुण्याः सर्वपापहरा द्विज ! ॥

उन्मालिनीलक्षणं पाद्मे—

एकादशी तु सम्पूर्णावर्द्धते पुनरेव सा ।
द्वादशी च न वर्द्धेत कथितोन्मीलिनीति सा ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

एकादशी तु सम्पूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा ।
उन्मीलिनी भृगुश्रेष्ठ ! कथिता पापनाशिनी ॥
सा पापनाशकत्वेनोन्मीलिनीति निरुच्यते ।
दशमीवेधराहित्येनैकादशी यदैधते ॥
न द्वादशी तु विदिता सोन्मीलिनी भवेत्तदा ।
शुद्धाप्येकादशी त्याज्या द्वादश्यां समुपोषणम् ॥

स्मृतौ तथा—

एकादशी यदा पूर्णा परतः पुनरेव सा ।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।

नारदीये—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
अत्रोपोष्या द्वितीया तु पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥

विष्णुरहस्ये—

एकादशी कलामात्रा येन द्वादश्युपोषिता ।
तुल्यं क्रतुशतेन स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

ब्राह्मे—

द्वादश्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

अथ वञ्जुलीलक्षणं पाद्मे—

सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च तथा भवेत् ।
त्रयोदश्यां मुहूर्तार्द्धं वञ्जुली सा हरिप्रिया ॥
शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे यदा भवति वञ्जुली ।
एकादशीदिने भुक्त्वा द्वादश्यां कारयेद्व्रतम् ।
पारणं द्वादशीमध्ये त्रयोदश्यां न कारयेत् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

द्वादश्येव विवर्द्धेत न चैवैकादशी यदा ।
वञ्जुलीति भृगुश्रेष्ठ ! कथिता पापनाशिनी ॥
द्वादशीमात्रवृद्धौ हि वञ्जुली परिकीर्त्तिता ॥

अथ त्रिस्पृशालक्षणम् तत्र नारदः—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

पाद्मे प्राचीमाधवः—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमी सङ्गता न हि ॥

स्मृतौ—

अरुणोदय आद्या स्याद्द्वादशी सकलं दिनम्।
अन्ते त्रयोदशी प्रातस्त्रिस्पृशा सा हरिप्रिया॥

भविष्ये—

एकादशी कलाप्येका द्वादशी सकलं दिनम्।
त्रयोदशी उषःकाले वैष्णवं तद्दिनत्रयम्।
सर्वपापहरं प्रोक्तं तदुपोष्यमिति स्मृतिः।

एकादशी द्वादशी च त्रयोदशीयोगे त्रिस्पृशेत्यर्थः॥

पक्षवर्द्धिनीलक्षणं पाद्मे—

अमा वा यदि वा पूर्णा सम्पूर्णा दृश्यते यदा।
भूत्वा तु षष्टिघटिका दृश्यते प्रतिपद्दिने॥
अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी।
महती सा समाख्याता द्वादशी पक्षवर्द्धिनी॥
भुक्त्वा चैकादशीं विद्वान् द्वादश्यां समुपोषयेत्।
विशल्यापि न कर्त्तव्या पक्षवृद्धिर्यदा भवेत्॥
क्षयवृद्धौ विशेषेण सन्देहे समुपस्थिते।
समाख्याय प्रकर्त्तव्या वल्लभा पक्षवर्द्धिनी॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

कुहूराके यदा वृद्धिं प्रयाते पक्षवर्द्धिनीम्।
विहायैकादशीं तत्र द्वादशीं समुपोषयेत्॥

पाद्मे कृष्णः—

विशल्या सा न कर्त्तव्या पक्षवृद्धिर्भवेद्यदि।
एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत्॥

अमा वा पूर्णा वा षष्टिघटिका भूत्वा यदा कियन्मात्रं वर्द्धेत सा पक्षवर्द्धिनीत्यर्थः। **अत्रायमभिसन्धिः**-यद्यपि दशमीवेधो नास्ति तथापि

पक्षवेधस्य विद्यमानत्वादेकादशी त्याज्या । यद्वा वाचनिकव्यवस्थया न युक्त्यपेक्षया ।।

अथ जयाविजयाजयन्तीपापनाशिनीनां लक्षणम्—

पुनर्वसुयोगे जया-श्रवणयोगेविजया-रोहिणीयोगे जयन्ती-पुष्ययोगे पापनाशिनी । तथा ब्राह्मे—

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ।
सर्वपापहरा ह्येताः कर्त्तव्याः फलकाङ्क्षिभिः ।।
द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जयाख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।
यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयन्ती नाम सा ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः ।।
यदा च शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ।। इति ।।

नारदीये—

शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता ।
तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति ।।

कृष्णपक्षेऽपि द्वादश्यां श्रवणयोगे व्रतमुक्तम् । **श्रीमदौदुम्बरः—**

पृष्ट्वा चैकादशीं स्वीयान् द्वादशीं सम्प्रदायिनः ।
वैष्णवान् गुरुमार्गस्थान्प्रकुर्यात्तद्विधानतः ।।

तथा कृष्णः—

महापुण्यतमा ह्येषा द्वादशी फलतोऽधिका ।
शोधयित्वा सदा कार्या सम्यग्दैवज्ञसत्तमैः ।
सम्पृष्ट्वा निजवैष्णवान्विष्णुशास्त्रविशारदान् ।
चीर्णव्रतान्सदाचारान् द्वादशीं समुपोषयेत् ।।

अथैतासां च नित्यता माहात्म्येन निगद्यते ब्रह्मवैवर्त्ते सूतशौनकसंवादे—

तावत् पापानि देहेषु दुःसहा यमयातनाः ।
प्राणिनां कुरुते तावद्यावन्नोन्मीलनीव्रतम् ।।
यदत्र दीयते दानं हूयते वात्र यद्धविः ।
सर्वं तदक्षयं प्राहुरुन्मीलिन्यां महर्षयः ।।

पाद्मे अम्बरीष उवाच—

स्वागतं मुनिशार्दूल ! प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ।
धन्यानामपि धन्योहं यत्त्वं मद्गृहमागतः ।।
तपसः कुशलं तेऽद्य भक्तिः श्रीकेशवोपरि ।
निश्चला मुनिशार्दूल ! हृदयान्नापसर्पति ।।

श्रीगौतम उवाच—

तपसः कुशलं राजन् ! भक्तिः कृष्णे सुनिश्चला ।
कुशलं तव राजेन्द्र ! ब्रह्मणान् पासि सर्वदा ।।
भक्तिं भागवतीं नित्यं किं करोषि नराधिप ! ।
शालग्राममयं बिम्बं किं त्वं पश्यसि प्रत्यहम् ।।
किं त्वं वन्दयसे नित्यं शालग्रामशिलाजलम् ।
गृहीत्वा स्नानतोयं तु किं त्वं पिबसि प्रत्यहम् ।।
दत्वा वै वैष्णवानां तु प्रोक्षणं कुरुषे गृहे ।
तद्विलेपनशेषेण अङ्गानि परिमार्जसि ।।
शालग्रामशिलामालां दत्वा मूर्द्धनि प्रत्यहम् ।
किं धारयसि भूपाल ! कण्ठे नित्यं स्वभक्तितः ।।
धूपशेषं तु कृष्णस्य भक्त्या भजसि भूमिप ! ।
कृत्वा चारात्रिकं विष्णोर्भक्त्या वन्दयसे नृप ! ।।
शङ्खोदकं हरेर्मूर्ध्नि भ्रामयित्वा सुभक्तितः ।

विभर्षि शिरसा नित्यं शेषं यच्छसि वैष्णवान् ।।
नैवेद्यं देवदेवस्य सर्वोपस्करसंयुतम् ।
विष्वक्सेनाय दत्वा त्वं भुञ्जसे वैष्णवैः सहः ।।
नित्यं नामसहस्त्रेण भक्त्या स्तौषि जनार्द्दनम् ।
दीपार्घदानं देवस्य कुरुषे गीतनर्त्तनम् ।।
दूर्वाङ्कुरैः पूजयित्वा पूजान्ते मधुसूदनम् ।
अक्षतैर्नृपशार्दूल ! किमर्च्चयसि केशवम् ।।
पक्षे पक्षे नृपश्रेष्ठ ! विधिवद्द्वादशीव्रतम् ।
दशमीवेधरहितं कुरुषे जागरान्वितम् ।।
तुलसीपत्रनिकरैर्नित्यं पूजयसे हरिम् ।
पुण्ड्रं बिभर्षि देहे त्वं गोपीचन्दनसम्भवम् ।।
विभर्षि कण्ठे त्वं नित्यं धात्रीफलसमुद्भवाम् ।
मालां मखायुतसमां तुलसीपत्रसम्भवाम् ।।
शालग्रामशिलायुक्तं द्वारकायाः (१)समुद्भवम् ।
नित्यं पूजयसे भूप ! भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।।
पुराणं श्रीभागवतं पठसे पुरतो हरेः ।
चरितं दैत्यराजस्य प्रह्लादस्य च भूपते ! ।।
वासरं वासुदेवस्य सवेधं कुर्वतो नरान् ।
निवारयसि भूपाल ! शास्त्रदृष्टया प्रयत्नतः ।।
सवेधं वासरं विष्णोर्यस्मिन् राष्ट्रे प्रवर्त्तते ।
लिप्यते तेन पापेन राजा भवति नारकी ।।
वेधं चतुर्विधं त्यक्त्वा समुपोष्यं हरेर्दिनम् ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य नरकात् व्रजते दिवम् ।।

अम्बरीष उवाच—

(१) गोमतीचक्रम् ।

त्वया यदुक्तं विप्रेन्द्र ! तत्सर्वं प्रकरोम्यहम् ।
पश्याम्यहं विष्णुमयं जगदेतच्चराचरम् ।।
विष्णुरूपी त्वमायातो मद्गृहं मुनिसत्तम ! ।
व्रतं कथय मे विप्र ! वैष्णवं सर्वकामदम् ।।
यत्कृत्वा न पुनः कृत्यं भवेत्तु ऋषिसत्तभ! ।
पुनर्गतिर्यथा विप्र ! विष्णुलोकाद्भवेन्न हि ।।

श्री गौतम उवाच—

शृणु भूपाल ! वक्ष्यामि व्रतं यद्वैष्णवं महत् ।
द्वादशीसम्भवं पुण्यं मयाऽऽख्यातं न कस्यचित् ।।
वैष्णवोसि महाराज ! धन्या भागवता नृणाम् ।
वैष्णवं यन्महागुह्यं तद्व्रतं त्वं निशामय ।।
उन्मीलनी नाम पुरा भक्तया तु विष्णुना ।
कथिता सुप्रसन्नेन तां ते भूप ! वदाम्यहम् ।।
सम्पूर्णैकादशी प्रार्तद्वितीयेन्हि प्रवर्त्तते ।
उन्मीलनीति सा प्रोक्ता पापपङ्कौघनाशिनी ।।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
कोटयांशे नैव तुल्यानि मखा वेदास्तपांसि च ।।
उन्मीलनीसमं किञ्चिन्न दृष्टं न श्रुतं मया ।
प्रयागं न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करम् ।।
न रेवा ब्रह्मतनया कालिन्दी मथुरा न हि ।
पिण्डारकं प्रभासं च न क्षेत्रं हाटकेश्वरम् ।।
शैलो हिमाचलो नैव न मेरुर्गन्धमादनः ।
शैलो नैवेह मलयो न विन्ध्यो नैव नैषधः ।।
गोदावरी च कावेरी चन्द्रभागा न देविका ।
न तापी च पयोष्णी च न क्षिप्रा नैव चन्दना ।।

चर्मण्वती च शरयूश्चन्द्रभागा न गण्डकी ।
गोमती च विपाशा च शोणश्चैव महानदः ।।
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो नराधिप ! ।
मोन्मीलिनीसमं किञ्चिन्न देवः केशवात्परः ।।
उन्मीलनीमनुप्राप्य यैः कृतं केशवार्चनम् ।
पापचक्रसमूहस्य दत्तस्तेन दवानलः ।।
यस्मिन्मासे महीपाल ! तिथिरुन्मीलनी भवेत् ।
तन्मासनाम्ना गोविन्दः पूजनीयो यथाविधि ।।
जातरूपमयः कार्यो मासनाम्ना तु माधवः ।
स्वशक्त्या विश्वरूपं च श्रद्धाभक्तिसमन्वितैः ।।
पवित्रोदकसंयुक्तं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं कुम्भं स्रग्दामभूषितम् ।।
पात्रमौदुम्बरं कार्यं गोधूमैश्चापि पूरितम् ।
तण्डुलैर्वा महीपाल ! स्थापनीयं घटोपरि ।।
स्नापयित्वा तु गोविन्दं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।
कृत्वा विलेपनं विष्णुः स्थापनीयो घटोपरि ।।
प्रदद्याद्वस्त्रयुग्मं तु सोपवीतं च सोत्तरम् ।
उपानहौ च राजर्षे! आतपत्रं शिरोपरि ।।
भाजनं जलपात्रं च सप्तधान्यं तिलैः सह ।
रूप्यं चैव तु कार्पासं पायसं मुद्रिकां हरेः ।।
धेनुं वा निष्क्रयं वापि दद्यान्माधवतुष्टये ।
शय्यां सोपस्करां दत्वा माधवाय तु भक्तितः ।।
धूपं दीपं तु नैवेद्यं फलं पत्रं निवेदयेत् ।
पूजनीयो महाभक्त्या मन्त्रैरेभिस्तु वैष्णवैः ।।
तुलसीपत्रसंयुक्तैः पुष्पैः कालोद्भवैर्हरिः ।

(१)मासनाम्ना तु पादौ हि जानुनी विश्वरूपिणे ।।
गुह्यं तु कामपतये कटिं वै पीतवाससे ।
ब्रह्ममूर्त्तिभृते नाभिं उदरं विश्वयोनये ।।
हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठं वैकुण्ठमूर्त्तये ।
उरुगाय ललाटं तु बाहू क्षत्रान्तकारिणे ।।
उत्तमाङ्गं सुरेशाय सर्वाङ्गं सर्वमूर्त्तये ।
(२)स्वनाम्ना चायुधादीनि पूजनीयानि भक्तितः ।।
अर्घ्यदानं प्रकर्त्तव्यं नालिकेरादिभिः फलैः ।
शङ्खोपरि फलं कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ।।
सूत्रेण वेष्टनं कृत्वा दद्यादर्घं विधानतः ।
देवदेव महादेव महापुरुष पूर्वज ! ।।
सुब्रह्मण्य ! नमस्तेस्तु पुण्यकीर्त्तिविवर्द्धन ! ।
शोकमोहमहापापान्मामुद्धर भवार्णवात् ।।
सुकृतं न कृतं किञ्चिज्जन्मान्तरशतैरपि ।
तथापि मां जगन्नाथ समुद्धर भवार्णवात् ।।
ब्रतेनानेन देवेश ये चान्ये मम पूर्वजाः ।
वियोनीश्च गताश्चान्ये पापान्मृत्युं च सङ्गताः ।।
ये भविष्यन्ति येऽतीताः प्रेतलोकात् समुद्धर ।
आर्त्तस्य मम दीनस्य भक्तिरव्यभिचारिणी ।।
दत्तमर्घ्यं मया तुभ्यं तद्गृहाण गदाधर ! ।
दत्वार्घ्यं धूपदीपाद्यैर्नैवेद्यैर्हविरुद्भवैः ।।
स्तोत्रैर्नीराजनैर्गीतैर्नृत्यैः सन्तोषयेद्धरिम् ।

---

(१) अंगपूजनमाह मासेत्यादि । यदा मार्गशीर्षे एतद्व्रतं तदा केशवाय नमः पादौ इति पादौ पूजयेदेवमग्रेपि ।

(२) सुदर्शनाय नम इत्येवम् ।

वस्त्रैर्दानैश्च गोदानैर्भोजनैस्तोषयेद्गुरुम् ॥
तथा तथा विधातव्यं प्रीतो भवति वै गुरुः ।
अकुर्वन् वित्तशाठ्यं तु व्रतं कुर्य्यात्तु वैष्णवः ॥
तुष्ट्यर्थं पद्मनाभस्य कार्यं जागरणं तथा ।
निशान्ते व्रतकृत्यं तु गुरुवे तन्निवेदयेत् ॥
गुरोर्निवेदिते भूप ! परिपूर्णं भवेद्व्रतम् ।
कृत्वा दिनकृतं कर्म्म भोजनं ब्राह्मणैः सह ॥
कर्त्तव्यं नृपशार्दूल ! दिनं नेयं कथानकैः ।
अनेन विधिना यस्तु कुर्यादुन्मीलनीव्रतम् ॥
कल्पकोटिसहस्राणि वसते विष्णुसन्निधौ ॥

किञ्च—

उन्मीलनीव्रतं कुर्य्यादेवं यः स धनी भवेत् ।
दीर्घायुः पुत्रवान् विद्वान् न कर्त्ता निरयं व्रजेत् ॥

बंजुलीमाहात्म्यं पाद्मे एव श्रीगौतमाम्बरीषसंवादे—

संपूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च यदा भवेत् ।
त्रयोदश्यां मुहूर्त्तार्द्धं वञ्जुली सा हरिप्रिया ॥
शुक्लपक्षे तथा कृष्णे यदा भवति वञ्जुली ।
एकादशीदिने भुक्त्वा द्वादश्यां कारयेद्व्रतम् ॥
पारणं द्वादशीमध्ये त्रयोदश्यां न कारयेत् ।
एवंकृते महीपाल ! यज्ञायुतफलं लभेत् ॥
द्वादश्यां तु निराहारः पारणा चापरे हनि ।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थं करिष्ये मञ्जुलीव्रतम् ॥

इति नियममन्त्रः ।

स्नात्वा नद्यां नदे वाऽथ तडागे वा ह्रदेऽपि वा ।
कृत्वा स्नानं गृहे वापि नित्यकर्म च कारयेत् ॥

माषकेण सुवर्णेन कृत्वा नारायणीं तनुम् ।
रत्नगर्भे घटं कृत्वा ताम्रपात्रोपरि स्थितम् ।।
आतपत्रं तु मायूरं वैष्णवं वा स्वशक्तितः ।
उपानहौ प्रकर्त्तव्यं कांस्यपात्रं घृतान्वितम् ।।
गोधूमैः पूरयेत्पात्रं स्नाप्य देवं न्यसेत्ततः ।
वस्त्रयुग्मेन संच्छाद्य कार्य्यं चैव विलेपनम् ।।
अर्च्चयेदुदकुम्भस्थं पुष्पमालाभिवेष्टितम् ।
ततः पूजा प्रकर्त्तव्या सुगन्धैः कुसुमैः शुभैः ।।
नारायणाय पादौ तु जानुनी केशवाय च ।
ऊरुभ्यां माधवायेति गुह्यं कर्माधिपाय च ।।
गोविन्दाय कटिं पूज्य नाभिं माधवमूर्त्तये ।
उदरं विश्वरूपाय वक्षः कौस्तुभधारिणे ।।
वैकुण्ठाय नमः कण्ठं चक्षुषी ज्योतिरूपिणे ।
सहस्रशीर्षाय शिरः सर्वाङ्गं विश्वरूपिणे ।।
आयुधानि स्वनाम्नैव एवं देवार्चने विधिः ।
शुभ्रेण नालिकेरेण दद्यादर्घ्यं विधानतः ।।
शङ्खे कृत्वा तु पानीयं साक्षतं कुसुमान्वितम् ।
नारायण जगन्नाथ पीताम्बर जनार्द्दन ! ।।
मामुद्धर महाविष्णो नरकाब्धेः सनातन ! ।
सप्तकल्पगतं पापं यत्कृतं मम पूर्वजैः ।।
अनेनार्घ्यप्रदानेन सकलं तत् प्रणश्यतु ।
मुक्तिं प्रयान्ति पितरो मया सह जगत्पते ।।
मया दत्तार्घ्यदानेन ये चान्ये पितरो गताः ।
वसन्ति त्वत्समीपे तु देवदेव जनार्द्दन ! ।।
व्रतं सम्पूर्णतां यातु वञ्जुलीसम्भवं मम ।

दशमीसंयुतं देव यत्कृतं द्वादशीव्रतम् ।।
अज्ञानादथवा ज्ञानात् परिपूर्णं तदस्तु मे ।
अनेन विधिना सम्यग्दत्वार्घ्यं मधुसूदने ।।
वसेत् कल्पसहस्रं तु विष्णुलोके महीश्वर ! ।
अग्निष्टोमसहस्रेभ्यो अश्वमेधो विशिष्यते ।।
अश्वमेधसहस्रेभ्यो वाजपेयो विशिष्यते ।
वाजपेयसहस्रेभ्यः पुण्डरीको विशिष्यते ।।
पुण्डरीकसहस्रेभ्यः सौत्रामणिर्विशिष्यते ।
सौत्रामणिसहस्रेभ्यो राजसूयो विशिष्यते ।।
राजसूयसहस्रेभ्यो वञ्जुली वाऽधिका नृप ! ।
वञ्जुलीनिःकृतोच्चारैः कलिकाले तु मानवैः ।।
जन्मायुतसहस्रे तु कृतः पापस्य सङ्क्षयः ।
दत्वा पूर्वार्घ्यदानं तु धूपनैवेद्यदीपकम् ।।
कृत्वा नीराजनं विष्णोर्गुरुं सम्पूजयेत्ततः ।
दद्याद्वस्त्राणि गा भूमिं धनं चैव सुदक्षिणाः ।।
कुर्याद्वित्तानुसारेण सम्पूर्णार्थं व्रतस्य हि ।
सन्तुष्टे तु गुरौ विष्णुः प्रीतो भवति नान्यथा ।।
गुरौ सम्पूजयेत्तस्मात्तुष्टयर्थं चक्रपाणिनः ।
रात्रौ तु जागरः कार्य्यः श्रोतव्या वैष्णवी कथा ।।
गीतानामसहस्रं तु पुराणं शुकभाषितम् ।
पठनीयं प्रयत्नेन हरेः सन्तोषकारणम् ।।
प्रत्येकं गोसहस्रस्य पठतां शृण्वतां फलम् ।
गीतं नृत्यं तु वादित्रं कारयेत् पुरतो हरेः ।।
दातव्यं गुरुवे सर्वं प्रभाते देवतादिकम् ।
क्षमापयित्वा देवेशं गुरुं चैव विशेषतः ।।

कृत्वा नैमित्तिकं सर्वं भोक्तव्यं बन्धुभिः सह ॥

स्कान्दे श्रीब्रह्मनारदसंवादे जागरणप्रसङ्गे—

अगम्यागमने पापमभक्ष्यस्यापि भक्षणे ।
पापं विलयमायाति कीर्त्तिते वञ्जुलीदिने ॥
यत्पापं भूमिहरणे देवस्वाहरणे तथा ।
मानकूटं तुलाकूटं स्वर्णस्तेयादिकं च यत् ॥
अज्ञानाद्यत् कृतं पापं ज्ञात्वा यत्पातकं कृतम् ।
पूर्वजन्मार्जितं पापमिह जन्मनि यत्कृतम् ॥
सर्वं विलयमभ्येति कृत्वैकं वञ्जुलीदिनम् ।
न भवेन्मानसी पीडा रोगाश्चात्यन्तदुःखदाः ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते सूतशौनकसंवादे—

वञ्जुलीवासरे विप्र ! सम्प्राप्ते गरुडध्वजः ।
स्वर्गस्थाद्वसुधामेत्य कुरुते च स्थितिं विशन् ॥
वञ्जुलीविमुखं विप्रमालोक्य रविनन्दनः ।
कुरुते संविदं साकं चित्रगुप्तेन हर्षितः ॥
अयमेष्यति मन्दात्मा विष्णुव्रतवहिष्कृतः ।
वशं ममेति तत्पुण्यं मार्जयाद्धा पुरा कृतम् ॥
शिरोर्त्तिर्नितरामेषा मां सदैव प्रबाधते ॥

किञ्च—

सर्वव्रतानां चरणं सर्वतीर्थाभिषेचनम् ।
सर्वदानप्रदानं च समं स्याद्वञ्जुलीव्रतम् ॥
तत्रान्नदानं विप्राय विधाय श्रद्धयान्वितः ।
प्राप्नोति पुरुषो विप्र ! कलुषः कृष्णसन्निधिम् ॥
लक्ष्मीं नारायणं देवं सौवर्णं तत्र पूजयेत् ।
यथाशक्त्यान्नदानं च दत्वा वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥

अधर्मतस्तथा कामाल्लोभाद्दम्भादपि द्विज!।
हन्ति त्रिपौरुषं पापं वञ्जुली पुरुषैः कृता ।।
स एष सर्वशास्त्रार्थः सर्वबुद्धिमतां मतम् ।
हितं सर्वसमीचीनं यद्वञ्जुल्यामुपोषणम् ।।
उपवासं यथाशक्त्या दानं ब्राह्मणपूजनम् ।
विधाय वञ्जुलीं चैव पुरुषो याति सद्गतिम् ।। इति ।।

अथ त्रिस्पृशामाहात्म्यं पाद्मे श्रीसनत्कुमार उवाच—

सर्वपापप्रशमनं महापापप्रणाशनम् ।
शृणु कृत्वावधानं तु त्रिस्पृशाख्यं महाव्रतम् ।।
कामदं सस्पृहाणां च निस्पृहाणां तु मोक्षदम् ।
त्रिस्पृशाख्यं व्रतं विष्णोः शृणुष्व गदतोऽनघ !।।
प्रत्यक्षमर्चितस्तेन कलिकाले तु केशवः ।
त्रिस्पृशाकीर्त्तनं नित्यं यः करोति महामुने !।।
न पुरश्चरणे चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् ।
त्रिस्पृशानाममात्रेण भवति नात्र संशयः ।।
नागमैर्न पुराणैश्च समस्तैस्तीर्थकोटिभिः ।
बहुभिर्व्रतसङ्घैश्च पूजितस्त्रिदशैरपि ।।
न मोक्षो भवति विप्र! त्रिस्पृशा न कृता यदि ।
मोक्षार्थं देवदेवेन सृष्टा दिवि तिथीश्वरी ।।
विषयैर्विप्रयुक्तानां ध्यानधारणवर्त्तिनाम् ।
कामभोगप्रसक्तानां त्रिस्पृशा मोक्षदायिनी ।।
शंकरस्य पुरा प्रोक्ता चतुर्वक्त्रस्य सागरे ।
क्षीरोदेभयतोग्रे ? नु मत्समीपे तु चक्रिणा ।।
त्रिस्पृशां ये करिष्यन्ति विषयैरपि निर्जिताः ।।
तेषामपि मया दत्तं मोक्षं सांख्यविवर्जितम् ।।

कुरुष्व त्वं मुनिश्रेष्ठ ! त्रिस्पृशां मोक्षदायिकाम् ।
बहुभिर्मुनिसङ्घैस्तु त्यक्त्वा सांख्यं महामुने ! ॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रिस्पृशा तु भवेद्यदि ।
सोमेन सोमजेनापि पापकोटिविनाशिनी ॥
यस्यामुपोषणं कृत्वा हत्यामुक्तो महेश्वरः ।
हस्ताद्ब्रह्मकपालं तु तत्क्षणं पतितं मुने ! ॥
कलिकल्मषपापात्तु मुक्ता देवी त्रिमार्गगा ।
उपदेशान्माधवस्य त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥
हत्याष्टाबाहुवीर्यस्य पूर्वजाता महामुने ।
गता भृगूपदेशेन त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥
मरणेन प्रयागे तु मुक्तिः काश्यां तथैव च ।
स्नानमात्रेण गोमत्यां मुक्तिर्भवति नान्यथा ॥
गृहेपि मुक्तिर्भवति त्रिस्पृशासमुपोषणात् ।
विलयं यान्ति विप्रेन्द्र ! पापान्यन्यानि का कथा ॥
न प्रयागे न काश्यां तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ ।
मोक्षो भवति विप्रेन्द्र ! त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥
विषये वर्त्तमानस्य कामभोगान्वितस्य च ।
निवृत्तविषयस्यापि मुक्तिः सांख्ये न दुर्लभा ॥
तस्मात्कुरुष्व विप्रेन्द्र ! त्रिस्पृशां मोक्षदायिनीम् ॥

वेदव्यास उवाच—

कीदृशौ स्यान्मुनिश्रेष्ठ! त्रिस्पृशा द्वादशी वद ।
विमुक्तिदा चाप्यज्ञानां त्वया प्रोक्ता ममाधुना ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच—

जाह्नव्या पुरतो विप्र ! त्रिस्पृशा माधवेन तु ।
प्राचीसरस्वतीतीरे कथिता सुमहाफला ॥

श्रीगङ्गोवाच—

कलिकल्मषपापौघैर्ब्रह्महत्यादिकैर्युताः ।
कलिकाले हृषीकेश ! स्नानं कुर्वन्ति मज्जले ॥
मेषां पापशतैर्दग्धं मद्देहं कलुषीकृतम् ।
कथं यास्यति मे देव! पातकं गरुडध्वज ! ॥

श्रीप्राचीमाधव उवाच—

कथयामि न सन्देहो मा पुत्रि ! रोदनं कुरु ।
श्रीस्थानं नाम मे स्थानं तत्राहं नास्ति संशयः ॥
तीर्थकोटिशतैर्युक्तः पुरैः सह वसाम्यहम् ।
तत्र नश्यन्ति पापानि यत्र प्राची सरस्वती ॥
विशेषेण ममाग्रे तु कलिकाले विशेषतः ॥

जाह्नव्युवाच-

नाहं शक्नोमि देवेश । आगन्तुं नित्यमेव हि ।
कथं नश्यन्ति पापानि कथयस्वेह माधव ! ॥

श्रीप्राचीमाधव उवाच—

सरस्वत्याधिका या च तीर्थकोटिशताधिका ।
मखकोटयधिका चापि ब्रह्मदानाधिका च या ॥
जपतपोधिका नित्यं चतुर्युगफलप्रदा ।
सांख्ययोगाधिका या च त्रिस्पृशा कुरुतां शुभे ! ॥
यस्मिन्मासे समायाति सिता वाप्यसिताऽथ वा ।
कर्त्तव्या सा सरिच्छ्रेष्ठे ! तव पापं हरिष्यति ॥

मन्दाकिन्युवाच—

कीदृशी त्रिस्पृशा देव ! त्वं ममाचक्ष्व माधव ! ।
ईदृशो महिमा यस्यास्त्वया प्रोक्तो ममाधुना ॥
दशम्येकादशी भद्रा दिनैकस्मिन्यदा भवेत् ।

त्रिस्पृशा सा भवेद्देव ! न वेद्मि वद मे प्रभो ! ।।

श्रीप्राचीमाधव उवाच—

आसुरी त्रिस्पृशा देवि ! या त्वया परिकीर्त्तिता ।
वर्ज्जनीया प्रयत्नेन वित्तहीनो यथा पतिः ।।
असुराणां राक्षसानामायुर्बलविवर्धिनी ।
वर्जनीया प्रयत्नेन यथा नारी रजस्वला ।।
यथा रजस्वलासङ्गः सत्याश्मो(म)र्वजितः सदा ।
तथा दशमीसंयुक्तं मद्दिनं वैष्णवैर्नरैः ।।
हत्यायुतशतं हन्ति मत्प्रसादेन मुच्यते ।
मत्प्रसादाद्विहीनानां त्रिस्पृशा याति जाह्नवि ! ।।
एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमीसंयुता न हि ।।
भुक्तं हालाहलं तेन स्वविष्ठाभक्षणं कृतम् ।
दशमीमिश्रितं येन कृतमेकादशीव्रतम् ।।
ज्ञात्वा ह वै न कर्त्तव्यं मद्दिनं दशमीयुतम् ।
जन्मकोटिकृतं पुण्यसन्तानं याति संक्षयम् ।।
पक्षवृद्धौ विशेषेण सन्देहे समुपस्थिते ।
ममाज्ञया प्रकर्त्तव्या द्वादशी वल्लभा सदा ।।
ममाज्ञया प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं मत्परायणैः ।
मद्दिनं तद्विजानीयाद्दशमीवेधवर्जितम् ।।

वेदव्यास उवाच—

विधानं ब्रूहि मे ब्रह्मन्मुने येन करोम्यहम् ।

श्रीसनत्कुमार उवाच—

दामोदारो हिरण्मयः कार्यो विभवसारतः ।
पात्रं ताम्रमयं रौप्यं तण्डुलैः परिपूरितम् ।।

सजलं तु घटं शुद्धं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
वेष्टितं पुष्पमालाभिः कर्पूरागुरुवासितम् ।।
न्यसेत्ताम्रमये देवं स्नापयित्वा विलेपितम् ।
परिधानं ततः कार्यं वस्त्रयुग्मसमन्वितम् ।।
मन्त्रैस्तु पूजनं कार्यं समुदीरितैः ।
पुष्पैः कालोद्भवैः शुभ्रैस्तुलसीदलकोमलैः ।।
छत्रं तु वैष्णवं दद्यात्पादुकाम्बरसंयुतैः ।
नैवेद्यानि विचित्राणि फलानि सुबहून्यपि ।।
उपवीतं तु दातव्यं सोत्तरीयं नवं दृढम् ।
वैष्णवं दापयेद्वेणुं सुरूपं सुव्रतं शुभम् ।।
दामोदराय पादौ तु जानुनी माधवाय तु ।
गुह्यं तु कामपतये कटिं वामनरूपिणे ।।
पद्मनाभाय नाभिं तु उदरं विश्वरूपिणे ।
हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठं श्रीकण्ठसंज्ञके ।।
सहस्रबाहवे बाहू चक्षुषी योगनामके ।
ललाटमुरुगायेति सहस्रशिरसे नमः ।।
स्वनाम्ना आयुधादीनि सर्वाङ्गं चारुरूपिणे ।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या अर्घ्यं दद्याद्विधानतः ।।
शुभ्रेण नालिकेरेण शंखोपरिस्थितेन हि ।
सूत्रेण वेष्टितेनैवोभाभ्यां वापि संस्थितः ।।
स्मृतो हरसि पापानि सत्यं यदि जनार्दन ! !
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च मनसा दुर्विचिन्तितम् ।।
नारकं च भयं देव! भयं दुर्गतिसम्भवम् ।
भयमन्यन्महादेव! ऐहिकं पारलौकिकम् ।।
सर्वं नाशय मे विष्णो! गृहाणार्घ्यं जनार्दन ! ।

सदा भक्तिर्ममैवास्तु दामोदर ! तवोपरि ॥
धूपं दीपं तु नैवेद्यं कुर्यान्नीराजनं ततः।
शीर्षोपरि मुनिश्रेष्ठ ! भ्रामयेच्च जलं हरेः ॥
कुर्याद्विधानमेतद्धि पूजयेत गुरुं ततः।
दद्याद्वस्त्राणि शुभ्राणि गन्धमाल्यादिनार्चयेत् ॥
उपानहौ च वस्त्रं च मुद्रिकां च कमण्डलुम्।
भोजनं चैव ताम्बूलं सप्तधान्यं च दक्षिणाम् ॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुर्याज्जागरणं हरेः।
गीतनृत्यसमायुक्तं तथा वस्त्रसमन्वितम् ॥
निशान्ते देवदेवाय दत्वा चार्घ्यं विधानतः।
स्नानादिकीं क्रियां कृत्वा भुञ्जीत वैष्णवैः सह ॥

अथ पक्षवर्द्धिनीमाहात्म्यं पाद्मे—

अमा वा यदि वा पूर्णा संपूर्णा जायते यदा।
भूत्वा तु षष्ठिघटिका दृश्यते प्रतिपद्दिने ॥
अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी।
पूजाविधिं तु विप्रेन्द्र ! श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्।
मन्त्रैः सम्पूजितो विष्णुरर्घदानेन तुष्यति।

ब्रह्मोवाच—

शृणुष्वैकमना विप्र ! पूजाकल्पं सुविस्तरम् ॥
यैर्मन्त्रैः पूजितो विष्णुरर्घदानेन तुष्यति।
जलपूर्णं नवं कुम्भं चन्दनेनैव चर्चितम् ॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पुष्पमालाभिवेष्टितम्।
स्थाप्यं ताम्रमयं पात्रं सगोधूमं घटोपरि ॥
सौवर्णं कारयेद्देवमाससंज्ञाविधानकम्।
पञ्चामृतेन स्नपनं कर्त्तव्यं माधवस्य च ॥

विलेपनं तु कर्त्तव्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।
वस्त्रयुग्मं तु दातव्यं छत्रोपानत्समन्वितम् ।।
पूजयेद्देवतामीशं कुम्भपात्रोपरि स्थितम् ।
पद्मनाभाय पादौ तु जानुनी योगमूर्त्तये ।।
उरुयुग्मं नृसिंहाय कटिं ज्ञानप्रदाय च ।
उदरं विश्वनाथाय हृदयं श्रीधराय च ।।
कण्ठं कौस्तुभकण्ठाय बाहू क्षत्रान्तकाय च ।
ललाटं व्योममूर्त्तये शिरो वै सर्वरूपिणे ।।
स्वनाम्ना चैव शस्त्राणि सर्वाङ्गं दिव्यरूपिणे ।
एवं सम्पूज्य विधिवत्ततोऽर्घ्यं सम्प्रदापयेत् ।।
नारिकेलेण शुभ्रेण देवदेवस्य चक्रिणः ।।

पूजामन्त्रः—

संसारार्णवतारण पापकक्षमहानल ! ।
नरकाग्निप्रशमन जन्ममृत्युजरापह ! ।।
मामुद्धर जगन्नाथ ! पतितं भवसागरात् ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं पद्मनाभ ! नमोऽस्तु ते ।।
नैवेद्यानि प्रदेयानि घृतपक्वानि चक्रिणे ।
फलानि सुमनोज्ञानि स्वादूनि रसवन्ति च ।।
सागुरुं च सकर्पूरं दद्याद्धूपं च माधवे ।
सधूपं सुगुग्गुलुं वा दद्याद्वित्तानुसारतः ।।
ताम्बूलं तु सकर्पूरं दद्याद्देवस्य भक्तितः ।
घृतेन दीपकं दद्यात्तिलतैलेन वा पुनः ।।
कृत्वा सम्यग्विधानेन गुरोः पूजां तु कारयेत् ।
वस्त्राणि चैव चोष्णीषं कंचुकन्तु प्रदापयेत् ।।
भोजनं चैव ताम्बूलं दत्वा चार्घ्यं प्रदापयेत् ।

स्ववित्तैर्वित्तमानेन यथाशक्त्या तु निर्धनैः ।।
कार्या सम्यक्प्रयत्नेन द्वादशी पक्षवर्द्धिनी ।
ततो जागरणं कुर्याद्गीतनृत्यसमन्वितम् ।।
पुराणपाठसहितं हास्यहार्द्दसमन्वितम् ।
स्तुवति न प्रशंसन्ति ये नरा जागरं हरेः ।।
नोत्सवो विभवे तेषां गृहे जन्मानि सप्त च ।
स्तुवन्ति सम्प्रशंसन्ति जागरं चक्रपाणिनः ।।
नित्योत्सवो भवेत्तेषां जन्मानि दश पञ्च च ।। इति ।।

अथ जयामाहात्म्यं कुमाराः—

द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।
तस्यां सम्पूजितः कृष्णः प्रीतो भवति सर्वथा ।।

ब्रह्मपुराणे—

द्वादश्यां तु सिते पक्षे ऋक्षं यदि पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।

इति लक्षणमभिधाय व्रताकांक्षायामतिदिशति—

जयाव्रतमनुष्ठेयं यथैवोन्मीलनीव्रतम् ।। इति ।।

अथ विजयामाहात्म्यं वाराहे—

द्वादश्यां तु सिते पक्षे यत्रर्क्षं श्रवणं भवेत् ।
नाम्ना तु विजया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।
तस्यां जगत्पतिर्देवः सर्वदेवेश्वरो हरिः ।
प्रत्यक्षतां प्रयात्यत्र तत्रानन्तफलं स्मृतम् ।।

विष्णुधर्मोत्तरे—

यदा तु शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत् ।
तदा सा तु महापुण्या द्वादशी विजया स्मृता ।।

तस्यां स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ।
सम्पूज्य वर्षपूजायाः सकलं फलमश्नुते ।।
एकजपात्सहस्रस्य सप्तस्याप्नोति वै फलम् ।
दानं सहस्रगुणितं तथा वै विप्रभोजनम् ।।
होमस्तत्रोपवासश्च सहस्रगुणितो भवेत् ।

ब्रह्मपुराणे विशेषोक्तिः—

नद्यादिसङ्गमे कार्यं वैष्णवैर्विजयाव्रतम् ।
नद्यादिसङ्गमालाभे सङ्गमं परिकल्पयेत् ।। इति ।।

तत्र विधिविशेषः भविष्योत्तरात्संक्षिप्योच्यते—

सौवर्णं शार्ङ्गबाणधरं हरिं सम्पाद्य श्रीमद्गुरुं प्रणम्य सङ्कल्पं कुर्यात्—

द्वादश्यां तु निराहारः स्थित्वाऽहमपरेऽहनि ।
भोक्ष्ये त्रिविक्रमानन्त ! शरणं मे भवाच्युत ! ।।

इति सङ्कल्पमन्त्रः ।

पूर्ववत्कलशं सोपवीतं संस्थाप्य तस्योपरि ताम्रमये वा पात्रे हरिं संस्थाप्य संस्नाप्य सम्पूज्य निबिडैश्चन्दनैरालिप्य वसनं छत्रं पादुके निवेद्य अवयवपूजां कुर्यात् । **तथाहि**—श्रीवासुदेवाय नम इति शिरः संपूजयेत् श्रीश्रीधरायनम इति मुखम् श्रीकृष्णाय नम इति कण्ठम् श्रीश्रीपतये नमः इति वक्षः शस्त्रास्त्रभृते नम इति बाहू व्यापकाय नम इति वक्षः कवीश्वराय नम इत्युदरम् त्रैलोक्यजननाय नम इति मेढ्रम् सर्वाधिपतये नम इति जघने सर्वात्मने नम इति पादौ पूजयेत् । तदनन्तरमर्घं दद्यात्—

शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गरवविभूषित ! ।
गृहाणार्घं मया दत्तं शार्ङ्गपाणे ! नमोस्तु ते ।।

इत्यर्घमन्त्रः ।

ततो धूपदीपनैवेद्यताम्बूलादीनि निवेदयेत् । रात्रौ जागरणं कृत्वा पारणादिने पुनः सम्पूज्य प्रणम्य श्रीगुरुं निवेदयेत् । अस्य व्रतस्य भाद्रे मासि बुधवारेऽत्यन्तं माहात्म्यम् ।।

अथ जयन्तीमाहात्म्यं श्रीनारदः—

यया च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयन्ती नाम सा ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः ।।
तत्र चाराधितो विष्णुरात्मानं स्वपराजितम् ।
मन्यते देवदेवेशः सद्धर्मरसवित्तमः ।।

स्कान्दे—

सर्वपापप्रशमनं सर्वपुण्यफलप्रदम् ।
द्वादश्यां रोहिणीयोगे जयन्त्यां तु यदा व्रतम् ।।

स्कन्दात्संक्षिप्य विधिरुच्यते—

उपोषितश्च मध्याह्ने स्नायात्कृष्णतिलैस्ततः ।
कृत्वा मूर्ध्नि फलं धात्र्या महापुण्यविवृद्धये ।।

इत्येवं विधिवत् स्नानं कृत्वा श्रीगुरुं प्रणम्य सङ्कल्पं कुर्यात्—

जयन्त्यां तु निराहारः श्वोभूते परमेश्वर ! ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष ! शरणं चरणौ तव ! ।।

इति **सङ्कल्पमन्त्रः** । पूर्ववत्कुम्भं स्थापयेत् । तदुपरि मतिलं ताम्रपात्रं स्थापयेत् तदुपरि श्रीदेवकीसन्मुखं श्रीदेवकीमुखमवलोकयन्तं सौवर्णं हरिं संस्थाप्यावाहयेत्—

एहि एहि जगन्नाथ वैकुण्ठपुरुषोत्तम ! ।
परिवारगणोपेत ! लक्ष्म्या सह जगत्पते ।।

इत्यावाहनमन्त्रः ।

तदनन्तरं सम्यक् सम्पूजयेत् । अर्घ्यं दद्यात्—

अवतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन ! ।

न ते संख्याऽवताराणां कश्चिज्जानाति वै भुवि ।।
देवा ब्रह्मादयो वापि स्वरूपं न विदुस्तव ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्सङ्गसंस्थितम् ।।
वाञ्छितं कुरु मे देव दुष्कृतं चैव नाशय ।
कुरुष्व मे दयां देव ! संसारार्त्तिभयापह ! ।। इति ।।

पूजामन्त्रः—

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ।
देवतानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।।
कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे ! ।।

इति अर्घ्यमन्त्रः ।

ततो धूपदीपनैवेद्यादीन् समर्प्य जागरणं कृत्वा पारणादिने संपूज्याचार्याय समर्पयेत् ।।

अथ पापनाशिनीमाहात्म्यं ब्रह्मपुराणे—

यदा तु शुक्लाद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ।।
सगरेण कपित्थेन धुन्धुमारेण गाधिना ।
तस्यामाराधितः कृष्णो दत्तवानखिलां भुवम् ।।
वाचिकान्मानसान्न्यायान्कायिकांश्च विशेषतः ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।
इमामेकामुपोष्यैव पुष्यनक्षत्रसंयुताम् ।
एकादशीसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।।

तद्व्रतविधिविशेषः ब्रह्माण्डपुराणात्संक्षिप्योच्यते—

कृतस्नानः श्रीगुरुं प्रणम्य पूर्ववत्कुम्भमामलकीमूले संस्थापयेत् ।

द्वादश्यां तु निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ।

भोक्ष्यामि जामदग्नेश शरणं मे भवाच्युत ! ॥

इति सङ्कल्पमन्त्रः ।

कुम्भोपरि सजले ताम्रपात्रे हैमं श्रीपरशुरामं संस्थापयेत् तत्र तं संम्यक् सम्पूज्य **अङ्गपूजां कुर्यात्**-विशोकाय नम इति पादौ पूजयेत् विश्वरूपिणे नम इति जानुनी च हयग्रीवाय नम इति ऊरुणी दामोदराय नम इति कटिम् कन्दर्पाय नम इति गुह्यम् पद्ममालिने नम इति नाभिम् अनन्ताय नम इति जठरम् श्रीकण्ठाय नम इति गलम् हैमाङ्गदाय नम इति बाहू बैकुण्ठाय नम इति मस्तकम् ज्योतिरूपाय नम इति नेत्रे शोकनाशिने नम इति नासाग्रम् वामनाय नम इति ललाटम् रामाय नम इति भ्रुवौ सर्वात्मने नम इति सर्वाङ्गं पूजयेत् । अर्घ्यधूपदीपनैवेद्यादीन् समर्पयेत् ।

अर्घ्यमन्त्रः—

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य ! नमोस्तु ते ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तमामलक्या सहितो हरे ! ॥

प्रार्थनामन्त्रः—

जामदग्न्य ! नमस्तेऽस्तु क्षत्रियान्तकराव्यय ! ।
सर्वाणि यानि पापानि सप्तजन्मकृतान्यपि ॥
क्षयं यान्तु ममैवाद्य त्वत्प्रसादाच्च भार्गव ! ।
वाचिकं मानसं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा ॥
आयुर्यशस्तथारोग्यं धनं धान्यं च सम्पदः ।
सौभाग्यं तव भक्तस्य सन्तानं विपुलं भवेत् ॥
सर्वान्कामानवाप्नुवानि दिव्यं सौख्यं निरन्तरम् ॥
अन्तेऽप्यस्तु ममेशान ! भक्तिस्त्वच्चरणे प्रभो ! ॥
जनार्द्दन हृषीकेश लक्ष्मीनाथ सुरार्चित ! ।
रामराम महाबाहो कार्त्तवीर्य्यविनाशन ! ॥

एतत्सर्वं मया दत्तं ज्ञानं ज्ञेयं तवाच्युत ! ।
मामुद्धर जगन्नाथ ! दयां कृत्वा ममोपरि ।।

अथ धात्रीपूजा—

पिता पितामहाश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः ।
वृक्षयोनिगता ये च ये च कीटत्वमागताः ।।
रौरवे नरके ये च महारौरवसंज्ञके ।
वियोनिं च गता ये च ये च ब्रह्माण्डमध्यगाः ।
पिशाचत्वं गता ये च ये च प्रेतत्वमागताः ।।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलं सदा पयः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु धात्रीमूलनिषेचनात् ।।

इति धात्रीं चाभिषिञ्च्य तामष्टोत्तरशतवारं प्रदक्षिणीकृत्य पूर्ववत् जागरणं कृत्वा पारणादिने भगवन्तं सम्पूज्याचार्याय समर्पयेत् । यथाशक्ति वैष्णवान् भोजयित्वा भोजनं कुर्यात् । इदं व्रतं फाल्गुनेऽत्यन्त (१) श्रेष्ठम् ।।

इत्यष्टमहाद्वादशीनिर्णयः ।।

अथ दशमीप्रभृतितिथिविषयकहेयोपादेयविचारः—

य एवं मुनिशार्दूल ! शोधयित्वा दिनत्रयम् ।
करोति कारयित्वा स जानीहि सोऽच्युतः स्वयम् ।।
इति स्कान्दोक्तेः ।।

तिथित्रयशोधनस्यावश्यकत्वात् दशम्यां नवमीवेधेप्येकादशी त्याज्या

तच्चोक्तं पाद्मे—

नवमी दृश्यते चापि दशमी च न दृश्यते ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ।। इति ।।

इत्येवाभिप्रेत्य श्रीमन्नारदपञ्चरात्रेप्युक्तं—

(१) अत एव फाल्गुनकृत्ये विधिविस्तरो द्रष्टव्यः ।

दशमीदूषिते शुद्धं सम्पूर्णं देहदूषणम्
तस्माच्छुद्धा समाराध्या देहशुद्धिविधायिनी ।। इति ।।

तत्र दशमीकृत्यमुच्यते—

कांस्यं मांस्यं मसूरं च क्षौद्रं चानृतभाषणम् ।
पुनर्भोजनमायासं दशम्यां परिवर्जयेत् ।।

इति स्कान्दे ।

तत्र श्रीनारदः—

कांस्यं मांसं मसूरं च पुनर्भोजनमैथुनम् ।
द्यूतमत्यम्बुपानं च दशम्यां सप्त वर्जयेत् ।। इति ।।

तथा मात्स्ये—

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम् ।
व्यायामं च प्रवासं च दिवास्वापं च मैथुनम् ।।
शिलापिष्टं मसूरं च द्वादशैतानि सन्त्यजेत् ।
दशम्यामेकभक्तं च कुर्वन्ति विजितेन्द्रियाः ।। इति ।।

तथा नारदीये रुक्माङ्गदः—

अष्टवर्षाधिको बालो ह्यशीति नहि पूर्य्यते ।
यो भुंक्ते मामके राष्ट्रे दण्ड्योऽसौ दस्युवद्भवेत् ।।
प्रातर्हरिदिनं लोकास्तिष्ठध्वं चैकभोजनाः ।
अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेवणाः ।।
अवनीतल्पशयनाः प्रियासङ्गविवर्जिताः ।
स्मरध्वं देवदेवेशं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।।
सकृद्भोजनयुक्ता वा दशम्यां च भविष्यथ ।। इति ।।

विष्णुधर्मादिषु—

कांस्यं माषान्मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ।
शाकं मधुपरान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् ।।

वैष्णवस्तु नरः पार्थ ! दशम्यां दश वर्जयेत् ।।

विष्णुरहस्ये—

स्मृत्यालोकनगन्धादिस्वादनं परिकीर्तनम् ।
अन्नस्य वर्जयेत्सर्वं ग्रासानां चाभिकाङ्क्षणम् ।।
गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् ।
व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम् ।।

कौर्मे—

कांस्यं मांसं मसूरं च चणकान् कोरदूषकान् ।
शाकं मधुपरान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम् ।।

स्मृतौ—

दशम्यामेकभक्तं तु कुर्वीत नियतेन्द्रियः ।
आचम्य दन्तकाष्ठं तु खादयेत्तदनन्तरम् ।।

एकभक्तलक्षणं तु—

दिनार्द्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् ।
एकभक्तमिति प्रोक्तं कर्त्तव्यं तत्प्रयत्नतः ।। इति ।।

क्षारगणः स्मृतौ—

तिलमुद्गादृते शिल्पं शस्यं गोधूमकोद्रवाः ।
चणकं देवधान्यं च एष क्षारगणः स्मृतः ।। इति ।।

हविष्यान्नं पाद्मे—

हैमन्तिकं शिता शून्यं धान्यं मुद्गास्तिला यवाः ।
कलापकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ।।
प्राष्टिका कालशाकं च मूलकं क्रमुकेतरत् ।
कन्दं सैन्धवसामुद्रे लवणं दधिसर्पिषी ।।
पयोऽम्बुघृतसारं च पनसाम्रहरीतकी ।
पिप्पली जीरकं चैव नागरंगकचिञ्जिणी ।।

कदली लवली धातृफलान्यगुड़मैक्षवम् ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ।। इति ।।

किञ्च—

गृह्णीयान्नियमं पूर्वं दन्तधावनपूर्वकम् ।
नियमात्फलमाप्नोति न श्रेयो नियमं विना ।।

इति स्कान्दोक्तेः नियमस्यावश्यकत्वान्नियमविधिरुच्यते । तद्वाक्येन—

आदौ गुरुगृहे गत्वा पश्चान्नियममाचरन् ।
स्वशिरः पादयोः कृत्वा पादौ स्पृष्ट्वा च मौलिना ।।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा श्रीगुरुं प्रार्थयेत्ततः ।
नियमं देहि भो ! स्वामिन्नेकादश्यां मम प्रभो ! ।।
इति गुरूक्तमन्त्रेण स्वीकुर्यान्नियमं सुधीः ।।

इति सङ्कल्पमन्त्रः—

दशमीदिनमारभ्य करिष्येऽहं व्रतं तव ।
त्रिदिनं देवदेवेश ! निर्विघ्नं कुरु केशव ! ।। इति ।।

अथैकादशीकृत्यमुच्यते ।।

उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम् ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो हन्ति सप्तकुलानि वै ।

इति स्कान्दे निषेधवाक्यं—

अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने ।
पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखः सदैव हि ।।

इति स्मृतौ विधि वाक्यं च--तद्द्वयमप्यवैष्णवविषयम् । वैष्णवविषये तु काष्ठेन दन्तधावनस्य नित्यत्वात्तदकृते भगवत्पूजनानधिकाराच्च । तच्चोक्तं वाराहे श्रीहरिणा--

दन्तकाष्ठमखादित्वा यो मां समुपसर्पति ।

सर्वकालकृतं कर्म तेनैकेन च नश्यति ।। इति ।।

तथा व्यासः—

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् ।
उपवासे न दूष्येत दन्तधावनमार्जनम् ।। इति ।।
रात्रौ शयेत्ततः पश्चात् प्रातः स्नायात्समाहितः ।
उपवासं तु सङ्कल्प्य मन्त्रपूजं जलं पिवेत् ।।

इति स्कान्दोक्तचा साधारणक्रमो दर्शितः । विशेषतः श्रीकृष्णार्चकस्य क्रमं दर्शयति **श्रीमार्कण्डेये**—

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिजप्तेनाभिमन्त्रितम् ।
उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्तोयं समाहितः ।।
कृष्णार्चनं ततः कृत्वा पुष्पाञ्जलिमथापि वा ।
सङ्कल्पमन्त्रमुच्चार्य देवाय विनिवेदयेत् ।।

सङ्कल्पमन्त्रः—

एकादश्यां निराहारो भोक्ष्येऽहं द्वादशीदिने ।
निवेदयामि देवेश ! निर्विघ्नं कुरु केशव ! ।।इति

विद्धैकादश्यां तु दशमीकृत्यं सङ्कल्प्य पूजनादिकं कुर्यान्न त्वेकादशीकृत्यं-तस्मिन्निषेधश्रवणात् । **तच्चोक्तं श्रीमच्चतुःसनेन**—

दशम्याः सङ्गदोषेण चार्द्धरात्रात्परेण तु ।
वर्जयेच्चतुरो यामान् सङ्कल्पार्चनयोः सदा ।। इति ।।

तथा नारदीये श्रीनारदेन—

पूर्वायाः सङ्गदोषेणैकादश्याः स्नानपूजने ।
वर्जयन्ति निशः पूर्वान् यामांश्च चतुरो द्विजाः ।।
तदूर्ध्वं स्नानपूजादि कर्त्तव्यं तदुपोषितैः ।। इति ।।

स्नानकरणविधिस्तु देवलेन दर्शितः—

गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयाद्यदा सङ्कल्पयेद्बुधः ।। इति ।।

उपवासस्वरूपमाह ब्रह्मवसिष्ठकात्यायनविष्णुधर्मोत्तरेषु—

उपावृतस्य पापेभ्यो यस्य वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयो नोपवासस्तु लङ्घनात् ।। इति ।।

वर्जनीयानि च तत्रैव—

विहितस्याननुष्ठानमिन्द्रियाणामनिग्रहः ।
निषिद्धसेवनं नित्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ।। इति ।।

गुणास्तु विष्णुधर्मोत्तरे--

तज्जाप्यं तज्जपध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम् ।
तदर्चनं च तन्नामकीर्त्तनश्रवणादयः ।।
उपवासकृता ह्येते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः ।।
उपवासी हरिं यस्तु भक्त्या ध्यायति मानवः ।।
तज्जप्यजापी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः ।
निष्कामो दैत्यवद्ब्रह्मपदमाप्नोत्यसंशयः ।। इति ।।

व्रतदूषकानि कुमारा आहुः--

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलभक्षणात् ।
उपवासो विदूष्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ।। इति ।।

तथा देवलः--

ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमामिषवर्जनम् ।
व्रते चैतानि चत्वारि चरितव्यानि नित्यशः ।।

अथादूषकानि व्यासः--

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् ।
उपवासे न दूष्येत दन्तधावनमञ्जनम् ।। इति ।।

महाभारते च--

अष्टौ तानि व्रतघ्नानि नापो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ।।

तत्र रात्रौ जागरणं कुर्यात् तच्चोक्तं ब्रह्माण्डे—

एकादश्यां जनो विष्णो रात्रौ पूजां स्वभक्तितः ।
कुर्याज्जागरणं विष्णोः पुरतो वैष्णवैः सह ।। इति ।।

जागरणलक्षणं तु स्कान्दे--

शृणु नारद ! वक्ष्यामि जागरस्य हि लक्षणम् ।
येन विज्ञानमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः ।।
गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा ।
धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ।।
फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम् ।
सत्त्वान्वितं विनिद्रं च मुदान्वितम् क्रियान्वितम् ।।
साश्चर्यं च सोत्साहं पापालस्यादिवर्जितम् ।
प्रदक्षिणासुसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ।।
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा ।
यामे यामे महाभाग ! कुर्यादारात्रिकं हरेः ।।
षड्त्रिंशद्गुणसंयुक्तमेकादश्यां तु जागरम् ।
यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि ।। इति ।।

तत्रैवान्वयमुखेन जागरणमाह—

स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति जागरं चक्रधारिणः ।
नित्योत्सवो भवेत्तेषां जन्मानि दश पञ्च च ।। इति ।।

ब्रह्माण्डे शिवः—

अलाभे वाचकस्याथ गीतं नृत्यं तु कारयेत् ।
वाचके सति देवेशि ! पुराणं प्रथमं पठेत् ।।

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयायुतस्य च ।
पुण्यं कोटिगुणं गौरि ! विष्णोर्जागरणे कृते ।।
पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च भामिनि ! ।
कुलान्युद्धरते देवि ! कृते जागरणे हरेः ।।
ब्राह्मं पदं मदीयं च सत्यं वै तस्य वैष्णवम् ।
यः प्रबोधयते लोकान् विष्णोर्जागरणे रतः ।।
मतिं प्रयच्छते यस्तु हरेर्जागरणं प्रति ।
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः ।।
यत्किञ्चित्क्रियते पापं सप्तजन्मनि मानवैः ।
कृष्णस्य जागरे सर्वं रात्रौ दह्यति पार्वति ! ।।
यावत्पदानि कुरुते केशवायतनं प्रति ।
अश्वमेधसमानि स्युर्जागरार्थं प्रपद्यतः ।।
पादयोः पतितं यावद्धरण्याः पांशु गच्छताम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि जागरी वसते दिवि ।।
तस्माद्गृहात्प्रगन्तव्यं जागरे माधवस्य तु ।
गवां कोटिसहस्राणि स्वर्णमेरुशतानि च ।।
दत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं जागरे हरेः ।। इति ।।

ब्राह्मे शिवः—

द्वादश्यां जागरे विष्णोर्यैः कृतं पुष्पमण्डपम् ।
प्रतिपुष्पं फलं तेषां स्वकीयं यच्छते पदम् ।।
दीपदानं च कुर्वन्ति जागरे केशवस्य हि ।
ते ध्वस्ततिमिरं गौरि ! यान्ति विष्णोः परं पदम् ।।
अप्रेरितः स्वयं भक्त्या गीतं नृत्यं करोति यः ।
जागरे पद्मनाभस्य प्रेरिताद्द्विगुणं फलम् ।।
कुर्वन्ति मुनयो नित्यमृषयो देवतादयः ।

जागरं पद्मनाभस्य किन्न कुर्वन्ति मानवाः ।।
यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा कृत्वा वै करताडनम् ।
गीतं कुर्वन्मुखेनापि दर्शयन्कौतुकान्बहून् ।।
पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ जागरणे स्थितः ।
दर्शयन्विविधान्नृत्यान् स्वेच्छालापान्करोति वै ।।
भावैस्तैस्तैर्नरो यस्तु कुरुते जागरं हरेः ।
निमिषे निमिषे पुण्यं तीर्थकोटिसमं स्मृतम् ।। इत्यादि ।।

प्रह्लादसंहितायां—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
कृष्णजागरणे तानि विलयं यान्ति खण्डशः ।।
एकतः क्रतवः सर्वे समाप्ता वरदक्षिणाः ।
एकतो देवदेवस्य जागरः कृष्णवल्लभः ।।
न समं कवयः प्राहुरधिकः कृष्णजागरः ।
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्राद्या देवतागणाः ।।
नित्यमेव समायान्ति जागरे कृष्णवल्लभे ।
ऋषयो नारदाद्यास्तु व्यासाद्या मुनयस्तथा ।।
अहं च तत्र गच्छामि कृष्णपूजारतः सदा ।
तत्र काशी पुष्करं च प्रयागो नैमिषं गया ।।
शालग्राममहाक्षेत्रमर्बुदारण्यमेव च ।
शूकरं मथुरा तत्र सर्वतीर्थानि चैव हि ।।
यज्ञा वेदाश्च चत्वारो व्रजन्ति हरिजागरम् ।
गङ्गा सरस्वती रेवा यमुना वै शतद्रुका ।।
चन्द्रभागा वितस्ता च नद्यः सर्वास्तु तत्र वै ।
सरांसि च ह्रदाः सर्वे समुद्राः सर एव हि ।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ! गच्छन्ते कृष्णजागरम् ।

स्पृहणीया हि देवानां ये नरा कृष्णजागरे ।।
नृत्यन्ति गीतं कुर्वन्ति वीणावाद्यप्रहर्षिताः ।। इति ।

स्कान्दे प्रह्लादसंहितायां च—

न गयापिण्डदानेन न तीर्थैर्बहुभिर्मखैः ।
पूर्वजा मुक्तिमायान्ति विना द्वादशिजागरम् ।।
सर्वावस्थोऽपि यः कुर्य्याद्द्वादशीजागरं हरेः ।
यामेनैकेन दहते पापं जन्मसहस्रजम् ।।
यः कुर्य्याद्दीपदानं तु रात्रौ जागरणे हरेः ।
निमिषे निमिषे विप्र ! लभते गोशतं फलम् ।।
यः कुर्य्याज्जागरं पूजां द्वादश्यां कुसुमैर्हरेः ।
पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ।।
यो दहेच्चागुरुं विष्णोः पूजां कृत्वा तु जागरे ।
निमिषार्द्धेन लभते तिलपात्रशतं फलम् ।।
निमेषं च दहेद्धूपं सघृतं गुग्गुलुं हरेः ।
लभते जागरे विप्र ! पुण्यं माससमुद्भवम् ।।
यो दद्याज्जागरे विष्णोर्हविष्यान्नसमुद्भवम् ।
नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम् ।।
पक्वान्नानि च यो दद्यात् फलानि विविधानि च ।
जागरे पद्मनाभस्य लभते गोऽयुतं फलम् ।।
कर्पूरं चैव ताम्बूलं यो ददाति हि जागरे ।
पद्मनाभप्रसादेन श्वेतद्वीपे वसेच्चिरम् ।।
जागरे पद्मनाभस्य यः कुर्य्यात्पुष्पमण्डपम् ।
सपुष्पकविमानैस्तु क्रीडते ब्रह्मसद्मनि ।।
जागरे पद्मनाभस्य सकर्पूरं तथाऽगुरु ।
दहते दहते पापं जन्मलक्षसमुद्भवम् ।।

स्नानं ददाति कृष्णस्य दधिक्षीरघृतादिभिः ।
रात्रौ जागरणे विप्र ! मुक्तिभागी भवेद्धि सः ।।
दिव्याम्बराणि यो दद्याज्जागरे समुपस्थिते ।
मन्वन्तराणि वसते तन्तुसङ्ख्यासमानि वै ।।
दद्यादाभरणं विष्णोर्हेमजं रत्नसम्भवम् ।
सप्तकल्पानि वसते सोत्सङ्गे मत्प्रियो हि सः ।।
श्रीचन्दनं सकर्पूरं सागुरुं तु सकेसरम् ।
युक्तं मृगमदेनापि यच्छते हरिजागरे ।।
एकैकं मुनिशार्दूल ! अश्वमेधाधिकं फलम् ।
कलौ भवेन्न सन्देहो वासुदेवप्रसादतः ।।
घृतेन दीपकं विष्णोर्गव्येन च विशेषतः ।
ज्वालयेज्जागरे रात्रौ निमिषे गोऽयुतं फलम् ।।
जागरे वासुदेवस्य कर्पूरेण च दीपकम् ।
यो ज्वालयति कोटीनां कपिलानां लभेत्फलम् ।।
आरात्रिकं हरेर्यस्तु सकर्पूरं तु जागरे ।
कुरुते मोक्षमाप्नोति कल्पायुतसमन्वितम् ।।
विनापि यो हि कर्पूरं कुर्य्यादारात्रिकं हरेः ।
निःस्वोपि जागरे विष्णोर्दानाद्भूरिफलं लभेत् ।।
वारिजं वारिणा पूर्णं शिरसि स्नापयेद्धरिम् ।
बिभर्ति शिरसा सोऽयं गङ्गास्नानकृतं फलम् ।।
कृत्वा पूजां हरेर्यस्तु जागरे पुरतः शुचिः ।
पठेन्नामसहस्रं च गीतां वा गजमोक्षणम् ।।
माङ्गल्यस्तवनं पुण्यं स्तवराजमनुस्मृतिम् ।
वैदिकानि च जप्यानि भक्त्या रात्रौ मुहुर्मुहुः ।।
भवेत्प्रत्यक्षरं पुण्यं कपिलागोशतोद्भवम्-
जागरे यज्ञरूपस्य पुरतः पठनं हरेः

यः पुनः कुरुते गीतं सनृत्यं वाद्यसंयुतम् ।।
न तत् क्रतुशतैः पुण्यं व्रतदानशतैरपि ।
यः पुनः कुरुते गीतं विलज्जो नृत्यते यदि ।।
लभते निमिषार्द्धेन चतुराश्रमजं फलम् ।
जागरे पद्मनाभस्य कुर्य्यात्पुस्तकवाचनम् ।।
श्लोकसङ्ख्यां वसेत्स्वर्गे युगानि हरिसन्निधौ ।
कुर्याद्वन्दनमालां यो रम्भास्तम्भैः सुशोभनैः ।।
चूतवृक्षोद्भवैः पत्रैर्जागरे चक्रपाणिनः ।
युगानि पत्रसङ्ख्यानां स्वर्गे तस्योत्सवो भवेत् ।।
पूज्यते वासवाद्यैश्च क्रीडते चाप्सरोवृतः ।
नित्यमामस्य मर्त्त्यस्य ये केचिन्निरयं गताः ।।
विमुक्ता धर्मराजेन मुक्तिं यान्ति हरेः पदम् ।
गीतध्वनिसुसन्तुष्टो जागरे तु रमापतिः ।।
वासवस्याधिकं सौख्यं दद्यात् मन्वन्तरं शतम् ।
नृत्येन मर्त्ये सौख्यं तु स्वर्गे नृत्येन जागरे ।।
रसातले तथा सौख्यं मुक्तिर्नृत्यादवाप्यते ।
प्रेक्षणीयप्रदानेन यत्पुण्यं कथितं बुधैः ।।
न तत्कोटिमखैः पुण्यं योगैः सांख्यैरवाप्यते ।
दीपमालां हरेरग्रे यः करोति प्रजागरे ।।
विमानकोटिसंयुक्तः कल्पान्ते वसते दिवि ।
चरितं रामचन्द्रस्य यः शृणोति हरेर्दिने ।।
रात्रौ वाल्मीकिना प्रोक्तं तत्समो न हि वैष्णवः ।
यः पुनः पठते रात्रौ महाभारतसम्भवाम् ।।
कथां जागरणे विष्णोः कुलकोटिं नयेद्दिवम् ।
औत्तानपादेश्चरितं ध्रुवस्य च महात्मनः ।।

कृष्णस्य बालचरितं जागरे पठते हि सः ।
युगकोटिसहस्रस्य क्षयः पापस्य जायते ॥
तस्माज्जागरणं कार्य्यं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते विष्णुसन्निधौ ॥
जागरे तत्पदं याति कुलवृन्दसमन्वितः ।
अष्टादशपुराणानि पुराणपुरुषस्य च ॥
दयितानि सदा विष्णोर्विशेषेण तु जागरे ।
यो गीतां पठते रात्रौ विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥
वेदोक्तानां पुराणानां जागरी पुण्यमाप्नुयात् ।
धेनुदानं तु यः कुर्य्याज्जागरे चक्रपाणिनः ॥
लभते नात्र सन्देहः सप्तद्वीपावनीफलम् ।
जागरे पद्मनाभस्य यः कुर्याच्छुभमण्डपम् ॥
मण्डले ध्रुवलोकस्य यावत्तिष्ठति पद्मभूः ।
सर्वेषामेव पुण्यानां महत्पुण्यं महीतले ॥,
द्वादश्यां जागरे विप्र ! प्रसिद्धं भुवनत्रये ।
जागरं ये चिकीर्षन्ति कर्मणा मनसा गिरा ॥
न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात्कथञ्चन ।
जागरे नृत्यमानं तु दृष्ट्वा वै द्वादशीदिने ॥
रात्रौ मार्जयते शौरिः पापं तस्य युगार्जितम् ।
प्रोत्साहयित्वा लोकान् यः कुरुते जागरं निशि ॥
प्राप्नोति चक्रवर्त्तित्वं भरतेन यथा पुरा ।
श्वपचेन यथा विष्णुं तोषयित्वा तु जागरे ॥
प्राप्ता मुक्तिः पुरा विप्र ! गान्धर्वात् श्रूयतेध्रुवम् ।
राज्यं प्राप्तं दिलीपेन नर्त्तनाद्वासने हरेः ॥
नहुषेण च सम्प्राप्तमर्घदानेन जागरे ।

फलदानात् सञ्जयेन प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।।
वञ्जुलीवासरे रात्रौ कृत्वा जागरणं हरेः ।
वस्त्रदानाद्दिने विष्णोर्नाभागेन तु जागरे ।।
राज्यं प्राप्तं मुनिश्रेष्ठ ! प्रसादान्माधवस्य हि ।
शैलुषी नर्त्तनात् सिद्धा विख्याता मेनका दिवि ।।
त्रिस्पृशाजागरे विप्र ! सत्यं ते कथितं मया ।
तुलसीजागरात्प्राप्तं जागरे चक्रपाणिनः ।।
अलर्केन क्षितीशत्वं यशःकीर्त्तिसमन्वितम् ।
षष्ठिवर्षसहस्राणि षष्ठिवर्षशतानि च ।।
अलर्को नाम राजासौ बुभुजे मेदिनीं पुरा ।
शाण्डिली मार्जनात् सिद्धा एकादश्यां तु मण्डलात् ।।
पुरतो बासुदेवस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
उन्मीलनीदिने प्राप्ते परदीपप्रबोधनात् ।।
इन्द्रद्युम्नेन सम्प्राप्तं राज्यं जागरणे हरेः ।
दोलादिने च सम्प्राप्ते वीणावाद्यात्पुरूरवाः ।।
चक्रवर्त्तित्वमायातो दुष्प्रापं यत्सुरैरपि ।
संमानिताः ककुत्स्थेन रात्रौ जागरकारिणः ।।
स्वशक्त्या चैव दानेन प्राप्तं राज्यं सुदुर्लभम् ।
श्वपाकी च मृगी नाम गानं कृत्वा हरेर्दिने ।।
गान्धर्वलोकनारीणां जाता राज्ञी प्रजागरात् ।
वेणीवाद्यादचीकस्तु विजयावासरेऽहनि ।।
जागरे पुरतो विष्णोः पुना राजा भविष्यति ।
ये केचिद्गायका विप्र ! वादका नर्त्तका नराः ।।
नर्त्तकीसहिता यान्ति कृत्वा जागरणं दिवम् ।
त्रियोनिमागतैः सर्वैः कृत्वा जागरणं हरेः ।।

सम्प्राप्तं पृथिवीशत्वं सकामैर्मुनिसत्तम ! ।
निष्कामैर्मुक्तिराप्ता च श्वपचाद्यैस्तु जागरात् ।।
विशेषो नास्ति वर्णानां हरेर्जागरकारिणाम् ।
न कल्पोपासनं ध्यानं न कलौ जान्हवीजलम् ।।
न कलौ पावनं जप्यं मुक्त्यैकं जागरं हरेः ।
आश्रमे वर्त्तमानानां न फलं हि द्विजन्मनाम् ।।
सम्पृष्टैरपि यज्ञैस्तु विना द्वादशीजागरात् ।
द्वादशी लङ्घिता यैस्तु विना जागरणं हरेः ।।
लक्ष्मीः पराङ्मुखी तेषां वासवाद्या दिवौकसः ।
पितरः कव्यपालाद्या मनुष्याः सनकादयः ।।
एकोपि हि कुलोत्पन्नः किं जातैर्बहुभिः सुतैः ।
द्वादशीजागरात्सर्वांस्तारयिष्यति पूर्वजान् ।।
विशल्यवासरे विष्णोर्यः करोति सुजागरम् ।
स वै भागवतो लोके गीयते ब्रह्मवादिभिः ।।
यस्य प्रसन्नो भगवान् शीलेनोत्पद्यते सुतः ।
एकोऽपि तारयेत्सर्वान्नरकस्थान् पितामहान् ।।
न सौरो नैव शैवो वा न ब्राह्मो नैव शाक्तिकः ।
न चान्यदेवताभक्तो भवेद्भागवतोपमः ।।
गृहेऽपि वर्तते यस्य नित्यं यस्य च चेतसि ।
द्वादशीचरितं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।
उपोषितैर्हरिदिनैः संवत्सरशतैः फलम् ।
तत्फलं नित्यमाप्नोति पठन् जागरणं हरेः ।।
माहात्म्यं यः पठेद्भक्त्या मयोक्तं जागरोद्भवम् ।
द्वादशीसम्भवं पुत्रः कुलानामुद्धरेच्छतम् ।।
चरितं बाललीलाया मथुरायां च यः पठेत् ।

द्वादश्यां देवकीसूनो रात्रौ जागरे कलौ ।।
अयुतानां वसेत् कोटिं पितृभिः परिवारितः ।
वञ्जुलीसम्भवं यो वै माहात्म्यं जागरे हरेः ।।
कीर्त्तयिष्यति नित्यं वा तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ।
दशभिर्वासरैर्विष्णोर्दशभिर्गुणितं मुने ! ।।
कृतैर्भवति यत् पुण्यं नित्यमाप्नोति तत्फलम् ।
जन्मकोटिमखैर्यष्टैर्न मुक्तिर्जायते नृणाम् ।।
द्वादशीजागरेणैव मुक्तिं गच्छति मानवः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा लभते वैष्णवं पदम् ।।
सर्वे दुष्टाः समास्तस्य सौम्यास्तस्य सदा गृहाः ।
यः पठेज्जागरे विष्णोर्माहात्म्यं द्वादशीषु च ।।

व्यतिरेकमुखेन जागरणमाह ब्रह्माण्डे ब्रह्मा—

स्तुवन्ति न प्रशंसन्ति ये नरा जागरं हरेः ।
नोत्सवा वै भवेत्तेषां गृहे जन्मानि सप्त च ।। इति ।।

तथा स्कान्दे शिवः—

प्रयात्येकादशी येषां कलौ जागरणं विना ।
ते विनष्टा न सन्देहो यस्माज्जीवितमध्रुवम् ।।
उद्धृतं नेत्रयुग्मं च दत्वा वै हृदये पदम् ।
अन्तकाले यमालये तेषां भूतैर्भविष्यति ।।
कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो जागरं हरेः ।
मूकवत्तिष्ठते यो वै गानं पाठं करोति न ।।
सप्तजन्मनि जायन्ते मूकास्तु जागरे हरेः ।
पङ्गुत्वं तस्य जानीयात्सप्त जन्मनि पार्वति ! ।।
यो न नृत्यति मूढात्मा पुरतो जागरे हरेः ।
सम्प्राप्ते वासरे विष्णोर्ये न कुर्वन्ति जागरम् ।।

भ्रश्यते सुकृतं तेषां वैष्णवानां च निन्दया ।
कामार्थसम्पदः पुत्रा कीर्त्तिर्लोकाश्च शाश्वताः ।।
यज्ञायुतैर्न लभ्यन्ते द्वादशीजागरं विना ।
मतिर्न जायते यस्य द्वादश्यां जागरं प्रति ।।
न हि तस्याधिकारोऽस्ति पूजने केशवस्य तु ।
प्रवासे न त्यजेद्यस्तु पथि खिन्नोऽपि पार्वति ।।
जागरं वासुदेवस्य द्वादश्यां च स मे प्रियः ।। इत्यादि ।।

विद्धैकादश्यां तु दशमीनिमित्तं कृत्यं कर्त्तव्यं न त्वेकादशीनिमित्तं जागरणादिकम्-तत्कृते तद्वैफल्यश्रवणात् । तच्चोक्तं **स्कान्दे शिवेन**—

उपोषणदिने विद्धे जागरः पूजनं हरेः ।
वृथा दानादिकं सर्वं कृतघ्ने सुकृतं यथा ।।
उपोषणदिने विद्धे प्रारम्भे जागरे सति ।
विहाय स्थानं तत्कृष्णः शापं दत्वा प्रगच्छति ।।
अविद्धे वासरे विष्णोर्ये प्रकुर्वन्ति जागरम् ।
तेषां मध्ये प्रहृष्टः सन् नृत्यं तु कुरुते हरिः ।। इत्यादि ।।

जागरणे दर्शनाद्यधिकारिणोदर्शिताः **ब्रह्माण्डे**—

तत्र ब्रह्मा शिवश्चन्द्रः शक्राद्या देवतागणाः ।
नित्यमेव समायान्ति जागरे कृष्णवल्लभे ।।
ऋषयो देवताद्यास्तु व्यासाद्या मनुयस्तथा ।
अहं तत्र प्रगच्छामि कृष्णपूजारतः सदा ।।
तत्र काशी पुष्करं च प्रयागं नैमिषं गया ।
शालिग्राममहाक्षेत्रर्बुदारण्यमेव च ।।
शौकरं मथुरा तत्र सर्वतार्थानि चैव हि ।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठा गच्छन्ते कृष्णजागरे ।।

स्कान्दे शिवो जागरणधर्मं दर्शयति—

परापवादयुक्तं तु मनःप्रशमवर्जितम् ।
शास्त्रहीनं सगान्धर्वं तथा दीपविवर्जितम् ।।
भक्त्युपचाररहितमुदासीनं सनिद्रकम् ।
कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधाऽधमम् ।।

जागरणोत्तमं च तत्रैव—

सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगान्धर्वसंयुतम् ।
सवाद्यं तालसंयुक्तं सदीपं साधुभिर्युतम् ।।
उपचारैश्च संयुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितैः ।
मनसस्तुष्टिजननं समुदं लोकरञ्जनम् ।।
गुणैर्द्वादशभिर्युक्तं जागरं माधवप्रियम् ।
कर्त्तव्यं तत्प्रयत्नेन पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।। इति ।।

जागरे गीतादिनिषेधे दोष उक्तः पाद्मे—

निवारयति यो गीतं नित्यं जागरणे हरेः ।
षष्ठियुगसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ।।
नृत्यमानस्य ह्युपहासं ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
जागरे यान्ति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ।। इति ।।

तत्र सर्वेषामेवाधिकारः, तदुक्तं ब्रह्माण्डे—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च जागरे ।
हीनवर्णाऽन्त्यजाश्चैव राक्षसा दैत्यदानवाः ।।
प्राप्तास्ते परमं स्थानं श्रीविष्णोर्जागरे कृते ।। इति ।।

कुमाराः—

विष्णूत्सवसमायातान् दृष्ट्वा हरिजनान् क्वचित् ।
न कार्या त्वशुचेः शङ्का पुण्यास्ते भक्तिसंयुताः ।।
सर्वे विप्रसमा ज्ञेयाः श्वपचाद्या न संशयः ।

ये कुर्वन्ति दिने विष्णोर्जागरं गीतकीर्त्तनम् ।।

सात्वते—

विष्ण्वालयसमीपस्थान् विष्णुसेवार्थमागतान् ।
चाण्डालान् पतितान्वापि स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत् ।।
उत्सवे वासुदेवस्य स्नायाद्योऽशुचिशङ्कया ।
तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।।

इत्येकादशीकृत्यम् ।।

अथ द्वादशीकृत्यमाह—

प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत् ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ! ।।
प्रसीद समुखो नाथ ! ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।
पारणं तु ततः कुर्याद्यथासम्भवमग्रतः ।।
अत उर्द्ध यथेष्टं वै विचरेत्तु यथारुचि ।। इति ।

कात्यायनस्मृतौ—

यदोक्तत्रिविधवेधरहितैकादश्युपोषिता तदा द्वादश्यामेव पारणम् यदा त्वेकादशी पूर्वविद्धा वृद्धा वा द्वादशी वा वृद्धा तदा द्वादश्यामेवोपोषणं त्रयोदश्यां पारणं कर्त्तव्यम् ।

तथोक्तं स्कान्दनारदीयादिषु—

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
तत्र क्रतुशतं प्रोक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।।
एकादशी यदा विद्धा परतोऽपि न वर्द्धते ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम् ।।

यदा तु त्रयोदश्यां द्वादश्याः कलाद्वयं भवति तदा द्वादश्यामेव पारणं कर्त्तव्यं न तु तामुल्लङ्घयेत् । तथोक्तं नारदीये-

यदा यत्र त्रयोदश्यां द्वादश्यास्तु कलाद्वयम् ।

द्वादश द्वादशी हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ।।
कलाद्वयं त्रयं वापि द्वादशीं न त्वतिक्रमेत् ।
पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।। इति ।।

अल्पाया द्वादश्या यदा पारणं तदा ततः प्रागेव सर्वाः क्रियाः कर्त्तव्याः, तदुक्तं नारदीये-

अल्पायामथ विप्रेन्द्र ! द्वादश्यामरुणोदये ।
स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः ।।

गारुडेऽपि—

यदा स्वल्पा द्वादशी स्यादपकर्षो भुजेर्भवेत् ।
प्रातर्माध्याह्निकस्यापि तत्र स्यादपकर्षणम् ।।

स्कान्देऽपि—

यदा भवेदतीवाल्पा द्वादशी पारणादिने ।
उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्माध्याह्निकं च यत् ।। इति ।

उषःकालेऽरुणोदये च स्नानार्चनजपहोमादिकाः सर्वाः क्रियाः कर्तुमशक्याः कालस्याल्पत्वात् अरुणोदये अरुणोदयान्ते उषःकाले समाप्या इति तात्पर्यार्थः । अत एव—

कलार्द्धां द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्ध्वमेव हि ।
आ मध्याह्ना क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भुशासनात् ।।

इति शास्त्रोक्तमेव युक्तम्, मध्याह्नपर्य्यन्तं कर्त्तव्याः देवपितृसम्बन्धिनीः सर्वाःक्रिया निशीथादुत्थाय यावद्द्वादशीकला ततोऽर्वागेव समाप्य द्वादश्यामेव पारणं कुर्यादित्यर्थः । अन्यथा—

महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लङ्घिता नृणाम् ।
करोति धर्महरणम् ।। इति शास्त्रोक्तमनिष्टं स्यात् । यदा कलामात्रमपि द्वादशी न स्यात्तदा त्रयोदश्यामेव पारणं कर्त्तव्यम् ।

तदुक्तं नारदीये—

त्रयोदश्यां तु शुद्धायां पारणे पृथिवी फलम् ।
शतयज्ञाधिकं वापि नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ।।

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।।

पारणं च तुलसीमिश्रितनैवेद्यप्राशनं कुर्यात् । तदुक्तं स्कन्दपुराणे-

कृत्वा चैवोपवासं तु योऽश्नाति द्वादशीदिने ।
नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ।। इति ।।

तदसम्भवेऽद्भिरपि पारणं कुर्यात्, तथाह देवलः-

सङ्कटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम् ।
अद्भिस्तु पारणं कुर्यात् पुनर्भुक्तं न दोषकृत् ।। इति ।।

सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायं प्रातस्तु मध्यमे ।
उपवासफलप्रेप्सुर्जह्याद्भुक्तचतुष्टयम् ।।

इति स्कान्दात् आद्यन्तयोरह्नोः पुनर्भोजनं न कुर्यात् ।

द्वादश्यां निषिद्धानि ब्रह्माण्डे-

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।
व्यायामं च प्रवासं च दिवा स्वप्नमथाञ्जनम् ।।

शिलापिष्टं मसूरं च द्वादशैतानि वैष्णवः ।
द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

कुमाराः—

कांस्यं मांसं सुरां द्यूतं व्यायामं क्रोधमैथुनम् ।
हिंसामसत्यं लौल्यं च तैलं निर्माल्यलङ्घनम् ।।
द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्जयेत् ।।

स्कान्दे—

क्षौद्रं मांसं सुरां तैलं व्यायामं क्रोधमैथुने ।

परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं निर्माल्यलङ्घनम् ।।
द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्जयेत् ।। इति ।।
चीर्णव्रतं स्वधर्मज्ञं दैवज्ञं वैष्णवोत्तम् ।
सम्पृष्टवैव व्रतं कुर्याद्विधिवद्वैष्णवो जनः ।।
इति श्रीमन्निम्बार्कचरणचिन्तकशुकसुधीसङ्गृहीते
स्वधर्मामृतसिन्धौ त्रयोदशस्तरङ्गः ।। १३ ।।

श्रीहंसं श्रीकुमारं च देवर्षिन्तदनुव्रतम् ।
श्रीनिम्बार्कं नमस्कृत्य मासकृत्यं प्रतन्यते ।।

अथ केचिच्चैत्रशुक्लप्रतिपदि वत्सरारम्भात्—

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ।
शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ।।

इति ब्राह्मोक्तेः, प्रजोत्पत्तिकालाच्च चैत्रशुक्लप्रथमदिनतः मासकृत्यं वर्णयन्ति । अत्र तु "मासानां मार्गशीर्षोऽहमिति" भगवद्वचनान्मार्गशीर्षस्याभ्यर्हितत्वात्सर्वज्ञैर्धर्मोपदेष्टृभिर्देवव्रतादिभिर्मार्गशीर्षक्रमेणैव मासकृत्यनिरूपणान्मार्गशीर्षक्रमेण मासकृत्यान्युच्यन्ते । तत्र प्रतिमासं काम्यव्रतमुक्तमानुशासनिके—

मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।
भोजयेच्च द्विजान् भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्विषैः ।।
सर्वकल्याणसम्पूर्णः सर्वौषधिसमन्वितः ।
उपोष्य व्याधिरहितो रूपवानभिजायते ।।
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ।
पौषमासं तु कौन्तेय ! भक्तेनैकेन यः क्षिपेत् ।।
सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते ।
माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।।
श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते ।

भगदैवं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते ।
चैत्रमासं तु कौन्तेय ! भक्तेनैकेन यः क्षिपेत् ।।
सुभगो दर्शनीयश्च कुले महति जायते ।
विस्तरेदेकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः ।।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ।
ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभक्तेन वर्त्तयेत् ।।
ऐश्वर्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान् स्त्री वाऽभिजायते ।
आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः ।।
बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते ।
श्रावणं नियतो मासमेकभुक्तेन यः क्षिपेत् ।।
यत्र तत्राभिषेकेन युज्यते ज्ञातिवर्धनः ।
प्रौष्ठमासं तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः ।।
धनाढ्यः स्फीतममलमैश्वर्यं प्रतिपद्यते ।
तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्षेन यः क्षिपेत् ।।
प्रजावान् वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ।
कार्त्तिके तु नरो मासं यः कुर्यादेकभोजनम् ।।
शूरश्च बहुभाग्यश्च कीर्त्तिमांश्चैव जायते ।
इति मासा नरव्याघ्र ! मया ते परिकीर्त्तिताः ।।

तत्रैव – सर्ववेदवेद्यस्य केशवादिनाम्नः श्रीभगवतः श्रीकृष्णस्य प्रतिमासमाराधनमुक्तम् । युधिष्ठिर उवाच—

सर्वेषामुपवासानां यच्छ्रेयः सुमहत्फलम् ।
यत्राप्यसंशयं लोके तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ।।

भीष्म उवाच—

शृणु राजन्यथा गीतं स्वयमेव स्वयम्भुवा ।

यत्कृत्वा निर्वृतो भूयात्पुरुषो नात्र संशयः ।।
द्वादश्यां मार्गशीर्षे तु अहोरात्रेण केशवम् ।
अर्च्याश्वमेधं प्राप्नोति दुष्कृतं चास्य नश्यति ।।
तथैव पौषमासे तु पूज्य नारायणैति च ।
वाजपेयमवाप्नोति सिद्धिं च परमां व्रजेत् ।।
अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम् ।
राजसूयमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।।
तथैव फाल्गुने मासि गोविन्देति च पूजयेत् ।
अतिरात्रमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ।।
अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णुरिति स्मरन् ।
पौण्डरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ।।
वैशाखमासे द्वादश्यां पूजयेन्मधुसूदनम् ।
अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ।।
अहोरात्रेण द्वादश्यां ज्येष्ठे मासि त्रिविक्रमम् ।
गवां मेधमवाप्नोति अप्सरोभिश्च मोदते ।।
आषाढमासि द्वादश्यां वामनेति च पूजयेत् ।
नरमेधमवाप्नोति अप्सरोभिश्च मोदते ।।
अहोरात्रेण द्वादश्यां श्रावणे मासि श्रीधरम् ।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति विमानस्थः स मोदते ।।
तथा भाद्रपदे मासि हृषीकेशेति पूजयेत् ।
सौत्रामणिमवाप्नोति पूतात्मा भवते च हि ।।
द्वादश्यामाश्विने मासि पद्मनाभेति चार्चयेत् ।
गोसहस्रफलं पुण्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।
द्वादश्यां कार्त्तिके मासि पूज्य दामोदरेति च ।
गवां यज्ञमवाप्नोति पुमान् स्त्री वा न संशयः ।।

अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमेवं संवत्सरं तु यः ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति विद्यां बहु सुवर्णकम् ।।
अहन्यहनि तद्भावमुपेन्द्रे सोऽधिगच्छति ।
समाप्ते भोजयेद्विप्रानथ वा दापयेत् घृतम् ।।
अतः परं नोपवासो भवतीति विनिश्चयः ।
उवाच भगवान्विष्णुः स्वयमेव पुरातनः ।।

व्रतपञ्चके—

मार्गशीर्षं समारभ्य पूज्या द्वादश देवताः ।
केशवाद्याः सह स्त्रिया आह्वयान्तरमात्रया ।।
तत्र तु केशवकीर्त्तौ मार्गशीर्षे प्रपूजयेत् ।
पौषे नारायणकान्ती यथाविधि प्रपूजयेत् ।।
माघे तु माधवतुष्टी भक्त्या सम्पूजयेत्सदा ।
फाल्गुने किल गोविन्दपुष्टी विष्णुधृती मधौ ।।
वैशाखे मधुसूदनशान्तित्रिविक्रमश्रियौ ।
ज्येष्ठे वै पूजयेद्भक्त्या चाषाढे वामनश्रियौ ।।
श्रावणे श्रीधरमेधे भाद्रपदे तु पूजयेत् ।
महाभक्त्या हृषीकेशमाये परमवैष्णवः ।।
तथाश्विने पद्मनाभश्रद्धे भजेत्तु कार्त्तिके ।
भक्त्या दामोदरलज्जे तथा देवीपुराणतः ।।

मार्गशीर्षमारभ्य केशव नारायण माधव-गोविन्द-विष्णु-मधुसूदन-त्रिविक्रम-वामन-श्रीधर-हृषीकशे। पद्मनाभ दामोदरान्पूजयेत्पुष्पधूपदीपनैवेद्यैरिति ।।

एवं स्वर्णास्तागमे—

कृष्णस्तु केशव एव नारायणः कनककः ।
श्यामस्तु माधवो ज्ञेयो गोविन्द कर्बुरस्तथा ।।

विष्णू रक्तस्तथा धूम्रो मधुसूदन एव तु ।
हरितस्तु त्रिविक्रमः पिङ्गलो वामनस्तथा ॥
अभ्रस्तु श्रीधरश्चित्रो हृषीकेशश्च पाण्डुरः ।
पद्मनाभोऽञ्जनो ज्ञेयो दामोदरश्च वर्णतः ॥

किञ्च वाराहे—मार्गशीर्षादिशुक्लद्वादशीषु क्रमान्मत्स्यादिदशावताराणां दुर्वाससा व्रतमुक्तं तत्काम्यत्वाद्ग्रन्थविस्तरभयादिह नोक्तम् ॥

अथ मार्गशीर्षकृत्यम् ।

तत्रादौ मार्गशीर्षे तु प्रभातस्नानपूर्वकम् ।
पूजयेद्राधिकाकृष्णौ भक्त्या परमया सुधीः ॥

तथा कुमाराः—

मासि मार्गशिरे पुण्ये महाविष्णुः प्रयत्नतः ।
पूजनीयो महाभक्त्या तुलसीकानने शुभे ॥
तत्र महोत्सवः कार्यो वैष्णवैर्मुदिताननैः ।
गीताद्यैः पुष्पताम्बूलैः सतामानन्दवर्द्धनः ॥
श्रीकृष्णाय नवं वस्त्रं तूलिकाद्यं समर्पयेत् ।
द्वादश्यां तत्र शुक्लायां विशेषेण भजेद्धरिम् ॥

वाराहे दुर्वासास्तथा—

मार्गस्य शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां नियतात्मवान् ।
स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा चाग्निकार्यं यथाविधि ॥
शङ्खचक्रगदापाणिं पीतवासःकिरीटिनम् ।
ध्यात्वा जलं गृहीत्वा तु भानुरूपं जनार्द्दनम् ॥
नुत्वाऽर्चेद्दीपयेत्पश्चात्करयोर्येन माधवः ।
ततः पूजाविधानेन कान्त्या श्रीकेशवं भजेत् ॥
केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ।
जानुभ्यां नरसिंहाय ऊरू श्रीवत्सधारिणे ॥

कण्ठं कौस्तुभनाभाय वक्षः श्रीपतये नमः ।
त्रैलोक्यविजयायेति बाहू सर्वात्मने नमः ।।
धूपदीपोपहाराद्यैरेवं कृष्णं श्रिया भजेत् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि इह लोके कृतान्यपि ।।
अकामतः कामतो वा तानि नश्यन्ति तत्क्षणात् ।
या च वन्ध्या भवेन्नारी अनेन विधिना शुभा ।।
उपोष्यति भवेत्तस्याः पुत्रः परमवैष्णवः ।।

विष्णुधर्मे—

मार्गशीर्षे त्वेकभक्तं कृत्वा योऽभ्यर्चयेद्धरिम् ।
भोजयित्वा द्विजान्मुक्तः स्यादित्याह कलिप्रियः ।।
नक्तंव्रतेन यो मासं मार्गशीर्षं हरिप्रियम् ।
नयेदसौ नरो याति विष्णुलोकं सनातनम् ।।

इतिस्वधर्मामृतसिन्धौ चतुर्दशस्तरङ्गः ।। १४ ।।

अथ पौषकृत्यम् ।।

पञ्चरात्रे—

मार्गस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः ।
मासमात्रं हरिप्रीत्यै त्रिवारं स्नानमाचरेत् ।।
त्रिकालं पूजयेत्कृष्णं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः ।
पौषस्य द्वादशी शुक्ला यावत्पुण्यफलप्रदा ।।
मासमेकं तदर्द्धं वा दशाहं वा तदर्द्धकम् ।
कृत्वा याति हरेः स्थानं पूजां दध्योदनोत्सवाम् ।।
गीतैर्वाद्यैर्नृतैर्भक्तैर्दधिभक्तं समं नयेत् ।
अर्पयित्वा हरौ भक्त्या प्रसादं चानयेत्ततः ।।
यः प्रसादं हरेर्भक्त्या गृह्णाति प्रददाति च ।
भुक्तं च वैष्णवैः सार्द्धं सोऽनन्तफलमश्नुते ।।

घृतप्रस्थेन देवेशं पौषपुष्यसिते नरः ।
स्नापयित्वाऽश्वमेधस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ।।

श्रीसनत्कुमारः—

पौषमासस्य या पुण्या द्वादशी शुक्लपक्षतः ।
तद्वदाराधयेत्तत्र देवदेवं जनार्द्दनम् ।। इति ।।

अङ्गपूजनमुक्तं श्रीमदौदुम्बरसंहितायाम्—

कटिं नारायणायेति पादौ कूर्माय चादितः ।
हरेः सङ्कर्षणायेति चोदरं तु हरेस्ततः ।।
विशोकाय बलायेति कटिं चैव तथा भुजौ ।
शिरश्चेति प्रपूजयेद्धरिं तत्तदुपस्करैः ।। इति ।।

श्रीनारायणाय नम इति हरेः पादौ पूजयेदिति यथायथं योजनीयम् ।।

अथप्रसङ्गादिदमपि ज्ञेयम् अमावास्यारविव्यतीपातश्रवणयोगेऽर्द्धोदयः । यथोक्तं स्कान्दे—

माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते ।
अर्द्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम् ।।
अर्द्धोदये तु सम्प्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् ।
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेर्ब्रह्मसंस्थिताः ।।
यत्किञ्चिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम् ।। इति ।।

निर्णयामृते तु—

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः ।
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः सूर्यकोटिग्रहैः समः ।।
दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कथञ्चन ।। इति ।।

प्रसङ्गादन्यदपि स्कान्दे—

अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना तथा ।
चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ।।

चतस्रस्तिथयस्त्वेताः सूर्यग्रहणसन्निभाः ।
स्नानं दानं तथा श्राद्धं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ।। इति ।।

इतिस्वधर्मामृतसिन्धौ पञ्चदशस्तरङ्गः ।। १५ ।।

अथ माघकृत्यम् ।।

ब्रह्मपुराणे—

एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषामासे समारभेत् ।
द्वादश्यां पूर्णिमायां वा शुक्लपक्षे समापनम् ।।

माघे इति शेषः ।।

भविष्योत्तरे भगवद्युधिष्ठिरसंवादे—

पौषफाल्गुनयोर्मध्ये प्राप्तःस्नायी सदा भवेत् ।
तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।:
माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येऽहं देवमाधव ! ::

अधिकारनिर्णयः पाद्मे—

सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप ! ।
सर्वेषां स्वर्गदो माघः सर्वेषां पापनाशनः ।।

भविष्योत्तरे च—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
प्रातः सर्वे प्रशंसन्ति सदा माघस्य मज्जनम् ।।
बालास्तरुणका वृद्धा नरनारीनपुंसकाः ।
स्नात्वा माघं शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो मन्त्रवत्स्नानमाचरेत् ।
तूष्णीमेव च शूद्रस्य स्त्रीणां च कुरुनन्दन ! ।।

स्नानकालस्तु ब्राह्मे—

अरुणोदये तु सम्प्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः ।
माधवाङ्घ्रियुगं ध्यात्वा यः स्नाति सुरपूजितः ।।

भविष्योत्तरे तु—

माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे ।।
प्रासादा यत्र सौवर्णाः स्त्रियश्चाप्सरसोऽमलाः ।
दधिकुल्यास्तथा यत्र नद्यः पायसकर्दमाः ।।
तत्र ते यान्ति मज्जन्ति ये माघे भास्करोदये ।।

माघस्नानमाहात्म्यमाह स्कान्दे ब्रह्मनारदसंवादे—

माघस्नानस्य माहात्म्यं शृणु भागवतप्रिय ! ।
त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् विष्णुभक्तो महामुने ! ।।
चक्रतीर्थे हरिं दृष्ट्वा मथुरायां च केशवम् ।
यत्फलं लभते जन्तुर्माघस्नानेन तत्फलम् ।।
जितेन्द्रियः शान्तमनाः समाचारेण संयुतः ।
स्नानं करोति यो माघे संसारी न भवेत्पुनः ।।
ॐकारः सर्ववेदानां यथादौ परिपठ्यते ।
तथा विष्णुव्रतानां तु माघस्नानं महामुने ! ।।
यदिच्छेद्विष्णुना वासं सुतान्सम्पदमात्मनः ।
माघस्नानं तदा कार्यं नरेण द्विजसत्तम ! ।।
सर्वपापबिनाशाय कृष्णसन्तोषणाय च ।
माघस्नानं सदा कार्यं वर्षे वर्षे च नारद ! ।।
ब्रतानि वैष्णवानीह मनसापि चिकीर्षति ।
तत्तस्य विलयं याति पापं जन्मशतोद्भवम् ।।
माघस्नानं नरः कृत्वा सदा दान्तमना व्रती ।
प्राप्नोति च पदं विष्णोः स्थानं त्रैलोक्यवन्दितम् ।।
कृतं भूरि महापापं ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा ।
माघस्नानेन विप्रेन्द्र ! दह्यते तूलराशिवत् ।।

कर्मणा मनसा वाचा यत्पापं समुपार्ज्जितम् !
दह्यते नात्र सन्देहो माघस्नानेन नारद ! ।।
स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्द्दनम् ।
नरैर्यत्क्रियने माघे तदनन्तफलं लभेत् ।।
विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम् ।
न तत्फलमवाप्नोति यो लोभाक्रान्तमानसः ।।
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पं पुरुषाः कुले ।
तांस्तारयति विप्रेन्द्र ! माघस्नानेन माधवः ।।
सम्प्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे ।
विलयं यान्ति पापानि तमः सूर्योदये यथा ।।
यतिवत्पथि गच्छेत मौनी पैशून्यवर्जितः ।
यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् वैष्णवं पदमव्ययम् ।।
महानदीजले स्नात्वा इतरे वापि नारद ! ।
स्नापयित्वा हरिं भक्त्या पूजयेत्तुलसीदलैः ।।

कात्यायनः—

माघस्नायी नरो यः स्यात् दुर्गतिं नैव पश्यति ।
तन्नास्ति मानुषे लोके किल्बिषं यन्न शोधयेत् ।।

गारुडे नारदः—

दुर्लभो माघमासस्तु वैष्णवानामतिप्रियः ।
देवतानामृषीणां च मुनीनां सुरनायक ! ।।
विशेषेण शचीनाथ ! माधवस्यातिवल्लभः ।
अधिको माघमासस्तु मासानां हि शचीपते ! ।।
पौष्यां तु समनीतायां यावद्भवति पूर्णिमा ।
माघमासस्य विप्रेन्द्रैः पूजा विष्णोर्विधीयते ।।
स्नानं विलेपनं धूपं नैवेद्यादिसमुद्भवम् ।

माघमासे कृतं विष्णोः सर्वं भवति चाक्षयम् ।।

पाद्मे—

तपःस्वाध्याययज्ञाद्यमिष्टापूर्तं विनापि ये ।
वाञ्छन्ति स्वस्ति ते स्नान्तु प्रातर्माघेऽवनीश्वर ।।
गोभूमितिलरत्नानि स्वर्णधेन्वन्नकानि ये ।
अदत्वेच्छन्ति नाकं ते माघस्नाने नराधिप ! ।।
त्रिरात्रादिव्रतैः कृच्छ्रैः पाराकैश्च निजां तनुम् ।
अशोष्येच्छन्ति ये स्वर्गं तपसि स्नान्तु ते सदा ।।
निरन्ना याऽदितिः स्नात्वा मासान द्वादश मानसे ।
पुत्रान्वै द्वादशादित्यांल्लेभे त्रैलोक्यदीपकान् ।।
सुभगा रोहिणी माघाद्दानशीला ह्यरुन्धती ।
शची तु रूपसम्पन्ना देवेन्द्रस्याभवत्प्रिया ।।
धर्ममूलं सदा माघः पापमूलनिकृन्तनः ।
काममूलफलद्वारो निःकामो ज्ञानदः सदा ।।
देवलोकान्निवर्त्तन्ते पुण्यैरन्यैः परन्तप ! ।
कदाचिन्न निवर्त्तन्ते माघस्नानरता दिवः ।।
नातः परतरं किञ्चित्पवित्रं पापनाशनम् ।
नातः परतरं किञ्चिन्नातः परं तपो महत् ।।
एतदेव परं पथ्यं सद्यो दुरितनाशनम् ।
हित्वाघं येन वै सद्यो देवस्त्रीणां प्रियो भवेत् ।।

कार्त्तवीर्य उवाच—

हेतुना केन विप्रेन्द्र ! माघस्नाने महाद्भुतः ।
प्रभावो वर्णितो नूनं तन्मे कथय सुव्रत ! ।।
गतपापो यदेकेन द्वितीयेन दिवं गतः ।
वैश्यो माघजपुण्येन ब्रूहि मे तत्कुतूहलात् ।।

दत्त उवाच—

निसर्गात्सलिलं मेध्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् ।
मलहं पुरुषव्याघ्र ! द्रावकं दाहकं तथा ।।
धारकं सर्वभूतानां पोषकं जीवकं च यत् ।
आपो नारायणो देवः सर्ववेदेषु पठ्यते ।।
ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।
मासानां हि तथा माघः श्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु ।।
मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले ।
गोःपदेपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि ।।
योगोऽयं दुर्लभो राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
अस्मिन्योगेप्यशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम् ।।
दद्यात्किञ्चिद्यथाशक्ति दरिद्राभावमिच्छता ।
त्रिःस्नानेनापि माघे स्युर्धनिनो दीर्घजीविनः ।।
पञ्च वा सप्त वाऽहानि चन्द्रवद्वर्द्धते फलम् ।
सम्प्राप्ते मकरादित्ये पुण्यैः पुण्यप्रदे सदा ।।
कर्त्तव्यो नियमः कश्चिद्व्रतरूपी नरोत्तमैः ।
फलातिशयहेतोर्वा किञ्चिद्भोज्यं त्यजेद्बुधः ।।
भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलविमिश्रितम् ।
त्रिकालं वाऽर्चयेन्नित्यं वासुदेवं सनातनम् ।।
दातव्यो दीपकोऽखण्डो देवमुद्दिश्य माधवम् ।
परस्याग्नि न सेवेत त्यजेद्विप्रः प्रतिग्रहम् ।।
माघान्ते भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति नराधिप ! ।
देया च दक्षिणा तेभ्य आत्मनः श्रेय इच्छता ।।
एकादशीविधानेन माघस्योद्यापनं शुभम् ।
कर्त्तव्यं श्रद्दधानेन अक्षयस्वर्गवाञ्छया ।।

माघस्नानमन्त्रः—

मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत ! माधव ! ।
स्नानेनानेन मे देव ! यथोक्तफलदो भव ।।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनं समाहितः ।
वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च स्मरेत्पुनः ।।
तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः ।
षड्गुणं फलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे ।।
बहिःस्नानं तु वाप्यादौ द्वादशाब्दफलं स्मृतम् ।
तडागे द्विगुणं राजन्नद्यां तच्च चतुर्गुणम् ।।
दशधा देवखाते च शतधा तु महानदी ।
शतचतुर्गुणं राजन्महानद्यास्तु सङ्गमे ।।
सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ ।
गङ्गायाः स्नानमात्रेण लभते मानुषं भवम् ।।
गङ्गां च येऽवगाहन्ते माघे मासि नृपोत्तम ! ।
निर्दिष्टमृषिभिः स्नानं गङ्गासागरसङ्गमे ।।
अमाघस्नायिनां नृणां निःफलं जन्म कीर्त्तितम् ।
असूर्यं गगनं यद्वदचन्द्रमुडुमण्डलम् ।।
तद्वन्नाभाति सत्कर्म माघस्नानं विना नृपः ।
व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ।।
माघस्नानकमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ।
न समं भुवि किञ्चित्तु तेजः सौरेण तेजसा ।।
तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाः क्रतुजाः क्रियाः ।
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ।।
माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ।
किं रक्षितेन देहेन सम्पुष्टेन बलीयसा ।।

अध्रुवेणाशुगेनेह माघस्नानं कृतं न चेत् ।
रोममन्दिरमातुरं रजस्वलमनित्यकम् ।।
चर्माम्बरवद्दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ।
जराशोकवियद्व्याप्तं सर्वदोषसमाश्रयम् ।।
दुस्तरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयविदूषितम् ।
अशुचि स्रावि सच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ।।
कामक्रोधमदलोभनरकद्वारसंस्थितम् ।
कृमिचर्मास्थिभस्मादिपरिणामि शुनो हविः ।।
ईदृक् शरीरकं व्यर्थं माघस्नानविवर्जितम् ।
बुदबुदाइवतोयेषु पुत्रिका इव जन्तुषु ।।
जायन्ते मरणायैव माघस्नानविवर्जिताः ।
मकरस्थे रवौ यो हि न स्नायादुदिते रवौ ।।
कथं पापैः प्रमुच्येत कथं च त्रिदिवं व्रजेत् ।
ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ।।
माघाऽस्नायी च पापः स्यात्तत्सङ्गी चैव पञ्चमः ।
माघे मासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे ।
उपपातकानि सर्वाणि पातकानि महान्ति च ।।
भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ।
वेपन्ते सर्वपापानि माघमाससमागमे ।।
नाशकालोऽयमस्माक यदि स्नास्यति वारिणा ।
पावका इव दीप्यन्ते माघस्नाने नरोत्तमाः ।।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ।
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ।।
माघस्नानं दहेत्पापं पावकः समिधो यथा ।

प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।।
स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे ।
निःपाप्मानो दिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धिताम् ।।
सन्देहोऽत्र न कर्त्तव्यो माघस्नाने नराधिप ! ।
सर्वेषां सर्वदो माघः सर्वेषां पापनाशनः ।।
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः ।
पावनं पावनानां च माघस्नानं नराधिप ! ।।
स्नान्ति माघे न ये राजन्सर्वकामफलप्रदे ।
ते कथं भुञ्जते भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।।
अस्मिन्पुण्यतमे मासे महाविष्णुं मुदान्वितः ।
पूजयेत्परया भक्त्या सर्वकामसमृद्धये ।।
नवनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ।।
कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाधरं हरिम् ।
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रिया ।।
विराजन्तं किरीटेन वलयाङ्गदनूपुरैः ।
प्रसन्नवदनाम्भोजं चतुर्बाहुं श्रियान्वितम् ।।
विचिन्त्यैवं महाविष्णुं गन्धादिभिः प्रपूजितम् ।
द्वादश्यां तु विशेषेण कुर्यात्पुष्पकमण्डपम् ।।
नैवेद्यानि विचित्राणि दद्यान्माधवतुष्टये ।
वैष्णवानां च पूजां वै कृत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ।।

तत्र शुक्लपञ्चम्यां वसन्तोत्सवः कार्यः ।तच्चोक्तं नारदीये –

माघस्य शुक्लपञ्चम्यां महापूजां समाचरेत् ।
नवैः प्रवालैः कुसुमैरनुलेपैर्विशेषतः ।।

नीराजनोत्सवं कृत्वा भक्त्या संमान्य वैष्णवान् ।
वसन्तरागं जनयन् गीतनृत्यादि कारयेत् ।। इति ।।

सविद्धाधिके परेद्युरेव—

पूर्वविद्धदिने दत्तं यत्किञ्चित्पूजनं च वै ।
नैव गृह्णाति वैकुण्ठः पूजां तद्दिनसम्भवाम् ।।
इति नारदीयोक्तवाक्यात् ।
उदये या कलामात्रा सा व्याप्नोत्यखिलं दिनम् ।।
श्रीमन्नारदपञ्चरात्रवाक्योपलम्भाच्च ।।

श्रीमदाचार्यवाक्यैस्तदुत्सवविधिं दर्शयति—

संस्कृत्य राधाकृष्णयोर्गन्धपुष्पजलादिभिः ।
सतो मन्दिरमाहूय महास्नानं प्रदाय हि ।।
ताभ्यां महासुनैवेद्यं नानागुणमयं शुभम् ।
नवीनपीतवस्त्राद्यैरलङ्कृर्याच्छ्रियं हरिम् ।।
समाहृतान् समाहूतान् समानोपासकान् सतः ।
प्रसाद्यहर्यवशेषाद्यैर्महोत्सवमुपक्रमेत् ।।
आरभ्य शुक्लपञ्चमीं कृष्णस्य शयनावधिम् ।
वसन्तरागमुन्नयेद्राधाकृष्णरसान्वितम् ।। इति ।।

इदमप्याहुः श्रीमत्कुमाराः—

श्रीपञ्चमीं समारभ्य यावत् स्याच्छयनावधिः ।
वसन्तरागः कर्त्तव्यो नान्यदेति कदाचन ।। इति ।।

तत्र शुक्लसप्तमी **रथसप्तमी** तस्यामरुणोदये स्नानं कार्यम् ।

तदुक्तं स्मृतिसङ्ग्रहे—

सूर्यग्रहणतुल्या हि शुक्लमाघस्य सप्तमी ।
अरुणोदयवेलायां स्नानं तत्र महाफलम् ।।

भविष्योत्तरे तथा—

माघमासे सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा ।
कुर्याच्च स्नानदानाभ्यामायुरारोग्यसम्पदः ।। इति ।।

इदं प्रसङ्गादुक्तम् । तत्र शुक्लाष्टम्यां भीष्मतर्पणं तदुक्तं पाद्मे—

माघे मासि सिताष्टम्यां सलिलैर्भीष्मतर्पणम् ।
श्राद्धं चैव तु ये कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ।। इति ।।

तर्पणं तु काम्यं नित्यं च—

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णादद्युर्भीष्माय नो जलम् ।
संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम ! ।। इति ।।

मदनरत्नधृतवचनात् ।

जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ।।

इति वचनाच्च ।।

तर्पणमन्त्रः—

भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रान्वितां क्रियाम् ।।
वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ।।

तत्र शुक्लैकादशी भीमद्वादशीत्येवं नामोच्यते पाद्मे—

त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति ।
सा भीमा द्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभे ! ।। इति ।।

मात्स्ये श्रीभीमं प्रति श्रीमद्भगवद्वचनम्—

यद्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादशीषु च भारत ! ।
अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ।।
ततः पुण्यामिमां भीमतिथिं पापप्रणाशिनीम् ।
उपोष्य विधिनानेन गच्छ विष्णोः परं पदम् ।। इति ।।

व्रतविधिरपि भीमं प्रति तत्रैवोक्तो भगवता—

माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा ।
घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत् ।।
तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणेति च ।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मनेति च ।।
वैकुण्ठायेति कण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे ।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद्गदिने वरदाय वै ।।
सर्वे नारायणायेति सम्पूज्या बाहवः क्रमात् ।
दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै ।।
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ।
नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः ।।
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ।
नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च वृष्ट्यै कृष्ट्यै यजेच्छ्रियम् ।।
नमो विहगनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे ।
विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत् ।।
एवं सम्पूज्य गोविन्दं देवदेवं रमापतिम् ।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ।।
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः ।
सर्पिषा सह भुक्त्वा तां जप्त्वा मन्त्रपदं बुधः ।।
न्यग्रोधं दन्तपवनमथवा खादिरं पुनः ।
गृहीत्वा पावयेद्दन्तान् आचान्तः प्रागुदङ्मुखः ।।
ब्रूयात्सायन्तनीं कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रवौ ।
नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ।।
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम् ।
रात्रिं च सकलां स्थित्वा स्नानं च पयसा तथा ।

सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः ।
सहैव पुण्डरीकाक्ष ! द्वादश्यां क्षीरभोजनम् ।।
करिष्ये यतात्माऽहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे ।
एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमावितिहासकथां पुनः।।
श्रुत्वा प्रभाते विधिवत् कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
प्रणम्य च हृषीकेशममलं चार्कमीश्वरम् ।।
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद्बुधः ।
दशहस्तां तथाऽष्टौ वा करान् कुर्य्याद्विशांपते ।।
चतुर्हस्तां शुभां कुर्य्याद्वेदीमरिनिषूदनः ।
चतुर्हस्तप्रमाणं च विन्यसेत्तत्र तोरणम् ।।
प्रकल्प्य कलशं तत्र माषमात्रेण संयुतम् ।
छिद्रेण जलसम्पूर्णमधः कृष्णाजिने स्थितः ।।
तस्य धारां च शिरसि धारयेत्सकलां निशाम् ।
धाराभिर्भूरिभिर्भूरिफलं वेदविदो विदुः ।।
यस्मात्तस्मात्कुरुश्रेष्ठ ! धारा धार्य्या स्वशक्तितः ।
तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रदापयेत् ।।
अरत्निमात्रं कुण्डं च कृत्वा तत्र त्रिमेखलाः ।
योनिचक्रं च तत्कृत्वा ब्राह्मणैर्यवसर्पिषी ।।
तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत्तदा ।
हुत्वा च वैष्णवं सम्यक् चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।।
निःपावार्द्धप्रमाणां वै धारामाश्वस्य पातयेत् ।
जलकुम्भान्महावीर्य्य ! स्थापयित्वाऽत्र षोडश ।।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलङ्कृतान् ।
रक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान् ।।
चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य्य उदङ्मुखैः ।

वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ।।
अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत् ।
एवं द्वादश तान् विप्रान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।।
पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः ।
वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ।।
एवं समापयेत्कृत्यं गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।।

तत्रैव माहात्म्यं ब्रह्माणं प्रति शिवेनोक्तम् । ब्रह्मोवाच—

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर ! ।
स्वल्पेन तपसा देव ! भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम् ।।

महादेव उवाच—

त्वया पृष्टस्य धर्म्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत् ।
भविता स यदा ब्रह्मन्कर्त्ता चैव वृकोदरः ।। इति ।।

पुनस्तत्रैव—

इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः ।
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः ।
अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ।।
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम् ।।
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ।।

तत्र पौर्णमासी माघी सा योगविशेषेण महामाघी । तथा गार्ग्यः

मेषराशौ यदा शौरिः सिंहे चैव बृहस्पतिः ।
भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ।
सौरिः शनैश्चरः तत्र भगवत्पूजनादिकम् ।।

विशेषेण च कर्त्तव्यम् ।। इदमपि प्रसङ्गादुक्तं ज्ञेयम् ।।

इतिस्वधर्मामृतसिन्धौ षोडशस्तरङ्गः ।। १६ ।।

अथ फाल्गुनकृत्यम् ।।

तत्रैकभक्तादिकं पूर्वोक्तदानधर्मवाक्यात् ज्ञेयम् । प्रातःस्नानं च कर्त्तव्यम्—

प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मासौ द्वौ माघफाल्गुनौ ।

देचान्पितृन्समभ्यचर्य मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।

इति **वचनात्** ।।

तत्र कृष्ण चतुर्दश्यां **शिवरात्रिव्रतं** तदुक्तं हेमाद्रौ—

माघासिते भूतदिनं हि राज-

न्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः ।

जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्या-

च्छिवस्य रात्रिं शिवकृच्छतस्य ।। इति ।।

श्रीमदौदुम्बरसंहितायाम्—

फाल्गुने शिवरात्रं तु कुर्वतस्त्वनुमोदयेत् ।

कृष्णपक्षचतुर्दश्यां सशल्यश्चे त् स्वयं चरेत् ।। इति ।।

तद्धे तुकं वाक्यं **कौर्मे**—

परात्परतरं यान्ति नारायण परायणाः ।

न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ।। इति ।।

पाद्मे निषेधविधिर्दृश्यते—

द्रव्यमन्नं फलं तोयं शिवस्थं न स्पृशेत्क्वचित् ।

निर्माल्यं नैव लङ्घेत कूपे सर्वं विनिःक्षिपेत् ।।

अन्यथा स्वकृताद्रिक्तः सर्वथा नरकं व्रजेत् ।

आराधयेदनन्यस्तु देवतान्तरमद्विषन् ।। इति ।।

तथा श्रीकृष्णः—

नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् ।
चक्राङ्कितः सदा तिष्ठेन्मद्भक्तः पाण्डुनन्दन ! ।। इति ।।

तथा पाद्मे–

नारायणात्परो देवो नास्ति मुक्तिप्रदो नृणाम् ।
नारायणाद्देवदेवादन्येषामर्चनं न तु ।। इति ।।

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। इति ।।

विष्णुधर्मे–

पृथिवीं रत्नसम्पूर्णां यः कृष्णाय प्रयच्छति ।
तस्याप्यन्यमनस्कस्य सुलभो न जनार्द्दनः ।। इति ।।

ध्रुवपञ्चरात्रेपि–

यावदन्याश्रयस्तावद्भगवानपि तं जनम् ।
विलोकयेन्न दयया ह्यनन्यजनवत्सलः ।। इति ।।

श्रीभागवतेपि–

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयात्
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् । इति ।।

यत्तु–अनन्यत्वं नाम जीवेश्वरयोः स्वरूपतोऽभेददर्शित्वम्, तदसत्--अज्ञसर्वज्ञयोः स्वरूपैक्यासम्भवात् । यद्येतदर्थजिज्ञासा चेर्त्तहि पराभिमताध्यासगिरिवज्रः श्रोतव्यः । सशल्यो वैष्णवो यदि व्रतं कुर्यात्तदा पूजनं तु श्रीकृष्णमूर्त्तावेव, तदितरपूजने कृते पूर्ववाक्यविरोधः स्यात्—

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया ।
पूजितोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ।।

इति लिङ्गपुराणे फलाभावाच्च ।

यद्वा तद्दिने शिवनाभे शालिग्रामे तस्य विशेषपूजनं कुर्यात्—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं याति पवित्रताम् ।।

इति स्कान्दे । प्रसङ्गादिदमप्युक्तम् ।।

तत्र शुक्लैकादशी सामर्दकी **तदुक्तं प्रभासखण्डे—**

क्षीरोदे मथ्यमाने तु यदा वृक्षः समुत्थितः ।
आमर्दो देवदैत्यानां तेन सामर्दकी स्मृता ।। इति ।।

तस्यां धातृच्छायायां श्रीराधाकृष्णपूजनं तत्प्रादक्षिण्यं च कुर्यात् ।

तच्चोक्तं भविष्योत्तरे—

फाल्गुने मासि शुक्लायामेकादश्यां जनार्दनः ।
वसत्यामलके वृक्षे लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ।।
तत्सन्निधौ ततः पूजां प्रदक्षिणां च कारयेत् ।। इति ।।

विधिस्तु व्रतपञ्चके तथाहि कुमाराः—

आमर्दकी यतो जाता निष्ठीवात्पद्मसम्भवात् ।
जमदग्नेः परशुरामश्च आमलक्या सहितो हरिः ।।
तन्निकटे ततः सेवा प्रदक्षिणा विधीयते ।
द्वादशी पुष्यभयुता फाल्गुनेऽतिविशिष्यते ।।

तथा ब्राह्मे—

अत्रेतिहासोपि कस्यचिद्व्याधस्य पापरतस्य च सत्प्रसङ्गादभक्तितोपि पुष्यद्वादशीं क्वचित्—

उपोष्य फाल्गुने मासे चक्रे जागरणं शुभम् ।
तेन सोऽतीव धर्मात्मा राजासौ लोकविश्रुतः ।।

पाद्मे—

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ।
सर्वपापहरा ह्येताः कर्त्तव्याः फलकांक्षिभिः ।।

द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्वसु ।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।।
तामुपोष्य नरो घोरो नरके नैव मज्जति ।
अग्निष्टोमादियज्ञानां फलमाप्नोत्यसंशयम् ।।
यदा च शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत् ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ।।
यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ।।
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
क्षयं याति च गोविन्दं तस्यामभ्यचर्य भक्तितः ।।
यदा च शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ।।
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना ।
तस्यामाराधितः कृष्णो दत्तवानखिलां भुवम् ।।
वाचिकान्मानसात्पापत्कायिकाच्च विशेषतः ।
सप्तजन्मकृताद्घोरान् मुच्यते नात्र संशयः ।।
इमामेवमुपोष्येत पुष्यनक्षत्रसंयुताम् ।
एकादशीसहस्रस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ।।
स्नानं दानं तपो होमं स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
यदस्यां क्रियते किञ्चित्तदनन्तगुणं भवेत् ।।
तस्मादेषा प्रयत्नेन कर्त्तव्या फलकांक्षिभिः ।
फाल्गुने च विशेषेण विशेषः कथितो नृप ! ।।
आमलक्या व्रतं पुण्यं विष्णुलोकप्रदं नृणाम् ।
आमलक्यामधो गत्वा जागरं तच्च कारयेत् ।।
कृत्वा जागरणं विष्णोर्गोसहस्रफलं लभेत् ।।

विष्णुः—

आदौ गुरुगृहे गत्वा पश्चान्नियमं तु कारयेत् ।

तत्र नियममन्त्रः—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि ।
भोक्ष्येऽहं जामदग्नीश शरणं मे भवाच्युत ! ॥
एवं कृत्वा तु नियमं न वदेत्पतितैः सह ।
नाचरेन्निन्द्यकर्माणि ततः स्नायाद्विधानतः ॥
आदौ भक्त्या जामदग्निं कारयित्वा हिरण्मयम् ।
माषकेण सुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥
देवार्चनगृहे गत्वा गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
तत आमलकीं गच्छेत्सर्वोपस्करसंयुतः ॥
तस्याधः सजलं कुम्भं स्थापयेन्मन्त्रसंयुतम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं दिव्यगन्धादिवासितम् ॥
विधायोपानहौ छत्रं श्वेतव्यजनचामरम् ।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं दिव्यैर्वाऽन्नैः प्रपूरितम् ॥
तस्योपरि न्यसेद्देवं जामदग्न्यं विशोकदम् ।
ॐविशोकाय नमः पादौ जानुनी विश्वरूपिणे ॥
हयग्रीवाय तथोरू कटिं दामोदराय च ।
कन्दर्पाय नमो गुह्यं नाभिं च पद्ममालिने ॥
चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः ।
वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ॥
नासायां शोकनिधने वासुदेवाय चक्षुषी ।
ललाटं वामनायेति रामायेति पुनर्भ्रुवौ ॥
नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् ।
एवं सम्पूज्य देवेशं जामदग्न्यं जगद्गुरुम् ॥

स्वशक्त्या विविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विलेपनैः ।
पत्रपूगाक्षतैरर्घैर्नारिकेलादिभिः फलैः ।।
प्रदक्षिणं ततः कुर्यादामलक्या विधिवत्तदा ।
शतमष्टाधिकं चैव अष्टाविंशतिमेव च ।।
ततः प्रभातसमये कृत्वा नीराजनं हरेः ।
पूजयित्वा गुरून् सम्यक् तस्मै सर्वं निवेदयेत् ।।
जामदग्नि स्वयं छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ ।
जामदग्नीस्वरूपी स्वीकरोतु मम केशवः ।।
ततः आमलकीं श्रेष्ठां कृत्वा चैव सुदक्षिणाम् ।
कृत्वा स्नानं तु विधिवद्वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।।
ततस्तु स्वयमश्नीयात्कुटुम्बेन समन्वितः ।
एवं कते तु यत्पुण्यं सर्वदानैश्च यत्फलम् ।।
सर्वयज्ञाधिकं चैव लभते नात्र संशयः ।
प्रतिपक्षं प्रतिमासं सर्वकृष्णानुशीलनम् ।।
स्वनाम्ना पृथगायुधानि चक्रादीनि पूजयेद्धरेः ।।

श्रीमित्यादिना मन्त्रेण सर्वपूजनं ॐश्रीसुदर्शनाय नमः ॐश्री पाञ्चजन्याय नमः ॐश्रीकोमौदक्यै नमः ।

एवं पद्माय धनुषे बाणाय चर्मणे नमः ।
खड्गाय मुशलादिभ्यः सर्वास्त्रेभ्यो नमो नमः ।।
एवं सम्पूज्य देवेशं अर्घ्यंपूजाकृतेऽर्पयेत् ।
नालिकेरेण शुभ्रेण भक्तियुक्तेन चेतसा ।।

अर्घ्यमन्त्रः—

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य ! नमो नमः ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं आमलक्या सहितो हरे ! ।।
आमलकीसहिताय श्रीपरशुरामायार्घ्यं नमः ।

त्वत्प्रसादाद्भार्गवेश सर्वं ! संयातु कायिकम् ।।
वाचिकं मानसं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ।
परिक्षयं तथारोग्यं धनधान्यसुसम्पदः ।।
सन्तानन्तस्य सौभाग्यं विपुलं तु कुलं भवेत् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति दिव्यसौख्यं निरन्तरम् ।।
अन्ते तु वासुदेवे मे भक्तिस्त्वच्चरणे प्रभो ! ।
जनार्द्दन हृषीकेश भूतावास सुरार्चित ! ।।
राम राम महाबाहो कार्त्तवीर्यविनाशन ! ।।
एतत्सर्वं मया दत्तं ज्ञानज्ञेय तवाच्युत ! ।।
मामुद्धर जगन्नाथ ! दयां कृत्वा ममोपरि ।
इति श्रीपरशुरामप्रार्थनामन्त्रवर्गकः ।।

अथ धात्रीसिञ्चनमन्त्रः—

पितामहा गताः सर्वे ह्यपुत्रा ये च गामिनः ।
वृक्षयोगिनता ये च ये च ब्रह्माण्डमध्यगाः ।।
पिशाचयोनिं ये प्राप्ता गता क्रूरगतिञ्च ये ।
पिवन्तु ते मया दत्तं धात्रीमूलं सदा पयः ।।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु धात्रीमूलनिषेचनात् ।
ततो जागरणं कृत्वा भक्तिभावेन चेतसा ।।
वादनैर्गीतनृत्यैश्च धर्माख्यानैः परैरपि ।
वैष्णवैश्च कथाख्यानैः क्षपयेच्छर्वरीं च ताम् ।।
शुभग्रहा भूतपतिर्यक्षचया
ब्रह्मादयो ये च गणाः प्रसन्नाः ।
लक्ष्मीः स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च
गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ।
एवमाराधयेद्विद्वान्भगवन्तं श्रिया सह ।

कृतकृत्यो भवेन्नित्यं विश्वस्योद्धरणे प्रभुः ।।

सर्वत्र पापनाशिनी फाल्गुने तु **गोविन्दद्वादशी**त्येवमपि सैवाभिधीयते। **ब्रह्मपुराणे वसिष्ठमान्धातृसंवादे**—

फाल्गुनेऽमलपक्षे तु पुष्यर्क्षे द्वादशी यदा ।
गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी ।।
तस्यामुपोष्य विधिवन्नरः संक्षीणकल्मषः ।
प्राप्नोत्यनुत्तमां सिद्धिं पुनरावृत्तिवर्जिताम् ।। इति ।।

अथ फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां वसन्तदोलोत्सवः कार्यः ।
तदुक्तं श्रीमत्कुमारैः—

फाल्गुनस्य तु राकायां मण्डयेद्दोलमण्डपम् ।
पश्चात्सिंहासनं पुष्पैर्नूतनैर्वस्त्रचित्रकैः ।। इति ।।

तथा ब्रह्मपुराणे—

तपस्यमासि राकायां यदोत्तरा फाल्गुनी भवेत् ।
तदा दोलोत्सवः कार्यस्तत्र श्रीपुरुषोत्तम ! ।। इति ।।

सा च विद्धाधिके परेद्युरेव—

भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन ।
वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ ! सावित्रीव्रतमुत्तमम् ।।

इति सावित्रीव्रतप्रकरणे स्मार्त्तग्रन्थेषु ब्रह्मवैवर्त्तोक्तेः ।।

ऋक्षाभावे तिथावेव कार्यः—

ऋक्षाभावे तिथौ कार्यः सदा सम्प्रीतये मम ।।

इतिस्कान्दोक्तेः ।

तिथिश्शरीरं तिथिरेव कारणं
तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम् ।।

इति लल्लोक्त्या तिथिरेव तन्मूलकत्वाच्च । तिथ्यभावे नक्षत्रमात्रेण तदुत्सवः कर्तुमशक्यः—

तिथिष्वविद्यमानासु कर्म कुर्वन्ति ये नराः ।
वृथा भवेत्कृतं तस्य चात्मानं नरकं नयेत् ।।

इति गर्गोक्तेः ।

तद्विधिस्तु भविष्यतः श्रीमदौदुम्बराचार्येण दर्शितः तथाहि—

क्रमोऽत्राथमुपवने कृत्वा मण्डपसंस्क्रियाम् ।
चूतपल्लववल्लरीकदलीस्तम्भमुख्यकैः ।।
तन्मध्ये वेदिकां न्यस्त्वा तत्र कोणप्रभृतिषु ।
दिव्यस्तम्भप्रभृतिकान् दोलावयवकान् क्रमात् ।।
छत्रचामरसंवृतध्वजपताकादिभिः ।
कारयित्वा ह्युपस्कारैश्चिह्नितं सर्वतोदिशम् ।।
राधाकृष्णौ समानयेत्तत्र तु वैष्णवैः सह ।
गीतनृत्यादिभिर्यानैर्वेदवादित्रनिःस्वनैः ।।
प्रीत्या स्नेहेन तोषयेन्महाभोगप्रभृतिभिः ।
केशरादिबहुरागैः सुरभीकृतवारिभिः ।।
विविधैश्चूर्णकैरङ्गैः राधाकृष्णौ निषेचयेत् ।
दोलारूढौ श्रियं कृष्णं नानारागविचित्रितम् ।।
आदोलयेद्व्रशनया मन्दमन्दं सुगीतिभिः ।
मुख्यो ज्वलरसाभिज्ञो यथाभावं व्यवहरेत् ।।
नानारसमयी लीला वसन्तकालनिर्मिताः ।
नानाभाषाप्रबन्धैश्च वसन्तरागसूचिकाः ।।
समानोपासकैः सद्भिर्गापयेद्रसवेदिभिः ।
गायकान्शेषरागाद्यैश्चर्चयेच्च प्रतोषयेत् ।।
विविधरागविक्रीणान्महाप्रसादपूरितान् ।
यथोचितनृत्तनृत्तीन्सत्कृत्यतान्विसर्जयेत् ।।

तैः हि सह यथागति श्रीकृष्णं स्वाश्रमं नयेत् ।
एवं कृते महोत्सवे भजनानन्दमाप्नुयात् ।।
श्रीकृष्णः श्रीमुखेनाह भविष्योत्तरके तथा ।
व्रते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां
प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च ।
सम्प्राप्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन
सत्यं हि पार्थ ! पुरुषोऽब्दशतं सुखी स्यात् ।।
एवमाराध्य राकायां दोलारुढे हरिश्रियौ ।
फाल्गुने कृतकृत्यः स्याद्विश्वस्योद्धरणे क्षमः ।।

इति स्वधर्मामृतसिन्धौ सप्तदशस्तरङ्गः ।। १७ ।।

अथ चैत्रकृत्यम् ।।

तत्र कृष्णप्रतिपद्यपि अयं दोलोत्सवः कार्यः लोकप्रसिद्धत्वात्—

दोलासंस्थं तु ये कृष्णं पश्यन्ति मधुमाधवे ।।

इति वक्ष्यमाणात्सामान्यवाक्याच्च । सा प्रतिपदौदयिकी ग्राह्या—

प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ।

इति भविष्योक्तेः ।

दिनद्वये तथात्वेऽपि पूर्वा प्रतिपद् उदये यत्र दिनद्वयेपि वर्त्तते तत्रोत्सवादौ पूर्वैव-"**वृद्धौ साम्ये क्षयेपि चेति**" **भृगुवाक्यात्** । अत्र साम्यक्षयेति विशेषणात् विद्धसमन्यूनपक्षेपि सैव **इति विवक्षितमेव** । **तत्र तैलाभ्यङ्गः**—

वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ।
तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ।।

इतिवृद्धवसिष्ठवचनात् । प्रसङ्गादिदमुक्तम् । तत्र प्रपादानमप्युक्तं **भविष्ये**—

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्र महोत्सवे ।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत् ।।

इत्युपक्रम्य—

ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान् मन्त्रेणानेन मानवः ।
प्रपेयं सर्वसामान्याद्भूतेभ्यः समपादिता ।।
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः ।
अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ।। इति ।।

किञ्च—

प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना ।
प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ।।
ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।

तन्मन्त्रः—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
अस्य प्रदानात्सफला मम सन्तु मनोरथाः ।।
अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ।
प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ।। इति ।।

प्रसङ्गादिदमप्युक्तम् ।।

तत्र कृष्णत्रयोदशी शनौ शतभिषायुता वारुणी । तत्र गङ्गास्नानं महाफलं तदुक्तं कल्पतरौ ब्राह्मे—

मधौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषायुते ।
वारुणीति समाख्याता शुभे तु महती स्मृता ।। इति ।

स्कान्दे—

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ।
गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहाधिका ।।
शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।

महामहेति विख्याता सा कोटिकुलमुद्धरेत् ।। इति ।।

ब्रह्माण्डपुराणे—

वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ।।

अन्यत्रापि—

चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता
त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे ।
योगे शुभे सा महती महत्या
गङ्गाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या ।। इति ।।

प्रसङ्गादिदमप्युक्तम् ।।

तत्र शुक्लनवम्यां श्रीमद्रामचन्द्रावतरणम्, तथा चागस्त्यसंहितायां—

चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ।।
केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसङ्ग्रहात् ।
चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ।।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ।। इति ।।

भारते वनपर्वणि—

चैत्रशुक्लनवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्षयुक्तायां मध्याह्ने कौशले भृगौ ।।

इदं च व्रतं नित्यं काम्यं च—

यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते मोहाद्विमूढधीः ।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ।।
उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम् ।
तस्मिन्दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ।।

इत्यगस्त्यसंहितोक्तेः ।

किञ्च नारदपञ्चरात्रेपि—

अष्टमीसहिता त्याज्या नारायणपरायणैः ।
सर्वसिद्धान्तविज्ञानं वैष्णवानां विदुर्बुधाः
पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ।
तस्मादुत्तरसंयोगि मतं वैष्णविकं व्रतम् ॥
सर्वव्रतफलावाप्तेर्नवमीं दशमीयुताम् ।
उपोष्य हरिसन्तुष्टिं विदध्याच्छुद्धवैष्णवः ॥

इत्युक्तम् ।

तथाऽगस्त्यसंहितायामपि—

नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम् ॥ इति ॥

किञ्च-यदा विशुद्धाधिकपक्षे परदिने किञ्चिन्नवमी वर्त्तते तदा न पूर्वदिनेऽष्टमीविद्धायां तद्व्रतम्, तथा पारणापि न वृद्धिं गतायां नवम्यामिति द्वयोर्निवारणाय-"**उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणमिति**" विशेषणद्वयमुक्तम् । अनेन शुद्धाऽधिकविषयोपि कथितस्तथापि स्फुटतरज्ञानायेदमुच्यते । क्षुद्धाऽधिकपक्षे तिथ्यन्ते पारणाकर्त्तव्याभिप्रायेण किञ्चिन्मात्रनवमी परदिने वर्त्तते तत्र पारणानिवारणाय तथैकादशीव्रताङ्गदशम्यामेकभुक्तविधिविशेषपालनाय च दशम्यामेव पारणमित्यूह्यम् । ननु क्वचिच्छुद्धावद्विद्धापि ग्राह्येति प्रतीतिः पारणानियमवाक्यानुरोधादिति चेन्न । जन्माष्टम्यादावपि स्वजातीयत्वेन तथा प्रसङ्गात् प्रकृतेरेव नियमकरणे मानाभावात् । तस्मान्नियमस्तु पूर्वोक्तविद्धाधिकादिसम्भवाभिप्रायेण बोध्यः-पूर्ववेधस्य सर्वथा हेयत्वात्, विद्धाविधायकविशेषवाक्यस्याश्रवणाच्च । परदिने केवलदशम्यामेव तद्व्रतानुष्ठानं सम्प्रतिपन्नम् । ननु कदाचिद्रामनवमीव्रतानन्तरं पारणादिने एवैकादशी-

व्रतं स्यात्तदा रामनवमीव्रतस्यासमाप्तिरूपविधिविलोपः—

पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम् ।

असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद्व्रतान्तरम् ।

इति विष्णुधर्मोत्तरवाक्यानुरोधादिति चेन्न ।

न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः ।।

इति नारदीयवचोभिस्तदुभयव्रतस्यैकदैवतत्वेन विरोधाभावात् । वेधकालस्तु पूर्वत्र निरूपित एव, तदनुसारेणैवाष्टमीविद्धात्यागवाक्यं नेयम् ।। न च "**प्रतिपत्प्रभृतय**" इत्यादि **स्कन्दपुराणवाक्यात्** हरिवासरवर्जिताः प्रतिपत्प्रभृतयः सूर्योदयादासूर्योदयं सम्पूर्णास्ततस्तद्वेधः सूर्योदये ग्राह्य इति शंक्यम् । तिथेः पूर्णतायाः वेधविशेषे नियामकत्वाभावात् । "**नवमी चाष्टमीविद्धा**" इत्यादिवाक्यस्य विशेषवाक्यं विना सूर्योदयवेधपरत्वासंभवात् **स्कन्दवाक्ये हरिवासर**पदस्य विष्णुव्रततिथिमात्रपरत्वेन व्याख्याततत्वाच्च । एवमग्रेपि बोध्यम् ।

अथ श्रीमद्रामनवमीव्रतस्य माहात्म्यम् अगस्त्यसंहितायाम्—

श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका ।

तस्मिन्दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तितः ।।

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म तद्भवक्षयकारकम् ।

कुर्याद्रामनवम्यां य उपोषणमतन्द्रितः ।।

न मातुर्गर्भमाप्नोति स वै रामप्रियो भवेत् ।

तस्मात्सर्वात्मना सर्वे कृत्वैतन्नवमीव्रतम् ।

मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।। इत्यादि ।।

तत्रागस्त्यसंहितातः इदं सर्वं संक्षिप्योच्यते ।

तच्च धनाधिक्ये सत्यष्टम्यां यथाविधि स्नानादिकं नित्यकृत्यं कृत्वा आचार्यानुमत्या श्रीराममूर्ति सुवर्णपलेन तदर्द्धेन वा रौप्यैणे वा लेप्यां

लेख्यां वा कुर्यात्। वामाङ्गे जानकीं च कलशोपरि ताम्रपात्रे संस्थाप्य लक्ष्मणादींश्च यथासम्भवं संस्थाप्य स्नानधूपादिभिः सम्पूज्य तत्तत्प्रसादान्नमेकभक्तविधिना सपरिकरो भुक्त्वा रात्रिं समापयेत्।

तत्रैकभक्तनिवेदनमन्त्रः—

नवम्या अङ्गभूतेन एकभक्तेन राघव।
इक्ष्वाकुवंशतिलक! प्रीतो भव रघूद्वह!॥

नवम्या प्रातः समुत्थाय कृतप्रातःकृत्यः श्रीरामं समभ्यर्च्य व्रतं कुर्याद्रात्रौ जागरणं कृत्वा पारणादिने स्नानादिकं कृत्वा श्रीरामपूजनं कुर्यात्।

तत्रार्घ्यमन्त्रः—

दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।
दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च।
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ!॥ इति॥

श्रीराममूर्त्तिं श्रीगुरवे समर्पयेत्। **मूर्त्तिसमर्पणमन्त्रः—**

अस्यां रामनवम्यां तु समाराधनतत्परः।
उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि॥
इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां सुप्रयत्नतः।
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते॥
प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे।
अनेकजन्मसिद्धानि लघूनि च महान्ति च॥ इति॥

तत्र पारणं कुर्यात्। **पारणमन्त्रः—**

तव प्रसादस्वीकाराद्कृतं यत्पारणं मया।
व्रतेनानेन सन्तुष्टः स्वस्मिन्भक्तिं प्रयच्छ मे॥ इति॥

तत्र शुक्लैकादश्यां पुष्पदोलोत्सवः कार्यः। **तदुक्तं गारुडे—**

चैत्रे मासि सिते पक्षे दक्षिणाभिमुखं हरिम् ।
दोलारूढं समभ्यर्च्य मासमान्दोलयेत्कलौ ।। इति ।

तथा ब्राह्मे—

चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ।
आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः ।। इति ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तस्य नित्यत्वमुक्तं गारुडे—

दक्षिणाभिमुखं देवं दोलारूढं सुरेश्वरम् ।
सकृद्दृष्ट्वा तु गोविन्दं मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।
सर्वपुण्यफलावाप्तिर्निमेषैकेन जायते ।
दोलासंस्थं तु ये कृष्णं पश्यन्ति मधुमाधवे ।। इति ।

व्यतिरेकं तु कुमारा आहुः—

एकादशीवारमुपेत्य शुक्ले
पक्षे न चैत्रे कुरुते यथार्हम् ।
दोलोत्सवं कृष्णसमर्चको यः
पूजा मृषा तस्य बहिर्मुखस्य ।। इति ।।

तथा पाद्मे—

उर्जे व्रतं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपर्व च ।
चैत्रे तु दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ।। इति ।।

तन्माहात्म्यं चोक्तं तत्रैव—

दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम् ।
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते घूर्णने कृते ।।
तावत्तिष्ठन्ति पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि ।
यावन्नान्दोलयेद्भूप ! कृष्णं कंसविनाशिनम् ।।
आन्दोलनदिने प्राप्ते रुद्रेण सहिताः सुराः ।
कुर्वन्ति प्राङ्गणे नृत्यं गीतं वाद्यं च हर्षिताः ।।

ऋषयो गणगन्धर्वा रम्भाद्यप्सरसां गणाः ।
वासुकिप्रमुखा नागास्तथा देवाः सुरेश्वराः ।।
दोलयात्रां समायान्ति विष्णुदर्शनलालसाः ।
दोलयात्रानिमित्तं तु दोलाहे मधुमाधवे ।।
भूतानि सन्ति भूपृष्ठे ये केचिद्देवयोनयः ।
समायान्ति महीपाल ! कृष्णे भावे स्थिते ध्रुवम् ।।
विष्णुं दोलास्थितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यस्योत्सवो भवेत् ।
तस्मात्कार्य्यशतं त्यक्त्वा दोलाहे उत्सवं कुरु ।।
प्रल्हादे तु समायाते विष्णुदोलावरोहणम् ।
कुरुते पाण्डवश्रेष्ठ ! वरं दत्तमनुस्मरन् ।।
दोलास्थितस्य कृष्णस्य येऽग्रे कुर्वन्ति जागरम् ।
सर्वपुण्यफलावाप्तिर्निमेषेणैव जायते ।।
दोलासंस्थं तु ये कृष्णं पश्यन्ति मधुमाधवे ।
क्रीडन्ति विष्णुना सार्द्धं वैकुण्ठदेववन्दिताः ।।

तत्र शुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः श्रीमत्कुमाराः—

मधुमासे सिते पक्षे द्वादश्यां दमनोत्सवम् ।।
आगमोक्तेन मार्गेण कुर्याद्भक्तो ह्यतन्द्रितः ।। इति ।।

नारदः—

चैत्रे मासि तथा विष्णोः कार्यो दमनकोत्सवः ।
वैष्णवैः श्रद्धया पुण्यो जनतानन्दवर्द्धनः ।।

स च पारणादिने द्वादश्यभावे तु त्रयोदश्यां कर्त्तव्यः तदुक्तं **पाद्मे**—

पारणाहे न लभ्यते द्वादशीघटिकापि च ।
तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रा दमनार्पणे ।। इति ।।

दमनकोत्सवविधिस्तु तत्प्रतिपादकबोधायनादिमुनिवचनसारार्थबोधकैः **श्रीमदौदुम्बराचार्यवाक्यै**र्बोध्यस्तथाहि—

तत्सिद्ध्यर्थं कृष्णप्रार्थना तथोक्ता सनकादिभिः ।
उपवासेन त्वां देव ! तोषयामि जगत्पते ! ।।
कामक्रोधादयो ह्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः ।
एवं विज्ञाप्य सद्गुरोराज्ञामादाय संनतः ।।
प्रातःस्नानं ततः कृत्वा महापूजां विधानतः ।
राधाकृष्णौ समभ्यर्च्य सन्ध्याकाले स्वयं व्रजेत् ।।
शुद्धो दमनकस्थाने कामदेवं तु तत्र वै ।
समभ्यर्च्य तदाज्ञयाऽवचिनुयाद्दमनकम् ।।

अवचयमन्त्रः—

राधिकाकृष्णपूजार्थं त्वां गृह्णामि दमनकम् ।
त्वामाश्रित्य करिष्यामि त्वदुत्सवं हरिप्रियम् ।।
इति प्रार्थ्याऽवचित्याऽथ ततः सम्प्रोक्षणादिभिः ।
संस्कृत्याशोकमूलं तं तु नयेद्विधानकोविदः ।।
तदलाभे स्थलं सम्यग्विधाय तत्र तं स्मरेत् ।
अशोकं प्रार्थयेत्कार्ष्णि बौधायनमनुस्तथा ।।
अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन ! ।
शोकार्त्ति हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ।।
इति सुगन्धपुष्पाद्यैरशोकमर्च्य वै ततः ।
वसन्तकालमार्चयेन्मत्तो वसन्तपूजने ।।
वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रिय ! ।
सहस्रमुखसंवाह कालरूप ! नमोस्तु ते ।।
ततो दमनमभ्यर्च्य कामदेवं च पूजयेत् ।।

तत्र मन्त्रः—

नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे ।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते ।।

इतीष्ट्वा कामदेवं तं निजगृहं समानयेत् ।
अथाधिवासनं कृत्वाग्रे श्रीकृष्णराधयोः ।।
सर्वतोभद्रमण्डलं बध्वोपरि वितानकम् ।
संस्थाप्य तत्र कलशं तत्र चैव दमनकम् ।।
सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यमुख्यकैः ।
उपचारैः सुसम्पूज्य समाह्वयेन्मनुस्तथा ।।
पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः ।
दमन! त्व मिहागच्छ सांनिध्यं कुरु ते नमः ।।
इति संवाह्य संस्थाप्य कामदेवरती रतः ।
सन्निधाप्य दमनकं सम्पूजयेद्विधानतः ।।

क्लीं कामदेवाय नमः ह्रीं रत्यै नमः- इत्यैन्द्रयां गन्धपुष्पादिना दिशि कामं सभार्यमर्चयेत् । एवं **भस्मशरीराय नम**- इत्याग्नेय्यां, **अनन्तायनमः**-इति दक्षिणस्यां, **मन्मथाय नमः**- इति नैऋत्यां·**वसन्तसखाय नमः**-इति वारुण्यां, **स्मराय नम**-इति वायव्यां, **इक्षुचापाय नमः**- इति कौबेर्यां, **पुष्पबाणाय नमः**-इति दमनस्यैशान्याम् ।

अक्षतगन्धकुसुमैर्धूपदीपोपहारकैः ।
इक्षुताम्बूललाजाद्यैः पूजयित्वा दमनकम् ।।
पुष्पबाणाय विद्महे कामदेवाय धीमहि ।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ।।

इत्येवं कामगायत्र्याऽभिमन्त्र्याष्टोत्तरं शतम् ।
पूजयित्वा ततः कृष्णं प्रार्थयेत विशेषतः ।।

तत्र मन्त्रः—

तुभ्यं निवेदयिष्यामि प्रातर्दमनकं शुभम् ।
सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे ।।
इति सम्प्रार्थ्य दमनं कलशोपरि संस्थितम् ।

अस्त्रावगुण्ठितं रक्षेन्नृसिंहैकाक्षरैस्ततः ।।
सम्पूज्य हरिसद्गुरुं ततो जागरणं चरेत् ।
जागरे कृष्णमातोष्य प्रातःकृत्यं समाचरेत् ।।
कृष्णं नत्वा तथा स्नात्वा नित्यकृत्यं विधाय च ।
ततो दमनकोत्सवाङ्गतया विधाय पूजनम् ।।
समादद्याद्दमनकं तदादानमनुस्तथा ।
देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक ! ।।
हृत्स्थान्पूरय मे विष्णो ! कामान्कामेश्वरप्रिय ! ।
इत्यनेनैव मन्त्रेण हस्ताभ्यां तं दमनकम् ।।
घण्टाघोषादिनादाय श्रीकृष्णाय समर्पयेत् ।।

कुमाराः—

परमानन्दसमुद्भूता दिव्या दमनमञ्जरीः ।
निवेद्या विष्णवे भक्तैः सर्वपूजाफलेप्सुभिः ।।
तत्रापि मूलमन्त्रेण दमनं हरयेऽर्पयेत् ।।

प्रार्थनामन्त्रः—

इमं दमनकं देवं ! गृहाण मय्यनुग्रहात् ।
इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन् ! परिपूरय ।।
ततः सम्पूज्य श्रीकृष्णं नानामणिप्रभृतिभिः ।
गन्धाद्यैर्महतीं पूजां कृत्वा परमवैष्णवैः ।।
महोत्सवः प्रकर्त्तव्यो नृत्यवाद्यादिगीतिभिः ।
कृष्णाग्रे स्थापितं कुम्भसलिलं कृष्णपादयोः ।।
सन्निक्षिप्य जलक्रीडां तत्राह्नि कारयेद्धरिम् ।
ततः सम्पूज्य सद्गुरुं वासोलङ्कारबहुभिः ।।
श्रद्धया पूजयेत् सन्तः ततोऽश्नीयात्स वैष्णवः ।
राधाकृष्णावशेषान्नं गृहीत्वा तं दमनकम् ।।

वसन्तसमयपुष्पमाहात्म्यं सन्निशामयेत् ।

तथा स्कान्दे—

दमनकेन देवेशं सम्प्राप्ते हरिवासरे ।
सम्पूज्य गोसहस्रस्य मुने ! संलभते फलम् ॥
मल्लिकाकुसुमैर्देवं वसन्ते गरुडध्वजम् ।
अर्चयेत्परया भक्त्या मुक्तिभागी भवेत्तु सः ॥

विष्णुधर्मे प्रह्लाद—

मरुको दमनश्चैव सद्यस्तुष्टिकरो हरेः ।
यथा तुलसी कल्याणी मुकुन्दपदवल्लभा ॥ इति ॥

इदं शुक्रास्तादावपि कार्य्यम्—

उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् ।
ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्त्तनम् ॥
कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येपीति विनिश्चयः ॥

इति श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायस्थशेषसूरीकृते गोविन्दार्णवे बृहद्गार्ग्यवचनात् ॥

इतिस्वधर्मामृतसिन्धौ अष्टादशस्तरङ्गः ॥ १८ ॥

अथ वैशाखकृत्यम् ॥

तत्र प्रातःस्नानं विष्णुस्मृतिपाद्मयोरुक्तं—

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते ।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥ इति ॥

तत्र सौरमास उक्तः अन्यदपि पक्षमुक्तम् पाद्मे—

मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ।
पञ्चदश्यां च भो वीर ! मेषसंक्रमणेपि वा ॥
वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ इति ॥

तत्रैव मन्त्रः—

वैशाखं सकलं मासं मेषसङ्क्रमणे रवौ ।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ।। इति ।।

तत्रैव पातालखण्डे श्रीनारदाम्बरीषसंवादे—

माधवे मासि सम्प्राप्ते मेषस्थो कर्मसाक्षिणि ।
केशवप्रीतये कुर्य्यात् केशवव्रतसञ्चयम् ।।
दद्यादनेकदानानि तिलाज्यप्रभृतीन्यपि ।
जन्मकोटिसमुद्भूतपातकान्तकराणि च ।।
जलान्नशर्कराधेनुतिलधेनुमुखानि च ।
वित्तमानेन देयानि दानानीप्सितसिद्धये ।।
वैशाखे विधिना स्नानं दानं नद्यादिके बहिः ।
हविष्यं ब्रह्मचर्य्यं च भूशय्यानियमस्थितिः ।।
व्रतं दानं दमं देवमधुसूदनपूजनम् ।
अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं हरति दारुणम् ।।

किञ्च—

तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् ।
दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ।।
माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ।
तिलोदकसुवर्णान्नं शर्कराम्बररोहिणीः ।।
पादत्राणातपत्राम्बुकुम्भान् दद्याद्द्विजातिषु ।
त्रिसन्ध्यं पूजयेदीशं भक्तितो मधुसूदनम् ।।
साक्षाद्विमलया लक्ष्म्या समुपेतं समाहितः ।।

अथ सामान्यतो वैशाखमाहात्म्यं तत्रैव
श्रीनारदाम्बरीषसंवादे-

न माधवसमो मासो न माधवसमो विभुः ।

पोतो विदुरिताम्भोधिमज्जमानजनस्य यः ।।
दत्तं जप्तं हुतं स्नातं यद्भक्त्या मासि माधवे ।
तदक्षयं भवेद्भूप! पुण्यं माधववल्लभे ।।

किञ्च—

वैशाखान्तानि पापानि सूर्य्यान्तानि तमांसि च ।
परापकारपैशुन्यप्रान्तानि सुकृतानि च ।।
कार्त्तिके मासि यत्किञ्चित्तुलासंस्थे दिवाकरे ।।
स्नानदानादिकं राजंस्तत्परार्द्धगुणं भवेत् ।
तस्मात्सहस्रगुणितं माघे मकरगे रवौ ।
ततोपि शतसंख्याकं वैशाखे मेषगे भगे ।।
ते धन्यास्ते सुकृतिनो नरा वैशाखमासि ये ।
प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयन्ति मधुद्विषम् ।।

किञ्च—

पुनः कलियुगे राजन्नेतद्गोप्यं भविष्यति ।
अश्वमेधादिकं यस्मान्माहात्म्यं माधवस्य च ।।
तस्मिंस्तिष्ये नरैः पापैः गन्तव्यं नरकार्णवे ।
अतस्तु विरलस्तस्य प्रचारोऽजेन निर्मितः ।।
तत्र शुक्लतृतीया याऽक्षयतृतीयेत्युच्यते ।।

तस्यां यत्कृत्यं तद्वर्णितं मात्स्ये—

वैशाखे मासि शुक्लायां तृतीयायां जनार्दनः ।
यवानुत्पादयामास युगं च कृतवान्कृतम् ।।
ब्रह्मलोकात्त्रिपथगां पृथिव्यामवतारयत् ।
तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ।।
यवान्दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् ।

पाद्मे श्रीवाराहधरणीसंवादे—

त्रेतायुगं तृतीयायां शुक्लायां मासि माधवे ।।

प्रवृत्तं च त्रयीधर्माः प्रवृत्तास्ते प्रवर्त्तिताः ।

अक्षया सोच्यते लोके तृतीया हरिवल्लभा ।।

स्नानेदानेऽर्चने श्राद्धे जपे पूर्वजतर्पणे ।

येऽर्चयन्ति यवैर्विष्णुं श्राद्धं कुर्वन्ति यत्नतः ।

तस्यां कुर्वन्ति पुण्यानि धन्यास्ते वैष्णवा नराः ।।

तत्रैव श्रीपरशुरामावतरणं तदुक्तं स्कन्दभविष्ययोः—

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ ।

निशायां प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः ।।

स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते ।

रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम् ।। इति ।।

चन्दनार्पणं विशेषतः तत्रैव कुर्यात् । तच्चोक्तं श्रीमन्नारदपञ्चरात्रे-

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाऽक्षयसंज्ञका ।

तत्र मां लेपयेद्भक्तो लेपनैरपि शोभनैः ।।

प्रीतये मम यः कुर्यादुत्सवान्मम शाश्वतान् ।

चतुर्वर्गप्रदा ह्येते प्रत्येकं ते प्रकीर्तिताः ।। इति ।।

अथ तद्दिनं निर्णीयते । द्वयोरप्युत्सवनिमित्ते सा विद्धाधिके तु परेद्युरेव । तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

वैशाखस्य तृतीया या पूर्वविद्धा तु निन्दिता ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चतुर्थीसंयुता शुभा ।।

तथा वसिष्ठसंहितायां—

रोहिणीबुधयुक्तापि पूर्वविद्धा विवर्जिता ।

भक्त्या कृतापि संमोहात्पुण्यं हन्ति पुराकृतम् ।।

इत्यादिवचनैः पूर्वविद्धस्य सर्वथा परिहार्यत्वात् । कलामात्रेपि सा

पूर्णा तत्रोत्सवः कर्त्तव्यः ।।

तत्र शुक्लसप्तम्यां श्रीजाह्नव्युत्पत्तिः । तदुक्तं पाद्मे ब्राह्मे च—

वैशाखशुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा ।
क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात् ।।
तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम् ।। इति ।।

अथ वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयन्ती तदुक्तं नृसिंहपुराणे—

वैशाखस्य चतुर्द्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके ।
अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः ! ।।

पुनस्तत्रैव—

वैशाखशुक्लपक्षेतु चतुर्द्दश्यां निशामुखे ।
मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।।
वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम् ।। इति ।

स्वातिनक्षत्रयोगेन लभते दैवयोगतः ।
एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ।।

तथा—

सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते ।

तथा—

विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लङ्घयेत् पापकृन्नरः ।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।

अत एवेदमपि नित्यं काम्यं च सिध्यति इयमपि परविद्धैवोपोष्या न तु पूर्वविद्धा तथाच विष्णुधर्मोत्तरे—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च उपोष्या स्युः परान्विताः ।। इति ।।

ब्रह्मवैवर्त्तेपि—

एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च नानुपोष्या पूर्वान्विता ।। इति ।।

आगमे—

प्रिया चतुर्दशी भौमे कर्त्तव्या किल्विषापहा ।
कामविद्धा न कर्त्तव्या स्वातिभौमयुता यदि ।।

बृहन्नारसिंहे—

स्वातिनक्षत्रयोगे तु शनिवारे हि मद्व्रतम् ।
सिद्धयोगस्य योगे च लभ्यते दैवयोगतः ।।
सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम् ।
केवलं च प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं फलकांक्षिभिः ।।
वैष्णवैः न तु कर्त्तव्या स्मरविद्धा चतुर्दशी ।।

अथ तन्माहात्म्यम् तत्रैव श्रीप्रह्लाद उवाच—

नमस्ते भगवन्विष्णो नृसिंहवपुषोत्तम ! ।
त्वद्भक्तोऽहं सुरेशैक ! त्वां पृच्छामि च तत्त्वतः ।।
स्वामिस्त्वयि ममोत्पन्ना भक्तिर्बहुविधा कथम् ।
कथं ते सुप्रियो जातः करणं वद मे प्रभो ! ।।

श्रीनृसिंह उवाच—

कथयामि महाप्राज्ञ ! शृणु चैकाग्रमानसः ।
भक्तेर्यत्कारणं वत्स ! प्रियत्वस्य च यत्पुनः ।।
पुराकल्पे ह्यभूर्विप्रः किञ्चित्त्वं नाप्यधीतवान् ।
नाम्ना च वसुदेवो हि वेश्यायां तत्परो ह्यभूः ।।
तस्मिन् जन्मनि नैव त्वं चकर्थ सुकृतं कियत् ।
मुक्त्वा तु मद्व्रतं चैकं वेश्यासङ्गतिलालसः ।।
मद्व्रतस्य प्रभावेण भक्तिर्जाता तवेदृशी ।

श्रीप्रह्लाद उवाच—

श्रीनृसिंहाच्युत स्वामिन् ! कस्य पुत्रेण किं कृतम् ।
वेश्यायां वर्त्तमानेन कथं तद्धि कृतं मया ।।
आख्यानं विस्तरेणेदं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ।

श्रीनृसिंह उवाच—

पुराऽवन्तीपुरे ह्यासीत् ब्राह्मणो वेदपारगः ।
तन्नाम वसुशर्मेति सर्वलोकेषु विश्रुतम् ।।
नित्यं होमक्रियामेष करोति द्विजसत्तमः ।
ब्रह्मक्रियासु सततं सर्वासु किल तत्परः ।।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टाः सर्वे सुरोत्तमाः ।
तेनापि विद्यमानेन कृतं च दुष्कृतं कियत् ।।
तस्य भार्य्या सुशीलाऽभूद्विख्याता भुवनत्रये ।
पतिव्रता सदाचारा पतिभक्तिपरायणा ।।
जज्ञिरे तत्सुताः पञ्च तस्यां द्विजवरात्ततः ।
सदाचाराः सुविद्वांसः पितृभक्तिपरायणाः ।।
तेषां मध्ये कनिष्ठस्त्वं वेश्यायां तत्परः सदा ।
तां सन्निषेवमाणेन सुरापानं कृतं त्वया ।।
सदा पापरतस्त्वं हि नाकृथाऽध्ययनं भृशम् ।
विलासिन्या गृहे नित्यं वसतिर्ह्य भवत्तव ।।
एकदा तद्गृहे ह्यासीत्तया सह महान्कलिः ।
ततः कलहभावेन भोजनं न कृतं त्वया ।।
अज्ञानान्मद्व्रतं चक्रे व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
तया सह विवादेन रात्रौ जागरणं कृतम् ।।
वेश्याया अपि तत्सर्वं प्रज्ञातं तु त्वया समम् ।
रात्रौ जागरणे तस्याः सञ्जातं कामशोधनम् ।।
युवयोर्मद्व्रतं जातमज्ञानाद्बहुपुण्यदम् ।

येन चीर्णव्रतेनाद्य मोदन्ते दिवि देवताः ।।
सृष्ट्यर्थं तु ततो ब्रह्मा चक्रे मद्व्रतमुत्तमम् ।
मद्व्रतस्य प्रभावेण निर्मितं सचराचरम् ।।
ईश्वरेणापि तच्चीर्णं वधार्थं त्रिपुरस्य च ।
महिम्नैव व्रतस्यास्य त्रिपुरं संनिपातितम् ।।
अन्यैश्च बहुभिर्देवैः ऋषिभिश्च पुरातनैः ।
राजभिश्च महाप्राज्ञैर्विहितं व्रतमुत्तमम् ।।
एतद्व्रतप्रभावेण सर्वे सिद्धिमुपागताः ।
वेश्यापि मत्प्रिया जाता त्रैलोक्यसुखचारिणी ।।
ईदृशं मद्व्रतं वत्स ! त्रैलोक्ये चैव विश्रुतम् ।
धूर्तायाश्च विलासिन्या व्रतमेतदुपस्थितम् ।।
प्रह्लाद ! तेन ते भक्तिर्मयि जाताह्यनुत्तमा ।
सा वेश्या त्वप्सरा जाता दिवि भोगाननेकशः ।।
भुक्त्वा कामं विलीना तु त्वं प्रह्लाद विविष्ट माम् ।
कार्यार्थमवतारस्ते मच्छरीरात्पृथक् त्वसौ ।।
विधाय सर्वकार्याणि शीघ्रं मयि गमिष्यसि ।
य इदं व्रतमग्र्यं तु प्रविधास्यन्ति मानवाः ।।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।
अपुत्रो लभते पुत्रान् मद्भक्तांश्च सुवर्चसः ।।
दरिद्रो लभते लक्ष्मीं धनदस्य च यादृशी ।
तेजस्कामो लभेत्तेजो राज्येप्सू राज्यमुत्तमम् ।।
आयुष्कामो लभेदायुर्यादृशं तु शिवस्य च ।
स्त्रीणां व्रतमिदं साधु पुत्रदं भाग्यदं तथा ।।
अवैधव्यकरं तासां पुत्रशोकविनाशनम् ।
धनधान्यकरं चैव पतिप्रियकरं सुखम् ।।

सार्वभौमसुखं तासां दिव्यसौख्यं भवेत्ततः।
स्त्रियो वा पुरुषो वापि कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम्॥
तेभ्यो ददाम्यहं सौख्यं भुक्तिमुक्तिफलं तथा।
बहुनोक्तेन किं वत्स! व्रतस्यास्य फलस्य हि॥
मद्व्रतस्य फलं वक्तुं नाहं शक्तो न शङ्करः।
ब्रह्मा चतुर्भिर्वक्त्रैश्च नालं स्याज्जीविताविधि॥

नियममन्त्रः—

श्रीनृसिंह! महोग्रस्त्वं दयां कुरु ममोपरि।
अद्याहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय॥ इति॥

श्रीमदौदुम्बर आह—

चतुर्दशी महाव्रते तत्रायं विधिरुच्यते।
प्रातःस्नानादिकं कृत्वा मन्दिरसंस्क्रियां शुभाम्॥
आहूय वैष्णवान्सतः सन्ध्याकाले हि नृहरेः।
जन्म सम्भाव्य विधिना स्नाप्य पञ्चामृतादिभिः॥
महानैवेद्यमर्पयेत्सर्वं कृत्यं च कारयेत्।
लीलामुद्दीपयेद्धरेर्वैष्णवशास्त्ररीतितः॥
नृसिंहचरितं ख्यायाल्लीलानृसिंहसन्निधौ।
रात्रौ जागरणं कृत्वा राकाकृत्यमथाचरेत्॥ इति॥

बृहन्नारसिंहे—

मद्रूपं कारयेत्तत्र पुष्पस्तबकशोभितम्।
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूज्योऽहं च यथाविधि॥
उपचारैः षोडशभिर्मन्त्रैर्नामभिस्तथा।
ततः पौराणिकैर्मन्त्रैः पूजनीयो विशेषतः॥

तत्र चन्दनमन्त्रः—

चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुङ्कुममिश्रितम्।

ददामि ते प्रतुष्टयर्थं नृसिंह परमेश्वर ! ।। इति ।।

पुष्पमन्त्रः—

कालोद्भवानि पुष्पाणि तुलस्यादीनि वै प्रभो ।
पूजयामि नृसिंहेश ! लक्ष्म्या सह नमोऽस्तु ते ।।

धूपमन्त्रः—

कालागुरुमयं धूपं सर्वदेवसुवल्लभम् ।
करोमि ते महाविष्णो ! सर्वकामसमृद्धये ।।

दीपमन्त्रः—

दीपः पापहरः प्रोक्तस्तमसां राशिनाशनः ।
दीपेन लभ्यते तेन स्तस्माद्दीपं प्रदामि ते ।। इति ।।

अथ नैवेद्यमन्त्रः—

नैवेद्यं सौख्यदं चास्तु भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।
ददामि ते रमाकान्त ! सर्वपापक्षयं कुरु ।। इति ।।

अर्घ्यमन्त्रः—

नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते ! ।
अनेनार्घ्यप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ।। इति ।।

पूजान्ते प्रार्थनामन्त्रः—

पीताम्बर महाविष्णो प्रह्लादभयनाशकृत् ! ।
यथाभूतार्चने नाथ ! यथोक्तफलदो भव ।। इति ।।
रात्रौ जागरणं कुर्य्याद्गीतवादित्रनिस्वनैः ।
पुराणपठनं नित्यं श्रोतव्यं मत्कथानकम् ।।
ततः प्रभातसमये स्नानं कृत्वा ह्यतन्द्रितः ।
पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेन्मां प्रयत्नतः ।।

किञ्च—

मद्वंशे ये पुरा जाता ये जनिष्यन्ति मत्पुरः ।

तान् समुद्धर देवेश ! दुःसहाद्भवसागरात् ।।
पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुराशिभिः ।
तीव्रैस्तु परितप्तस्य महादुःखगतस्य मे ।।
करावलम्बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते ! ।
श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ! ।।
क्षीराम्बुधिनिवास त्वं प्रीयमाणो जनार्द्दन ! ।
व्रतेनानेन मे देव ! भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ।।
उपहारादिकं सर्वमाचार्य्याय निवेदयेत् ।
एवं प्रार्थ्य ततो देवं विसृज्य च यथाविधि ।।
दक्षिणाभिस्तु सन्तोष्य ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् ।
मम ध्यानसमायुक्तो भुञ्जीत सह बन्धुभिः ।। इति ।।

सम्पूर्णवैशाखकृत्यमनुष्ठातुमशक्तस्तिथित्रयं कुर्यादित्युक्तं पाद्मे—

त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां च दिनत्रये ।
सर्वाशक्तोपि विधिना नारी वा पुरुषोपि वा ।।
पूर्वोक्तनियमैर्युक्तः प्रातः स्नातः स्वशक्तितः ।
विमुक्तः पातकैः सर्वैः स्वर्गमक्षयमश्नुते ।।
वैशाख्यामपि शक्त्या वा भोजयेद्ब्राह्मणान्दश ।। इति ।।

तत्रापि पूर्णिमा श्रेष्ठा तथोक्तं पाद्मे—

मेषसङ्क्रममारभ्य तिथयस्त्रिंशदुत्तमाः ।
सर्वयज्ञाधिकाः पुण्याः पुराणेषु प्रकीर्तिताः ।।
तत्रापि पूर्णिमा पुण्या माधवी माधवप्रिया ।
येयं वराहकल्पस्य तिथिराद्या महाफला ।।

तथा—

स्नानदानार्चनश्राद्धक्रियापुण्यविर्वजिता ।
यस्यातीता च वैशाखी स नूनं निरयानलः ।।
न वेदेन समं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ।

न दानं जलगोतुल्यं न वैशाखीसमा तिथिः ।।

भविष्ये—

वैशाखी कार्त्तिकी माघी त्रितयोऽतीव पूजिताः ।
स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ! ।। इति ।।

तथा श्रीकुमाराः—

वैशाखे पूर्णिमायां तु जलस्थं जगदीश्वरम् ।
शुक्लस्यैकादशी यावत्पूजयेत्सम्प्रहर्षितः ।।

श्रीनारदः—

वैशाखे पूर्णिमायां वै जलस्थं जगदीश्वरम् ।
पूजयेद्वैष्णवो भक्त्या कृत्वोत्साहं मुदान्वितः ।।
गीतं वाद्यपताकाद्यैः कृत्वा पुण्यमहोत्सवम् ।
ज्येष्ठस्यैकादशी शुक्ला यजेत्तावत्प्रहर्षितः ।।

इति श्रीमन्निम्बार्कचरणचिन्तकशुकसुधीसङ्गृहीते
स्वधर्मामृतसिन्धौ एकोनविंशस्तरङ्गः ।। १९ ।।

अथ ज्येष्ठकृत्यम् ।।

जले भगवन्तं पूजयेत् । तथाहुः श्रीकुमाराः—

ज्येष्ठेमासि तु सम्पूर्णं जलमध्ये हरिं श्रिया ।
सेवयोपचरेन्नित्यमुपचारैरुपार्जितम् ।। इति ।।

गारुडे—

घनागमे प्रकुर्वन्ति जलस्थं वै जनार्द्दनम् ।
ये जना नृपतिश्रेष्ठ ! तेषां न नरको भवेत् ।।
स्वर्णपात्रेऽथवा रौप्ये ताम्रे वा मृण्मयेपि वा ।
तोयस्थं योऽर्चयेद्देवं शालग्रामसमुद्भवम् ।।
चक्राङ्कितं च भूपाल ! निवृत्ते मधुमाधवे ।
प्रतिमां च महाभाग तस्य पुण्यमनन्तकम् ।।
यावद्धराधरा लोके यावद्रत्नाकरा भुवि ।

तावत्तस्य कुले कश्चिन्न भवेत् भूप ! नारकी ।।
तस्माज्ज्येष्ठे सदा भूप ! तोयस्थं पूजयेद्धरिम् ।
वीततापो नरस्तिष्ठेद्यावदाभूतसंप्लवम् ।।
कृत्वा सुशीतलैस्तोयैस्तुलसीदलवासितैः ।
शुचिशुक्रगते काले पूजयेद्धरणीधरम् ।।
शुक्रशुचिगते काले येऽर्चयिष्यन्ति केशवम् ।
जलस्थं विविधैः पुष्पैर्मुच्यन्ते यमयातनात् ।।
जलस्रष्टा यतो विष्णुर्जलशायी जलप्रियः ।
तस्माद्ग्रीष्मे विशेषेण जलस्थं पूजयेद्धरिम् ।।
नीरमध्यस्थितं कृत्वा शालग्रामशिलोद्भवम् ।
यैरर्चितो महाभक्त्या सहितैः कुलपावनः ।।
कर्कराशिगते सूर्ये मिथुनस्थे विशेषतः ।
येनार्चितो हरिर्भक्त्या जलमध्ये महीपते ! ।।
द्वादश्यां तु विशेषेण जलस्थजलशायिनः ।
येनार्चनं कृतं तेन यज्ञकोटिशतं भुवि ।।
निक्षिप्य जलपात्रे तु मासे माधवसंज्ञके ।
माधवं येऽर्चयिष्यन्ति देवतास्ते नरा न हि ।।
पात्रे गन्धोदकं कृत्वा यः क्षिपेद्गरुडध्वजम् ।
द्वादश्यां पूजयेद्रात्रौ मुक्तिभागी भवेद्धि सः ।।
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिको छिन्नसंशयः ।
हेतुनिश्चयं विनैतेन पूजाफलसुभागिनः ।।

श्रीमदौदुम्बराचार्य आह—

उष्णस्य तारतम्येन वैशाखे ज्येष्ठ एव वा ।
प्रीणयेद्गन्धवारिणाऽपां मध्ये हि समर्पयेत् ।।
महाभोगं भगवते कर्त्तव्यं सर्वमाचरेत् ।

जलक्रीडार्थसामग्रीं सर्वां तदुपयोगिनीम् ।।
जलविहारमन्वहं सम्पाद्य कारयेद्धरिम् ।
तत्तदृतूद्भवैः पुष्पैः पूजयेद्विविधैर्विभुम् ।।
कृष्णार्पणेन वर्णितं तन्माहात्म्यं चतुःसनैः ।
केशवः केतकीपुष्पैर्मिथुनस्थे दिवाकरे ।।
येनार्चितो हरिर्भक्त्या प्रीतो मन्वन्तरं मुने ! ।
कर्कराशिगते सूर्ये केतकीपत्रकोमलैः ।।
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं सम्प्राप्ते दक्षिणायने ।
कृत्वा पापसहस्राणि महापापशतानि च ।।
तेऽपि यास्यन्ति विप्रेन्द्र ! यत्र विष्णुः प्रिया सह ।।इत्यादि।

तत्र शुक्ला दशमी दशहरेति तदुक्तं वाराहे—

दशम्यां शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि ।
अवतीर्णा ह्यधः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा ।।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ।। इति ।

ब्राह्मे—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ।
हरते दश पापानि तेन दशहरा स्मृता ।। इति ।

दशयोगास्तु स्कान्देऽभिहिताः—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ।
गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ।।
दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। इति ।

इह बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था सा पूर्वा परा चेद्यत्र योगबाहुल्यं सैवं ग्राह्या । तस्यां **नारायण्यै गङ्गायै नमो नम** इति मन्त्रेण गङ्गां पूजयित्वा—

नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा ।
भागीरथं हिमवन्तं गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।।

पूजयित्वा दशफलानि दशदीपान् दशप्रसृतितिलान् **गङ्गायै नम** इति मन्त्रेण दत्वा दशसक्तुपिण्डान् गुडपिण्डान् जले क्षिप्त्वा मत्स्यकच्छपमण्डूकादीनभ्यर्थ्य जले क्षिपेत् ।

एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
दशजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।। इति ।

गङ्गाया अभावेऽन्यस्यां सरिति कार्यं तदुक्तं स्कान्दे—

यां काञ्चित्सरितं प्राप्य दद्यादर्घं तिलोदकम् ।
मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकैरपि ।।

दशपापानि तु स्कान्देऽभिहितानि--

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।। इति ।
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।।
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
बितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।। इति ।

इति सर्वेषां कृत्यं प्रसङ्गादुक्तम् । अस्माकं विशेषतस्तत्र कर्त्तव्यं चन्दनकर्पूरकुङ्कुमघर्षितेन शैत्यजलेन श्रीराधाकृष्णौ स्नाप्य विशेषतः शैत्यगुणयुक्तान्नैवेद्यान् समर्पयेदिति ।

तत्र शुक्लैकादशी निर्जलेति तदुक्तं स्कान्दे—

ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ ! या शुक्लैकादशी भवेत् ।
निर्जलां तामुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान् ।।
प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ ।। इति ।

पाद्मे श्रीभीमसेन उवाच--

पितामह ! न शक्तोऽहमुपवासे पुनः पुनः ।
अतो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकमपि प्रभो ! ॥

श्रीव्यास उवाच—

वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के शुक्ला ह्येकादशी यदा ।
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥
स्नाने चाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः ।
उपयुञ्जीत नैवान्यद्व्रतभङ्गोऽन्यथा भवेत् ॥
उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा जलं बुधः ।
अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥
ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां स्नानमाचरेत् ।
जलं सुवर्णं दत्वा तु द्विजातिभ्यो यथाविधि ॥
भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी ।
एवं कृते तु यत्पुण्यं भीमसेन ! शृणुष्व तत् ॥
संवत्सरस्य या मध्ये एकादश्यो भवन्ति हि ।
तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ॥
इति मां केशवः प्राह शङ्खचक्रगदाधरः । इति ।
धनधान्यवहा पुण्या पुत्रभोगसुखप्रदा ॥
उपोषिता नरव्याघ्र ! इति सत्यं ब्रवीमि ते ॥
यमदूता महाकायाः करालाः कालरूपिणः ।
दण्डपाशधरा रौद्रा नोपसर्पन्ति तं नरम् ॥
पीताम्बरधराः शङ्खचक्रहस्ता मनोजवाः ।
अन्तकाले नयन्त्येनं वैष्णवं वैष्णवीं पुरीम् ॥ इति च ॥
तोयस्य नियमं यस्तु कुरुते वैष्णवोत्तमः ।
पलकोटिसुवर्णस्य यामे यामे सुपुण्यभाक् ॥
स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः ।

तत्सर्वं चाक्षयं प्राप्तमेतत्कृष्णस्य भाषितम् ।।
किं वा परेण धर्मेण निर्जलैकादशीं नृप ! ।
उपोष्य सम्यग्विधिना वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।। इति च ।
यैः कृता भीमसेनैषा निर्जलैकादशी शुभा ।
स्वकुलं तारितं सर्वं कुलातीतं तथा शुभम् ।।
आत्मना सह तैर्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरे । इति च ।।
आत्मद्रोहः कृतस्तैस्तु परैषा न ह्युपोषिता ।।
पापात्मनो दुराचारा दुष्टास्ते नात्र संशयः ।

किञ्च—

यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
उभौ तौ स्वर्गमाप्तौ हि नात्र कार्या विचारणा ।। इति ।।

तत्र पौर्णमास्यां ज्येष्ठास्नानं तदुक्तं विष्णुना—

ज्येष्ठा ज्येष्टयुता च स्यात्तस्यां स्नानात्परः पुमान् ।। इति।

सा च मूलविद्धा निषिद्धा—

मूलविद्धा न कर्त्तव्या ज्येष्ठा कामविनाशिनी ।। इति स्मृतेः।
इति स्वधर्मामृतसिन्धौ विंशस्तरङ्गः ।। २० ।।

-o-※-o-

अथाषाढकृत्यम् ।

तत्र कदम्बादिपुष्पैर्भगवन्तं पूजयेत् । तथाहुर्व्रतपञ्चके श्रीकुमाराः-

जातरूपनिभैर्विष्णुं कदम्बकुसुमैर्मुने ! ।
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं न तेषां सौरिजं भयम् ।।
घनागमे घनश्यामः कदम्बकुसुमार्चितः ।
ददाति वाञ्छितान्कामान् शतजन्मानि सम्पदः ।।
कदम्बकुसुमैर्देवं घनवर्णं घनागमे ।
येऽर्चयन्ति मुनिश्रेष्ठ ! तैराप्तं जन्मनः फलम् ।।

कदम्बकुसुमैर्हृद्यैर्येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ।
तेषां यमालयो नैव न जायन्ते कुयोनिषु ॥
न तथा केतकीपत्रैर्मालतीकुसुमैर्न हि ।
तोषमायाति देवेशः कदम्बकुसुमैर्यथा ॥
दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं प्रीतो भवति माधवः ।
किं पुनः पूजितो विप्र ! सर्वकामप्रदो हरिः ॥
यथा पद्मालयं प्राप्य प्रीतो भवति माधवः ।
कदम्बकुसुमं दृष्ट्वा तथा प्रीणाति लोककृत् ॥
सकृत्कदम्बकुसुमैर्हेलया हरिरर्चितः ।
सप्त जन्मानि देवर्षे ! तस्य लक्ष्मीर्न दूरगा ॥
कदम्बपुष्पगन्धेन केशवार्चा सुपूजिताः
जन्मायुतार्जितस्तेन निरतः पापसंचयः ॥

तत्र शुक्लपक्षे द्वितीयायां रथोत्सवः कार्यः—

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता ।
तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह ॥
यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून् ।

इति स्कन्दपुराणोक्तेः ।

वृक्षाभावेसति तिथ्यामेव कर्त्तव्यः—

ऋक्षाभावे तिथौ कार्या सदा सा प्रीतये मम ॥

इति तत्रैवोक्तेः ।

तिथ्यभावे तु न नक्षत्रेण तदुत्सवः कर्तुं शक्यः—

तिथिष्वविद्यमानेषु कर्म कुर्वन्ति ये नराः ।
वृथा भवेत्कृतं तस्य चात्मानं नरकं नयेत् ॥

इति गार्ग्योक्त्या तिथिं विना तन्निषेधात् ।

विद्धाधिके तु परदिने एव—

पूर्वविद्धदिने दत्तं यत्किञ्चित्पूजनं च वै ।

नैव गृह्णाति वैकुण्ठः पूजान्तद्दिनसंभवाम् ।।

इति नारदीयवचनात् ।

तत्र शुक्लैकादश्यां शयनोत्सवः कार्यः तदुक्तं ब्राह्मे—

एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान्हरिः ।
भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा ।। इति ।।

भविष्ये—

द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ! ।। इति ।।

अत्रैकादश्यां द्वादश्यां च शयनोत्सवः कार्य इति केचित्—

द्वादशी मिश्रिता ग्राह्या सर्वत्रैकादशी तिथिः ।।

इति पाद्मवाक्याद्वाक्यद्वयं सङ्गतमित्येके—

भविष्ये—

आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ।
आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्त्तनोत्थिता ।।

इति नक्षत्रपादयोग युक्तः ।

वाराहे तु—

आपादनियमस्तत्र स्वापे वा परिवर्त्तने ।
पादयोगो यदा न स्याद्दक्षेणापि तदा भवेत् ।। इति ।।
द्वादश्यां सन्धिसमये नक्षत्राणामसम्भवे ।
आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम् ।।

इति चोक्तम् ।

तत्र द्वादश्यां केचिच्छ्रवणयोगवदनुराधायोगरहितायामेव पारणं कार्यमित्याहुः । तन्न–"मैत्रमृक्षं कृते त्याज्य" मिति वायुपुराणोक्त्या तत्कृतयुगविषयत्वात् ।।

भगवच्छयनोत्सवविधिः श्रीमदौदुम्बराचार्यैरुक्तस्तथाहि—

द्वादश्यामेव क्षीराब्धिशयनोत्सव ईर्यते ।
राधाकृष्णौ तदा सम्यक् सम्पूज्याहूय वैष्णवान् ।।
तोषयित्वा यथाविधि वसनचन्दनादिभिः ।
सुच्छत्रचमरध्वजपताकासहितं हरिम् ।।
नरयानैर्जलाभ्यासं तं नयेन्नृत्यपूर्वकम् ।
दुग्धं च तत्र भूयिष्ठं जलालाभे निधापयेत् ।।
गृहे हि भावे तन्नीरं सर्वोपचारपूर्वकम् ।
तीरे पुष्पाञ्जलिं दत्वा सिंहासने स्थितं हरिम् ।।
धूपादिकोपहारां तां दत्वाऽर्पयेत मन्त्रतः ।
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।।
विबुद्धे तु विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत ! । इति ।।

तप्तमुद्राधारणमुक्तं श्रीकुमारैः भविष्ये—

शयिन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च ।
शङ्खचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः ।। इति ।

चक्रतीर्थे द्वारावतीस्थे । स्कान्दे श्रीकृष्णः—

दीक्षाकाले शयिन्यां च बोधिन्यां च यथाविधि ।
द्वारकायां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः ।। इति ।

कैश्चिद्वैष्णवधर्मविरोधिभिरशिष्टैः पृथ्वीचन्द्रोदयादिग्रन्थेषु मुद्राधारणं द्विजानां नास्तीति निर्णीतम् । ते उपेक्षणीयाः-सच्छास्त्रप्रतिकूलवादित्वात् । शास्त्रे तावत् वायुपुराणे—

अग्निनैव तु सन्तप्तं चक्रमादाय वैष्णवः ।
धारयेत्सर्ववर्णानां हरिसालोक्यसिद्धये ।।

सौपर्णे च भगवद्गरुडसम्वादे तप्तमुद्राप्रकरणे—

गरुत्मन्नविशेषेण सर्ववर्णेष्वयं विधिः ।
विप्रो वा क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रस्तथैव च ।।

पाद्मे--

अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा ।
ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तचक्रादिधारणम् ।।

तथा तत्रैवोत्तरखण्डे श्रीशिवोमासंवादे--

शङ्खचक्राङ्कनं कुर्याद्ब्राह्मणो बाहुमूलयोः ।
हुताग्निनैव सन्तप्य सर्वपापापनुत्तये ।।

तथा—

अधृत्वा विधिना चक्रं ब्राह्मणः प्राकृतो भवेत् ।

तथा—

न तस्य किञ्चिदश्नीयादपि क्रतुसहस्रिणः ।
सर्ववेदविदो वापि सर्वशास्त्रविशारदः ।।
अधृत्वा विधिना चक्रं ब्राह्मणः पतितो भवेत् ।

सामवेदमैत्रावरुणशाखायाम्—

"पवित्रमित्यग्निः अग्निर्वै सहस्रारः सहस्रारो नेमिर्नेमिना तप्ततनुर्ब्राह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति" इति ।।

ऋग्वेदवाष्कलसंहितायाम्—

चक्रं विभर्ति वपुषाऽभितप्तं
बलं देवानाममृतस्य विष्णोः ।
स एति नाकं दुरितानि विधूय
प्रयान्ति यद्यतयो वीतिरागः ।। इति ।

पुनः ऋग्वेदे--

अतप्ततनुर्न तदा मोक्षमश्नुते ।। इति ।।

छन्दोगपरिशिष्टे--

प्रतद्विष्णोरब्जचक्रे सुतप्ते
जन्माम्भोधिं वर्तते चर्षणीन्द्राः ।

मूले बाह्वोर्दधतेऽन्ये पुराणाः

लिङ्गान्यन्ये तप्तान्यायुधान्यर्पयन्ते ।। इति ।।

अथर्वपरिशिष्टे तप्तचक्रादिप्रकरणे--

देवासो यत्र वितते‍न बाहुना

सुदर्शनेन प्रयताः स्वर्गमायन् ।

येनाङ्किता मनवो लोकसृष्टिं

वितन्वते ब्राह्मणास्ततीति ।।

अत एव तदनादरे दोषः पाद्मे--

तत्र चक्राङ्कितं दृष्ट्वा ये निन्दति नराधमाः ।

अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ।।

अग्निपुराणे च श्रीदशरथहतपुत्रविलापे--

शिलाबुद्धिः कृता किं वा प्रतिमायां हरेर्मया ।

किं मया पथि दृष्टस्य विष्णुभक्तस्य कर्हिचित् ।।

तन्मुद्राङ्कितदेहस्य चेतसाऽनादरः कृतः ।

येन कर्मविपाकेन पुत्रशोको ममेदृशः ।।

तत्रैव शिशयिषोर्भगवतः अग्रे चातुर्मास्यनियमान् गृह्णीयात् ।

नियमोपक्रमकाल उक्तो ब्रह्मवैवर्ते--

आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।

नक्तं द्विजवरश्रेष्ठ ! गृह्णीयान्नियमं व्रती ।।

श्रीमत्कुमारैश्च--

एकादश्यां तु गृह्णीयात्सङ्क्रान्तौ कर्कटस्य च ।

आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्योदितं व्रतम् ।। इति ।

व्रतग्रहणप्रकारः हेमाद्रौ भविष्ये--

एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः ।

प्रभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ।।

चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि ।
इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं गुरु मेऽच्युत ! ।। इति ।

चातुर्मास्यनियमनित्यता व्रतपञ्चके भविष्ये—

यो विना नियमं मर्त्यो व्रतं वा जप्यमेव वा ।
चातुर्मास्यं नयेन्मूर्खो जीवन्नपि मृतो हि सः ।।

श्रीकुमाराः—

जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नराणां समुपार्जितम् ।
अकृत्वा नियमं विष्णोश्चातुर्मास्यव्रते कृते ।।
संक्षयं याति देवर्षे सर्वथा नात्र संशयः ।।

प्रार्थनामन्त्रः—

इदं व्रतं महाविष्णो ! गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ! ।।
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव ! पञ्चत्वं यदि मे भवेत् ।
तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्द्दन ! ।।

चातुर्मास्यनियमा उक्ताः स्कान्दे नागरखण्डे—

श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ।
दुग्धमाश्मयुजे मासि कार्त्तिके चामिषं त्यजेत् ।।

अत्रामिषं कलिञ्जादिकमित्यर्थः ।

भविष्ये—

श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ।
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत् ।।

स्कान्दे—

चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्त्तिनाम् ।
प्रथमे मासि कर्त्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः ।।
द्वितीये मासि कर्त्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम् ।

पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय ।।
द्विदलं बहुबीजं च वृन्ताकं चैव वर्जयेत् ।
नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र ! व्रतान्याहुर्मनीषिणः ।।

तथा--

जम्बीरं राजमाषाश्च मूलकं रक्तमूलकम् ।
कूष्माण्डं चेक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः ।।

तथा--

विशेषाद्बदरीं धात्रीं कूष्माण्डां तित्तिणीं त्यजेत् ।
जीर्णधात्रीफलं ग्राह्यं कथञ्चित्कायशोधनम् ।। इति।

स्कान्दे--

वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते वै जनार्द्दने ।
मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ।।
अनृतौ वर्जयेद्भार्यां मांसं मधुपरौदनम् ।
पटोलं मूलकं चैव वृन्ताकं चैव भक्षयेत् ।। इत्यादि ।

शाकशब्दस्तु दशसु रूढः—

मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः ।
त्वक्पुष्पं कवचं चेति शाकं दशविधं स्मृतम् ।।

इत्युक्तेः । अधिरूढं अङ्कुरः । आचारप्रदीपे—

वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वौदुम्बरभिःसटः ।
उदरे यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः ।।

भिःसटेति ह्रस्वपाठे दग्धान्नं भीःसटेति दीर्घपाठे तु भीःसटं श्लेष्मातकमिति धन्वतरिनिघण्टुः ।।

तथा—

निष्पावान् राजमाषांश्च मसूरं सन्धितानि च ।
वृन्ताकं च कलिङ्गं च सुप्ते देवे विवर्जयेत् ।।

सन्धितानि लवणशाकादीनि । भविष्योत्तरे श्रीकृष्ण उवाच—

मिथुनस्थे सहास्रांशौ स्वापयेन्मधुसूदनम् ।
तुलाराशिगते तस्मिन् पुनरुत्थापयेद्ध्रुवम् ॥
अधिमासे तु पतिते एष एव विधिक्रमः ।
नान्यथा स्नापयेद्देवं तथैवोत्थापयेद्धरिम् ॥
आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
स्वापयेत्प्रतिमां विष्णोः शङ्खचक्रगदाधराम् ॥
पीताम्बरधरां सौम्यां पर्य्यङ्के हि सिते शुभे ।
सितवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ! ॥
इतिहासयुराणज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ।
स्नापयित्वा दधिक्षीरैः घृतक्षौद्रजलैस्तथा ॥
समालभ्य शुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैः सुधूपितः ।
पूजितः कुसुमैः शुभ्रैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव ! ॥
सुप्ते स्वयं जगन्नाथे जगत्सुप्तं चराचरम् ।
एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्नापयित्वा युधिष्ठिर ! ॥
तस्यैवाग्रे स्थापयित्वा गृह्णीयान्नियमान्नरः ।
चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि ॥
गृहीतनियमं शुभ्रं निर्विघ्नं तच्च यातु नः ।
स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थेषु दृढव्रतः ॥
गृह्णीयान्नियमानेतान् दन्तधावनपूर्वकम् ।
तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तृणां पृथक् पृथक् ॥
मधुरस्वरो भवेद्राजन् ! पुरुषो गुडवर्जनात् ।
लभेच्च सन्ततिं दीर्घां तैलस्यैव तु वर्ज्जनात् ॥
तस्यैव वर्जनाद्राजन् ! सुन्दराङ्गः प्रजायते ॥
कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् ।

मधुकतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं लभेत् ।।
पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत् ।
योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ।।
कट्वम्लतिक्तमधुरकषायक्षीरजान् रसान् ।
वर्ज्जयेद्यः स वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयात्सदा ।।
ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठश्च जायते ।
घृतत्यागात्सलावण्यः सर्वसिद्धितनुर्भवेत् ।।
फलत्यागाच्च मतिमान् बहुपुत्रश्च जायते ।
शाकपत्राशनाद्भोगी अपाकृतमलो भवेत् ।।
यदाभ्यङ्गपरित्यागी शिरोभ्यङ्गश्च पार्थिव ! ।
दीप्तिमान् दीप्तिकरणो यक्षीरक्षपतिर्भवेत् ।।
दधिदुग्धपरित्यागी स्वर्गलोकं लभेन्नरः ।
ऐन्द्रियाणि परित्यज्य स्वर्गलोके भवेन्नरः ।।
सुसौभाग्यमवाप्नोति स्थालीपाकविवर्ज्जनात् ।
लभते सन्तर्ति दीर्घां तापीपक्वविवर्ज्जनात् ।।
भूमौ संस्तरशय्या च हरेरनुचरो भवेत् ।
सदा मुनी सदा योगी एकसस्यान्नभोजनात् ।।
निर्व्याधिर्नीरुजः शश्वत् मद्यमांसविवर्जनात् ।
एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ।।
नखलोम्नादिधारी च गङ्गास्नानं दिने दिने ।
मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ।।
भूमौ भुंक्ते नरो यस्तु पृथिव्यधिपतिर्भवेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति जप्त्वाऽनन्तफलं लभेत् ।।
पादाभिवन्दनाद्विष्णोर्लभेत् गोदानजं फलम् ।
विष्णुपादाम्बुजस्पर्शात् कृतकृत्यो भवेन्नरः ।।

विष्णुदेवालये कुर्य्यादुपलेपनमार्ज्जवे ।
कल्पस्थायी भवेद्राजन् ! स नरो नात्र संशयः ।।
प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ।
हंसयुक्तविमानेन स याति वैष्णवीं पुरीम् ।।
त्रिरात्रभोजनाच्चैव मोदते दिवि देववत् ।
षष्ठान्नभोजनाद्राजन्देवो वै स भवेद्ध्रुवम् ।।
प्राजापत्यव्रताच्चैव चातुर्मास्यव्रतान्नरः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिविधैर्नात्र संशयः ।।
तप्तकृच्छ्रादिकृच्छ्राभ्यां क्षपयेच्छयनं हरेः ।
स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिर्वर्ज्जितम् ।।
चान्द्रायणेन राजेन्द्र ! नयेत् मासचतुष्टयम् ।
दिव्यदेहो भवेत्सोऽथ सोमलोकं च गच्छति ।।
शुक्लपक्षे नरो यो वै त्यजेदन्नादिभक्षणम् ।
तेन पक्षोपवासेन प्रतिपक्षं हरिप्रियः ।।
स गच्छेद्धरिसायुज्यं न भूयस्तु प्रजायते ।
भिक्षाभोजी नरो यस्तु स भवेद्वेदपारगः ।।
न पर्युषन्ति पापानि पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
कृष्णे विष्णौ हृषीकेश संसुप्ते मधुसूदने ।।
परान्नं वर्जयेद्यस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विजः ।
परान्नंवर्ज्जनात्तात ! चान्द्रायणफलं लभेत् ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोमलोके महीयते ।
उपवासे गृहस्थस्य परपाकमधुद्वयम् ।।
तेन तां पशुतां प्रेत्य व्रजत्यन्नादिदायिनाम् ।
शाकाहारं तु यः कुर्यात् राजन्मासचतुष्टयम् ।।
स बन्धुवर्गसन्मानं लभते नात्र संशयः ।
पयोव्रतेन यो राजन् ! क्षयेन्मासचतुष्टयम् ।।

सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं स गच्छति ।
फलाहारेण वर्त्तेत प्रावृणमासचतुष्टयम् ।।
तस्य वंशविवृद्धिः स्यात्सर्वदानन्दसंयुतः ।
लवणं वर्जयेद्यस्तु भूप ! मासचतुष्टयम् ।।
त्रिजन्मोपार्जित पापं सर्वं नाशमवाप्नुयात् ।
शक्त्यादानं तु यः कुर्याद्यावन्मास चतुष्टयम् ।।
विष्णुमुद्दिश्य राजेन्द्र ! स देवत्वमवाप्नुयात् ।
पञ्चगव्याशनात्पार्थ ! चान्द्रायणफलं लभेत् ।।
निर्मलं देहमाप्नोति गङ्गास्नानाद्दिने दिने ।
कांस्यं मासं द्यूतनृत्ये व्यायामं क्रोधमैथुने ।।
हिंसां तैलं विवादं च निद्रां निर्माल्यलङ्घनम् ।
द्वादश्यां द्वादशैतानि विष्णुभक्तो विवर्जयेत् ।।
उपवासं तथा नक्तमेकभुक्तमयाचितम् ।
अशक्तस्तु पुमान्कुर्यात्सायं प्रातरखण्डितम् ।।
स्नानं पूजादिसंयुक्तं स नरो हरिलोकभाक् ।
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात् ।।
गीतशास्त्रविनोदेन लोकान्यस्तु प्रबोधयेत् ।
सांख्यं रूपी विष्णुरग्रे अन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ।।
पुष्पमालाकुलां पूजां कृत्वा विष्णुपदं व्रजेत् ।
तीर्थाम्बुना हरेः स्नानान्निर्मलं देहमाप्नुयात् ।।
नित्यस्नायी नरो यस्तु नरकं नैव पश्यति ।
भाजनं वर्जयेद्यस्तु स स्नानं पौष्करे लभेत् ।।
शिलायां भाजनं यस्य तस्य प्रयागजं फलम् ।
सुप्ते मयि जगन्नाथे केशवे गरुडध्वजे ।।
निवर्त्यन्ते क्रियाः सर्वाश्चातुर्मास्येषु भारत ! ।
यामद्वयजलत्यागान्न रोगैरभिभूयते ।।

एवमादिव्रतैः पार्थ ! तुष्टिमायाति केशवः ।
विवाहव्रतबन्धादिचूडासंस्कारदीक्षणम् ॥
चौलं धामप्रवेशादि गोदानादि प्रतिष्ठितम् ।
पुण्यानि यानि कर्म्माणि वर्जयेद्दक्षिणायने ।

व्रतपञ्चके—

चातुर्मास्ये निषिद्धं हि तथोक्तं सनकादिभिः ।
निष्पावान् राजमाषांश्च सुप्ते देवे जनार्द्दने ॥
यो भक्षयति विप्रेन्द्र ! चाण्डालादधिको हि सः ।
कार्त्तिके तु विशेषेण राजमाषांश्च भक्षयेत् ॥
निष्पावान्मुनिशार्दूल ! यावदाहूत नारकी ।
कलिङ्गानि पटोलानि वृन्ताकं सन्धितानि च ॥
एतानि भक्षयेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्द्दने ।
शतजन्मार्जितं पुण्यं दहते नात्र संशयः ॥
विहितं वर्णितं तत्र कर्त्तव्यं सनकादिभिः ।
आविकेन तु वस्त्रेण नरो मासचतुष्टयम् ॥
यस्तु पूजयते देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुसालोक्यतां याति विष्णुलक्षणलक्षिताम् ॥
यस्तु यत्नकृतां वृत्तिं वर्षमासान् ददाति च ।
सर्वेषामपि नियमानां फलमाप्नोति मानवः ॥
एवं गृहीतनियमः श्रीकृष्णं जलतीरतः ।
यथागतं स्वमन्दिरं गीतनृत्यादिना नयेत् ॥

ततः सतो नरः पूर्वान्वस्त्रालङ्कारमुख्यकैः । सम्पूजयेदिति ॥

भविष्ये—

मिथुनस्थे सहस्रांशौ न स्वापयति यो हरिम् ।
वैष्णवैः सह संभूय ह्यनावृष्टिस्तदा भवेत् ॥

भविष्योत्तरे च—

यो देवशयनं पार्थ ! अनुमोद्य समाचरेत् ।
उत्थानं वापि कृष्णस्य स हरेर्लोकमाप्नुयात् ।।

तत्रैव पौर्णमास्यां श्रीमद्गुरौ श्रीवेदव्यासपूजोक्ता ब्रह्माण्डे

वैशम्पायन उवाच--

ब्रह्मन्वै श्रोतुमिच्छामि व्यासमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे द्रुहिणात्मज ! ।। १ ।।

नारद उवाच—

श्रूयतां मुनिशार्दूल ! कथयामि तवाग्रतः ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। २ ।।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वाराणस्यां निवसति ब्राह्मणश्चात्रिगोत्रजः ।। ३ ।।
नाम्ना वेदनिधिः साधुः स्वधर्मरसिकः सदा ।
तस्य भार्या सुरूपास्ति नाम्ना वेदवतीति सा ।। ४ ।।
धनपुत्रविहिनासौ चिन्तयामास भो द्विज !
केन पुण्येन दानेन धनपुत्रं लभामहे ।। ५ ।।
एवं चिन्तयतस्तस्य कालो बहुतरो गतः ।
कथायां तु श्रुतं तेन गङ्गास्नानार्थमागतम् ।। ६ ।।
व्यासं मध्याह्नसमये प्रत्यहं रूपभेदतः ।
एवं श्रुत्वा वचस्तत्र पत्न्यग्रे कथितं तदा ।। ७ ।।
अहं गच्छामि हे शुभ्रे ! व्यासदर्शनकारणात् ।
मध्याह्नसमये जाते स्थितो गङ्गातटे सुखम् ।। ८ ।।
एतस्मिन्नन्तरे व्यासो म्लेच्छरूपेण भिक्षुकः ।
दण्डं गृहीत्वा हस्तेन सम्नौ शास्त्रप्रवर्त्तकः ।। ९ ।।
स्नानं कृत्वा तु चलितं दृष्ट्वा व्यासं द्विजस्तदा ।

आगत्य चरणौ गृह्य स्थितो वेदनिधिस्ततः ।। १० ।।
कृतं गालिप्रदानं च दूरं गच्छ द्विजाधम ! ।
तेनोक्तं हि मया ज्ञातं व्यासोऽसि त्वं महामुने ! ।। ११ ।।
पुनर्गालिप्रदानं च कृतं व्यासेन धीमता ।
पुनश्च कथितं तेन व्यासोऽसि त्वं च नान्यथा ।। १२ ।।
एकान्तेन गृहीत्वा तुं चोक्तं व्यासेन वै पुनः ।।
व्यासोऽस्मि किं कथयसि प्रसन्नोऽस्मि वदस्व तत् ।। १३ ।।

वेदनिधिरुवाच—

श्वः श्राद्धं मत्पितुः तस्मादागन्तव्यं त्वया मुने ! ।
भोजनार्थं कृपां कृत्वा श्रुत्वा व्यासोऽब्रवीदिदम् ।।
सर्वशाकं सर्वपाकं कर्त्तव्यं स्वगृहे द्विज ! ।। १४ ।।
अन्यश्च मत्समो विप्रः स्थापनीयो द्वितीयकः ।
पितृदैवततुष्टयर्थं सत्यं सत्यं न संशयः ।।

आगतेन गृहं तेन चिन्ताग्रस्तेन वै तदा ।
पत्न्यग्रे कथितं सर्वं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ।।

पत्नी उवाच—

नाथ ! चिन्ता न कार्याहं करिष्यामि तथैव तत् ।
प्रभातसमये जाते कृत्वा पायसमद्भुतम् ।।
आर्द्रकं निम्बुसहितं कृत्वा तत्र प्रयत्नतः ।
शालग्रामं स्थापयित्वा चन्दनैस्तुलसीदलैः ।।

पूजयित्वा विधानेन स्थापयित्वा च पीठके ।
कृता च श्राद्धसामग्री तिलाक्षतकुशैः सह ।।
मध्याह्ने श्राद्धसमये व्यासस्तत्र समागतः ।
अर्घ्यावाहनपाद्येन सन्मानमकरोत्तदा ।।
अन्तः प्रविश्य वै व्यासो शालग्रामं ददर्श ह ।

नमस्कृत्य तदा व्यासो पीठके स्थितवान्स्वयम् ।।
तदा वेदनिधिं सम्यक् व्यासः श्राद्धमकारयत् ।
आर्द्रकं निम्बुसहितं परमान्नं तथैव च ।।
एवं श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासो वचनमब्रवीत् ।।

वेदव्यास उवाच—

दश पुत्रा भविष्यन्ति धनं सप्तकुले तथा
अन्तकाले च भगवल्लोकं प्राप्स्यसि वै ध्रुवम् ।।

वेदनिधिरुवाच—

श्रूयतां मुनिशार्दूल ! पुनर्दर्शनमत्र वः ।
कथं प्राप्स्यामि भो व्यास ! कृपां कुरु ममोपरि ।।

श्रीव्यास उवाच—

शृणु विप्र ! तवेच्छा चेत् दर्शनार्थं तदा त्वया ।
पूजनीयो विशेषेण कथावाचयिता स्वयम् ।।
मत्स्वरूपः स भगवान् अहमेव न संशयः ।

वेदनिधिरुवाच—

कदा सम्पूजनीयश्च कस्मिन्मासे दिने तया ।
केन केन प्रकारेण तद्वदस्व ममाग्रतः ।।

व्यास उवाच—

मम जन्मदिने सम्यक् पूजनीयः प्रयत्नतः ।
आषाढशुक्लपक्षे तु पूर्णिमायां गुरौ तथा ।।
पूजनीयो विशेषेण वस्त्राभरणधेनुभिः ।
फलपुष्पादिना सम्यक् रत्नकाञ्चनभोजनैः ।।
दक्षिणाभिः सुपुष्टाभिर्मत्स्वरूपं प्रपूजयेत् ।
एवं कृते त्वया विप्र ! मत्स्वरूपस्य दर्शनम् ।।
भविष्यति न सन्देहो मयैवोक्तं द्विजर्षभ ! ।

योन पूजयते भक्त्या मद्दिनं विफलं भवेत् ।।
तस्य मर्त्यस्य वर्षायुः पुण्यं च ह्रियते तदा ।
कथयित्वा वरं दत्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।

नारद उवाच—

वैशंपायन तस्मात्त्वं व्यासपूजां कुरुष्व ताम् ।
कथावाचयितारं च व्यासरूपं नतोऽस्म्यहम् ।।
एवं यः कुरुते विप्र ! तस्य पुण्यफलं शृणु ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।।
कामार्थी लभते कामान्मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ।
ब्राह्मणो ब्रह्मतेजस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ।।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
एवं यः कुरुते विप्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
पठनात् श्रवणाद्वापि गोसहस्रफलं लभेत् ! ।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धौ एकविंशस्तरङ्गः ।। २१ ।।

-०-

अथ श्रावणकृत्यम् ।।

तत्र सुमुहूर्तमारभ्य श्रद्धाप्रमितानि दिनानि दोलोत्सवः कार्यः—

प्राप्तौ परमशाखाढ्यं न्यग्रोधं शाखिनां वरम् ।
तत्र मान्दोलिकामिश्च ।

इत्यादि हरिवंशे ।।

वर्षाऽकालप्रसङ्गेन भगवता स्वयमेव **दोलोत्सवः** कृतः तदनुकरण-प्रसक्तः । तत्र शुक्लद्वादश्यां **पवित्रारोपणोत्सवः** कार्यः—

शुक्लपक्षे नभोमासि द्वादश्यां वैष्णवोत्तमः ।
पवित्रारोपणं कुर्याच्छुभतन्तुमयं हरेः ।।

इति हारीतस्मृत्युक्तेः ।

द्वादश्यां श्रावणे मासि सिते पक्षे पवित्रकम् ।

श्रीकृष्णाय प्रदातव्यं वैष्णवीभिश्च वैष्णवैः ।।

इति श्रीमन्नारदोक्तेश्च ।

अत्र द्वादशीशब्दस्तु पारणाह्ने विहितः—

श्रावणे द्वादशी शुक्ला पारणादिनसम्भवात् ।

तस्यां नित्याविरोधेन पवित्राणि निरूपयेत् ।।

इति श्रीमन्नारदपञ्चरात्रोक्त्या पारणाहनि तत्कृत्यप्रदर्शनात् । अत एव पारणाहे द्वादश्यभावे तु **पद्मपुराणे**ऽभिहितम्—

पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत् ।

तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रा दमनार्पणे ।। इति ।।

केचित्तु द्वादश्यां तद्विहितेऽप्येकादश्यामेव तत्कर्त्तव्यमिति **वदन्ति** । **तन्न**—मानाभावात्,

एकादशी तु रुद्राणां द्वादशी केशवस्य च ।।

इति विष्णुरहस्योक्त्या एकादश्या देवतान्तरविषयत्वाच्च, उक्ततिथिपरित्यागे तन्निमित्तदोषप्राप्तेश्च ।।

तत्राधिकारिणस्तु **विष्णुरहस्ये**—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्रीशूद्र एव च ।

स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ।।

स(१) च नित्यः **तदुक्तं च बह्वृचपरिशिष्टे**—

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।

हरिश्च प्रीतिमांस्तस्मिन् यः पवित्रं समाचरेत् ।।

विधिना शास्त्रदृष्टेन यो न कुर्यात्पवित्रकम् ।

हरन्ति राक्षसास्तस्य वर्षपूजादिकं फलम् ।। इति ।

विष्णुरहस्ये—

न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः ।

---

(१) पवित्रारोपणोत्सवः ।

तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ! ।।
तस्माद्भक्तिसमायुक्तै र्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ।।

तथा—

पवित्रारोपणं विष्णोर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
स्त्रीपुंकीर्त्तिप्रदं पुण्यं सुखसम्पद्धनावहम् ।।
पुण्यानां तु तथा पुण्यं सर्वपापहरं परम् ।
पवित्रारोपणं तस्मात्पवित्रं परमं स्मृतम् ।।
संवत्सरं नरो भक्त्या समभ्यर्च्य जनार्द्दनम् ।
यत्फलं समवाप्नोति पवित्रारोपणेन तत् ।।

श्रीमत्कुमाराः—

पवित्रारोपणं विष्णोः कर्त्तव्यं श्रावणे बुधैः ।
सम्पूर्णा जायते यस्मात्पूजा सांवत्सरी कृता ।। इति ।

बौधायनः—

यावांस्तन्तुः पवित्रस्य तावत्स्वर्गे महीयते ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं विपुलं तस्य वर्द्धते ।। इति ।।

द्वादश्यां विघ्ने सति अन्यत्र कर्त्तव्यम् । अत एवोक्तं **व्रतपञ्चके**—

पवित्रारोपणं विप्राः ! श्रावणे न भवेद्यदि ।
कार्त्तिकावधिशुक्लर्के कर्त्तव्यमिति नारदः ।। इति ।।

हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये—

श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे ।
द्वादश्यां वासुदेवस्य पवित्रारोपणं स्मृतम् ।।
द्वादश्यां श्रावणे वापि पञ्चम्यामथवा द्विजाः ! ।
अनुकूलेषु कर्त्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा ।। इति ।।

तद्विधिबौधायनादिवाक्यतः श्रीमदौदुम्बराचार्यैरुक्तः, तथाहि-

तत्रायं विधिरुन्नेयः हेमरौप्याब्जतन्तुभिः ।
क्षौमकौशेयकार्पासैः पवित्राणि यथारुचि ।।
वैष्णवी कर्त्तितैः सूत्रैर्यथाशक्त्यैव कारयेत् ।
ततस्त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य संस्कृतम् ।।
पञ्चगव्येन कवचमन्त्रेणाद्भिः समुक्षयेत् ।
सूत्रं श्रीकृष्णमन्त्रेणाष्टोत्तरशतसंख्यया ।।
प्रजाप्य कृष्णगायत्र्या शङ्खोदकेन चोक्षयेत् ।
नन्दपुत्राय विद्महे राधाप्रियाय धीमहि ।।
तन्नः कृष्णः प्रचोदयादिति श्रीकृष्णत्रिपदी ।
सूत्रं शुष्कं ततः कृत्वा निर्वापयेत्पवित्रकम् ।।
तत्र श्रीकृष्णजानूरुनाभिप्रमाणकानि च ।
क्रमेण त्रीणि चाद्यं तु साष्टशतेन कारयेत् ।।

चतुःपञ्चाशता मध्यं कनिष्ठं सप्तविंशतेः ।
संवत्सरदिवसतदर्द्धदिनसंख्यया ।।
यद्वा सूत्रेण कार्याणि पवित्राणि यथाभवम् ।
षड्त्रिंशद्ग्रन्थयस्त्वाद्ये मध्ये चतुर्विंशतिः ।।
कनिष्ठे द्वादश प्रोक्तास्तथा विष्णुरहस्यके ।
कनिष्ठे द्वादश प्रोक्ता मध्ये तु द्विगुणा मताः ।।
त्रिगुणाश्चोत्तमे प्रोक्ता ग्रन्थयश्च पवित्रके ।
चतुर्थं वनमालाख्यमारभ्य मुकुटं हरेः ।।
आपादाभ्यामष्टोत्तरसहस्रसूत्रकेण तत् ।
ग्रन्थयस्तत्र कार्यास्तु अष्टोत्तरशतं बुधैः ।।
तत्रोत्तमपवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ।

सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां पवित्रं मध्यमं स्मृतम् ॥
साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ।
यद्वाऽष्टोत्तरशतेन तदर्द्धार्द्धेन सूत्रतः ॥
तदुत्तमाद्यनुक्रमात्पवित्रत्रिकमाचरेत् ।
आरभ्य मुकुटं यावत्सूत्रैर्विरचिता शुभा ॥
आपादलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्त्तिता ।
गुरोः सतां पवित्रकं यथासम्भवमात्मनः ॥
साधारणपवित्रं तु त्रिभिः सूत्रैश्च कारयेत् ।
ग्रन्थीन्विश्वक्समीचीनान्कुर्यात्तथा चतुःसनः ॥
ग्रन्थीन्कुर्वीत सर्वत्र सुवृत्तान्सुमनोहरान् ।
न वै विषमसंख्याकान् ग्रन्थीन्कुर्वीत कुत्रचित् ॥
ततः सरज्यकाश्मीरागुरुगोरोचनादिना ।
वस्त्रेणाच्छाद्य वैणवपटले तन्निधापयेत् ॥

अथाधिवासनम् ।

एकादशीदिने सायंकाले स्नानं विधाय च ।
महास्नानादिनाऽभ्यचर्य महानैवेद्यमर्पयेत् ॥
राधाकृष्णौ च वैष्णवानाहूय कृष्णमन्दिरम् ।
सम्यग्ध्वजपताकाद्यैः कुर्वीत समलङ्कृतम् ॥
सर्वतोमण्डलं ततः श्रीकृष्णाग्रे विधाय च ।
प्राग्भावे कृष्णराधयोः सामग्रीं सकलां न्यसेत् ॥

तथा कुमाराः—

देवस्य पूर्वतः स्थाप्य दन्तकाष्ठं जलं कुशान् ।
मृत्तिकां च हरिद्रां च कुष्टगोरोचनानि च ॥
पादकोपानहौ छत्रचामरव्यजनं तथा ।
व्रीह्यादीनि च धान्यानि पुरतः स्थापयेद्धरेः ॥

दण्डवत्प्रणिपातैश्च स्तोत्रैर्नानाविधैस्तथा ।
एवं महाविभूतिभिः कृष्णं सम्पूज्य वै ततः ॥
श्रीगुरुं प्रणिपत्य च पवित्रपूजनं चरेत् ।
सर्वतोमण्डलं पूर्णं संस्थाप्य कलशं तथा ॥
कार्ष्णिस्तदुपरि सूत्रेण पवित्रावाहनं चरेत् ।
सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः ! ॥
विष्णुलोकात्पवित्रक ! आगच्छेह नमोऽस्तु ते ।
इति स्वमन्त्रपूर्वकं निजमूलमनुस्मरेत् ॥
ततः कृष्णपवित्रकं मूलमन्त्रं पठन्सुधीः ।
सान्निध्यं चिन्तयेद्राधापवित्रं मन्त्रपूर्वकम् ॥
श्रीमतीं राधिकां कृष्णं विधिनोपचरेत्ततः ॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्दिव्यैः सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥
धूपं दीपं च नैवेद्यं पवित्राय ततोऽर्पयेत् ।
नद्यो द्वितस्तिमात्रकं कृष्णकरे च डोरकम् ॥

तथा कुमाराः—

अथ देवकरैर्विद्वान् गन्धसूत्रसमुद्भवम् ।
वितस्तिमात्रकं डोरं बध्नीयान्मङ्गलात्मकम् ॥
ततः श्रीराधिकाकृष्णौ गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् ।
ततः संस्तुत्य राधेशं श्रीकृष्णं सन्निधापयेत् ॥
आमन्त्रितोऽसि देवेश ! श्रिया राधिकया सह ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भवते नमः ॥
ततः श्रीकृष्णमानम्य कुर्यात्पवित्रपूजनम् ।
अस्त्रेण रक्षणं कुर्यात्कवचेनावगुण्ठनम् ॥
चक्रेण रक्षणं चापि नृसिंहबीजतस्ततः ।
गुरुं सम्पूज्य वस्त्राद्यैर्जागरणं च कारयेत् ।

इत्यधिवासनम् ।।

ततः प्रातः समुत्थाय स्नानादिकं विधाय च ।
नित्यसेवां हरेः कुर्यात्पवित्रकं च पूजयेत् ।।
पवित्राङ्गतया ततः सम्पूज्य कृष्णराधिके ।
कृत्वा नीराजनं जपघोषवादित्रपूर्वकम् ।।
गन्धदूर्वाक्षतायुक्तै रुपचारैः सुपूजितम् ।
श्रिये कृष्णाय मन्त्रं चोच्चरन् दद्यात्पवित्रकम् ।।

तथा मन्त्रः—

कृष्ण कृष्ण ! नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।।
ततः सम्पूज्य नीराज्य तत्तन्मन्त्रैः पवित्रकम् ।
अङ्गोपाङ्गेभ्य आयच्छेततः पूजां विधाय तु ।।
गुरवे वस्त्रभूषाद्यैः समर्पयेत्पवित्रकम् ।
ततस्तथैव वैष्णवांस्ततः समाप्य चोत्सवम् ।।
वैष्णवैः सह कृष्णार्थी महाप्रसादमाहरेत् ।
मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा ।।
देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया ।
प्रत्यहं स्नानकार्यादौ सूत्राण्युत्तार्य कारयेत् ।।
अभिषिञ्च्यार्घ्यतोयेन पुनर्देवं निवेशयेत् ।
तंत्रेमासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा ।
देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालनुसारनः ।।
प्रत्यहं स्नान कर्मादि सूत्राण्युत्तार्य कारयेत् ।
अभिषिच्याथ तोयेन पुनर्देवं निवेशयेत् ।
अथान्ते देवमभ्यर्च्य विशेषात्पुष्पचन्दनैः ।
नैवेद्यं विविधं दत्वा ततः सूत्रं विसर्जयेत् ।।

तत्र मन्त्रः—

सांवत्सरीं शुभां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ।
व्रजेदानीं पवित्रां त्वं विष्णुलोकं विसर्ज्जितम् ।। इति ।

बौधायनः—

एवं यः कुरुते विद्वान् वर्षे वर्षे न संशयः ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो नृकेशरी ।। इति ।

अथ प्रसङ्गादिदमुच्यते । तत्र पौर्णमास्यां रक्षाबन्धनम् तदुक्तं भविष्योत्तरे—

ततोऽपराह्लसमये कुर्यात्पटोलकां शुभाम् ।
कारयेच्चाक्षतैस्तद्वत्सिद्धार्थैर्हेमचर्चिताम् ।। इति ।।

तत्र मन्त्रः—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे ! मा चल मा चल ।। इति ।

भद्रायोगमतिक्रम्य कुर्यात्—

भद्रायां द्वे न कर्त्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामान्दहति फाल्गुनी ।।
इति स्मृतेः ।।

अथ प्रसङ्गादुपाकर्म निरूप्यते ।

उपाकर्म काण्डिकाकीर्तनभूतं कर्मोपाकर्मेति ज्ञेयम् तद्दिनं स्मृतौ—

उपाकर्म तु कुर्वन्ति ऋनात्सामग्र्यजुर्विदः ।
ग्रहसङ्क्रान्तियुक्तेषु हस्तश्रवणपर्वसु ।। इति ।।

वृद्धमनुकात्यायनौ—

अर्द्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिर्ग्रहणं तथा ।
उपाकर्म न कुर्वन्ति परतश्चेन्न दोषकृत् ।।

बौधायनः—

गौतमादीनृषीन्सप्त कृत्वा दर्भमयान्पुनः ।
पूजयित्वा यथाशक्ति तर्पयेद्दचमुच्चरन् ।। इति ।।

काष्र्णाजिनिश्च—

उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथा कालं समेत्य च ।
ऋषीन्दर्भमयान्कृत्वा पूजयेत्तर्पयेत्ततः ।।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धौ द्वाविंशस्तरङ्गः ।। २२ ।।

अथ भाद्रकृत्यम् ।।

तत्र कृष्णपक्षेऽष्टम्यां श्रीमत्परममङ्गलगुणगणार्णवस्य स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषस्य निखिलजगत्कारणभूतस्य ब्रह्मशिवादिवन्दितचरणस्य परब्रह्मणः श्रीकृष्णस्य जन्मोत्सवः । तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे —

य एष भगवान् विष्णुर्देवक्यां वसुदेवतः ।
जातः कंसवधार्थं हि तद्दिनं मङ्गलायनम् ।।
या सा प्रत्यब्दमायाति श्रावणे बहुलाऽष्टमी ।
सङ्गता द्रुहिणर्क्षेण नृणां मुक्तिफलप्रदा ।।
यस्यां सनातनः साक्षात्पुराणः पुरुषोत्तमः ।
अवतीर्णः क्षितौ सैषा मुक्तदेति किमद्भुतम् ।। इति ।।

गौतमीतन्त्रे—

अथ भाद्रासिताष्टम्यां प्रादुरासीत् स्वयं हरिः ।
ब्रह्मणा प्रार्थितः पूर्वं देवक्यां कृपया विभुः ।।
रोहिण्यर्क्षे शुभतिथौ दैत्यानां नाशहेतवे ।
महोत्सवं प्रकुर्वीत यत्नतस्तद्दिने शुभे ।।
राजन्यैर्ब्राह्मणैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव स्वशक्तितः !
उपवासः प्रकर्तव्यो न ! भोक्तव्यं कदाचन ।।
कृष्णजन्मदिने यस्तु भुंक्ते स तु नराधमः ।
निवसेन्नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम् ।।
अष्टमी रोहिणीयुक्ता चार्धरात्रे यदा भवेत् ।
उपोष्य तां तिथिं विद्वान् कोटियज्ञफलं लभेत् ।।

सोमाह्निबुधवारे वा अष्टमी रोहिणीयुता ।
जयन्ती सा समाख्याता सा लभ्या पुण्यसञ्चयैः ।
तस्यामुपोष्य यत्पापं लोकः कोटिभवोद्भवम् ।
विमुच्य निवसेद्विप्र ! वैकुण्ठे विरजे पुरे ।।

भविष्ये युधिष्ठिर उवाच—

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत ! ।
कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिः स्मृतः ।।

श्रीकृष्ण उवाच—

हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर ! ।
देवकी मां परिष्वज्य कृत्वोत्सङ्गे रुरोद ह ।।
तत्रैव रङ्गवाटे सा मञ्चारूढजनोत्सवे ।
मल्लयुद्धे पुरा वृत्ते संस्तुता कुकुरान्धकैः ।।
स्वजनैर्बहुभिः स्निग्धैस्तेषां स्त्रीभिः समावृता ।
वसुदेवोपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह ।।
समागम्य परिष्वज्य पुत्र ! पुत्रेत्युवाच ह ।
स्याद्गद्गदस्वरो दीनो बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।।
बलभद्रं च मां चैव परिष्वज्येदमब्रवीत् ।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।।
यद्भाव्यां सुताभ्यां मे समुद्भूतः समागमः ।
एवं हर्षेण दम्पत्योर्दृष्ट्वा सर्वं तदा नृप ! ।।
प्रणिपत्य जनाः सर्वे मामूचुस्ते प्रहर्षिताः ।
अद्य प्रहर्षो ह्यस्माकमहो जातो जनार्द्दन ! ।।
अद्य मल्लाङ्गयुद्धेन दुष्टः कंसो निपातितः ।
एवं महोत्सवं दृष्ट्वा समाजे मधुसूदन ! ।।
प्रसादः क्रियतामस्य शोकस्यान्योपि शीघ्रतः ।

यस्मिन्दिने प्रसूयेत देवकी त्वां जनार्द्दन ! ।।
तद्दिने ब्रूहि वैकुण्ठ ! कुर्मस्ते तत्र चोत्सवम् ।
सम्यग्भक्तिप्रसन्नानां प्रसादं कुरु केशव ! ।।
एवमुक्ते जनौघेन वसुदेवोपि विस्मितः ।
विलोक्य बलभद्रं मां सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।।
एवमस्त्विति लोकानां कथयस्व यथातथम् ।
ततस्तातसमादेशान्मया जन्माष्टमीव्रतम् ।।
मथुरायां जनौघाय पार्थ ! सम्यक् प्रकाशितम् ।
पुनर्जन्माष्टमीं लोकाः कुर्वन्तु ब्राह्मणादयः ।।
क्षत्रिया वैश्यजातीयाः शूद्रा येऽन्येपि धर्मिणः ।
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्द्धरात्रके ।।
शशाङ्के वृषराशिस्थे प्राजापत्यर्क्षसंयुते ।
वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् ।।
एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीव्रतम् ।
देवक्याः खलु तत्रैव कुरुध्वं सुमहोत्सवम् ।।
मथुरायां ततः पश्चाल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
इत्याकर्ण्य यथाख्यातं तथालोकैरनुष्ठितम् ।।
शान्तिरस्तु सुखं चास्तु लोकाःसन्तु निरामयाः।। इति ।।

सा द्विधा केवला जयन्ती च । तत्रर्क्षयोगरहिता केवला । रोहिणी-संयुता जयन्ती भवति ।। सा केवला जन्माष्टमी नित्या अकरणे प्रत्यवायस्मरणात् । तथा स्मर्य्यते विष्णुरहस्यादौ–

गृध्रमांसं खरं काकं श्येनं च मुनिसत्तमाः ।
मांसं च द्विपदां भुङ्क्ते भुञ्जन् जन्माष्टमीव्रते ।।
जन्माष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम ! ।
त्रैलोक्यसम्भवं पापं तेन भुक्तं न संशयः ।।

भविष्यपुराणे—

श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः ।।
कृष्णजन्माष्टमीं त्यक्त्वा योऽन्यद्व्रतमुपासते ।
नाप्नोति सुकृतं किञ्चिदिष्टापूर्त्तमथापि वा ।।
वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति महामोहाद्व्याली भवति कानने ।। इति ।।

स्कन्दपुराणे—

ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
ते भवन्ति महाप्राज्ञ ! व्याला व्याघ्राश्च कानने ।।
रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो महासुने ! ।
अतीतानागतं तेन कुलमेकोत्तरं शतम् ।।
पातितं नरके घोरे भुञ्जता कृष्णवासरे ।। इति ।।

जयन्ती चोपोष्या फलविशिष्टत्वात् । तथा भविष्यविष्णुधर्मोत्तरयोः—

जयन्त्यामुपवासश्च महापातकनाशनः ।
सर्वैः कार्यो महाभक्त्या पूजनीयश्च केशवः ।। इति ।।

अकरणे प्रत्यवायश्च विष्णुरहस्ये—

शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्थभोजने ।
तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः ।।
ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य गोवधे स्त्रीवधेपि वा ।
न लोको यदुशार्दूल ! जयन्तीविमुखस्य च ।।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य परान्नं भुञ्जतोपि वा ।
न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति जयन्तीविमुखस्य च ।।
न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसम्भवं व्रतम् ।

यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम् ॥
जयन्तीवासरे प्राप्ते करोत्युदरपूरणम् ।
सम्पीड्यतेऽतिमात्रं तु यमदूतैः कलेवरे ॥
यो भुञ्जीत विमूढ़ात्मा जयन्तीवासरे नृप ! ॥ इति ॥

एवं जन्माष्टमीजयन्ती शब्दभेदेन विहितयोरत्यन्तस्वरूपभेदोऽथवा जन्माष्टम्येव गुणवैशिष्ट्यात् जयन्तीत्यभिधियते। न तावदत्यन्तभेदोऽष्टमीं विना जयन्त्याः स्वरूपस्य स्वातन्त्र्याभावात्। किञ्च रोहिणीं विनापि केवलाष्टम्यां यथाव्रतं विहितं तथा केवलरोहिण्यां व्रताऽभावाच्च। तस्माज्जन्माष्टम्येव रोहिणीयोगे जयन्ती भवति। रोहिणीयोगगुणविशिष्टा जयन्तीत्यर्थः। विशेषस्य सामान्यानतिरेकात्। तथा सर्वत्र ऋक्षयोगात्सैव तिथिर्जयन्ती भवंतीति न त्वत्यन्तभेद इति शास्त्रादेव निश्चीयते। तथा विष्णुधर्मे विष्णुरहस्ये च—

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता ।
भवेत्प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता ॥

सनत्कुमारसंहितायां—

श्रृणुष्वावहितो राजन् ! कथ्यमानं मयाऽनघ ! ।
श्रावणस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप ! ॥
रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ॥

स्कान्दे—

प्राजापत्येन संयुक्ता अष्टमी तु यदा भवेत् ।
श्रावणे बहुले सा तु सर्वपापप्रणाशिनी ॥

तथागुणविशिष्टत्वात्फलविशेषेण महाफलेति चोक्ता विष्णुरहस्ये-

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी ।
मुहूर्त्तमपि लभ्येत सैवोपोष्या महाफला ॥

विष्णुरहस्ये च—

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी ।
मुहूर्त्तमपि लभ्येत सैवोपोष्या महाफला ।।

पद्मपुराणे—

प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः ।
यैः कृता श्रावणे मासे अष्टमी रोहिणीयुता ।।
किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ।।

स्कन्दपुराणेपि—

महाजयार्थं कुरु तां जयन्तीं मुक्तयेऽनघ ! ।
धर्मार्थौ च कामं चापि मोक्षं च मुनिपुङ्गव ! ।।
ददाति वाञ्छितानर्थान्नानार्थं चातिदुर्लभम् ।। इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी ।
सोपवासां हरेः पूजां तत्र कृत्वा न सीदति ।।
अष्टमी बुधवारेण रोहिणीसहिता यदा ।
भवेत्तु मुनिशार्दूल ! किं कृतैर्व्रतकोटिभिः ।। इति ।

स्कान्दे—

उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि ।
भवेत्तु बुधसंयुता ।।
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते यदि वा न वा ।। इति ।
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने वार्द्धके तथा ।
बहुजन्मकृतं पापं हन्ति सोपोषिता तिथिः ।।

वह्निपुराणे—

सप्तजन्मकृतं पापं राजन् ! यत्त्रिविधं नृणाम् ।
तत्क्षालयति गोविन्दस्तिथौ तस्यां शुभार्चितः ।।
उपवासश्च तत्प्रोक्तो महापातकनाशनः ।

जयन्त्यां जगतीपाल ! विधिना नात्र संशयः ॥

भविष्योत्तरे जयन्तीकल्पे—

प्रतिवर्षं विधानेन मद्भक्तो धर्मनन्दन ! ।
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलमाप्नुयात् ॥
पुत्रसन्तानमारोग्यं सौभाग्यमतुलं लभेत् ।
इहधर्मरतिर्भूत्वा मृतो वैकुन्ठमाप्नुयात् ॥

इदं वाक्यं जन्माष्टमीपरं प्रतिवर्षं रोहिणीयोगस्य नियतत्वाभावात् ।

पुनस्तत्रैव—

मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां निशीथे कृष्णपक्षगे ।
शशाङ्के वृषराशिस्थे ऋक्षे रोहिणिसंज्ञके ॥
योगेऽस्मिन् वसुदेवाद्धि देवकी मामजीजनत् ।
तस्मान्मां पूजयेत्तत्र शुचिः सम्यगुपोषितः ॥

एवं चन्द्राद्यधिष्ठितराशियोगाः बुधादिवारयोगाः भाद्रकृष्णाष्टम्या वैशिष्ट्यार्था इति दिक् । एवञ्चास्या अकरणे प्रत्यवायात्फलविशेषोक्तेश्च नित्यत्वं काम्यत्वं च विज्ञायते । किञ्च क्वचिच्छ्रावणे क्वचिद्भाद्रपदे इत्युक्तं तेन व्रतद्वयमिति न शङ्कनीयम् । शुक्लकृष्णादिपक्षमासप्रवृत्तिविवक्षया तथोक्तेः । तथाहि-यदा शुक्लपक्षादिदर्शान्तः मासो विवक्षितस्तदा श्रावणे मासि जन्माष्टमीत्युच्यते यदा कृष्णपक्षादिः पूर्णमास्यन्तो मासो विवक्षितस्तदा भाद्रपदे इत्युच्यते उभयोरपि पक्षयोः शास्त्रे सत्त्वात् न कश्चिद्विरोधः । जन्माष्टमी जयन्ती च द्विविधा विद्धा शुद्धा चेति । सप्तमीयुक्ता विद्धा । तद्वेधरहिता शुद्धा । तत्र श्रेयस्कामैः शुद्धैवोपोष्या **ब्रह्मवैवर्त्ते**—

सप्तमी नाष्टमीयुक्ता न सप्तम्या युताऽष्टमी ।
सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभा ॥
वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताऽष्टमी ।
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमीसंयुताऽष्टमी ॥

स्कन्दपुराणे—

अष्टमी नवमी युक्ता कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ।
सप्तम्या चाष्टमी चैव न कर्त्तव्या शिखिध्वज ! ।।

पुनः तत्रैव—

नागविद्धा तु या षष्ठी सप्तम्या तु यदाऽष्टमी ।
भूतविद्धाप्यमावास्या न ग्राह्या मुनिपुङ्गव ! ।।
षष्ठेचकादश्यमावास्या पूर्वविद्धा तथाऽष्टमी ।
सप्तमी परविद्धा तु नोपोष्यं तिथिपञ्चकम् ।।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

एकादश्यष्टमी पष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च नानुपोष्या पूर्वान्विता ।।

पाद्मे—

पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति हन्ति राज्यं सराष्ट्रकम् ।
हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसंयुताऽष्टमी ।।

यमपुराणेपि—

नाष्टमी सप्तमीयुक्ता कर्त्तव्या वै सदा बुधैः ।
नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ।। इति ।।

यानि तु सप्तमीविद्धाऽष्टमीकर्त्तव्यविषयाणि वाक्यानि आदित्य-पुराणे-

बिना ऋक्षं न कर्त्तव्या नवमीसंयुताऽष्टमी ।
कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसंयुताऽष्टमी ।।

विष्णुधर्मे च—

जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते ।
कृत्वोपवासन्तिथ्यन्ते तथा कुर्यात्तु पारणम् ।।

गारुडे च--

जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् ।
तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ॥

पाद्मेपि--

कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी ।
तत्रोपवासं कुर्वीत तिथिभान्ते च पारणम् ॥

इत्यादीनि तान्यवैष्णवपराणीति व्यवस्थयोह्यानि, अन्यथा सप्तमीविद्धासाक्षान्निषेधपूर्वकनवमीव्रतविधायकबहुवाक्यविरोधः स्यात् ।

तथाहि पद्मपुराणे--

जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ।
विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमुच्चरेत् ॥

श्रीमदौदुम्बरसंहितायामाग्नेये--

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताऽष्टमी ।
विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमीसंयुताऽष्टमी ॥
अविद्धायां सऋक्षायां जातो देवकिनन्दनः ।
प्रेतयोनिगतानां च प्रेतत्वं नाशितं नरैः ॥
यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता ।
किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ॥
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटिस्तु मुक्तिदा ।
(१)वासरे वा निशार्द्धेपि सप्तम्यां च यदाऽष्टमी ॥

---

(१) वासरे इत्यादिश्लोकस्यार्थः—वासरे वा निशार्द्धे पि सप्तम्यां सत्यां यदाष्टमी भवेत्तदा सा सर्वमिश्रा भवति सप्तमीविद्धा भवति । सदा त्याज्या भवेदिति । अन्ये तु ब्रह्मवैवर्त्तश्लोकानां मध्ये —

वासरे वा निशार्द्धे पि सप्तम्यां च यदाऽष्टमी ।
पूर्वविद्धा तदा त्याज्या प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥

इत्येवं पठन्ति ।

सर्वमिश्रा सदा त्याज्या प्राप ऋक्षं यदा बहु ।
अर्द्धरात्रमतिक्रम्य सप्तमी दृश्यते यदि ॥
विनापि ऋक्षं कर्त्तव्यं नवम्यां चाष्टमीव्रतम् ।
जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ॥
विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत् ॥ इति ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते च--

वासरे वा निशार्द्धेपि सप्तम्यां च यदाऽष्टमी ।
पूर्वविद्धा तदा त्याज्या प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥ इति ॥

वाशब्दः कैमुत्यन्यायद्योतकः । वासरे इति किमुत वक्तव्यं निशार्द्धेपि सप्तम्यां यदाऽष्टमी स्यात्तदा पूर्वविद्धा अतः प्राजापत्यर्क्षसंयुतापि त्याज्येत्यर्थः ।

पितामहः--

मुहूर्त्तेनापि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत् ।
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटयास्तु मुक्तिदा ।

स्कान्दे--

जन्माष्टमी पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कदाचन ।
पलवेधेपि विप्रेन्द्र ! सप्तम्या चाष्टमीं त्यजेत् ॥
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भः कलशे यथा ।
विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमीसंयुताऽष्टमी ॥
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमीसंयुताऽष्टमी ।

पाद्मेपि--

पञ्चगव्यं यदा शुद्धं न ग्राह्यं मधुदूषितम् ।
रविविद्धा तदा त्याज्या रोहिण्या संयुताऽष्टमी ॥

स्कान्दे--

नाष्टमी सप्तमीयुक्ता सप्तमी चाष्टमीयुता ।

नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ।।

ननूक्तवाक्यैः सप्तमीविद्धा त्याज्या चेन्नवमीदिवसेऽष्टम्या नक्षत्रस्य चाल्पत्वेऽर्द्धरात्रव्याप्त्यभावाद्धेयत्वमेव स्यात् कृष्णजन्मन्यर्धरात्रयोगस्यैव मुख्यकालत्वात् । तथा भविष्योत्तरे वचनं स्वयमेवोक्तम् ।। वसिष्ठसंहितायां च—

अष्टमी रोहिणीयुक्ता निशार्द्धे दृश्यते यदि ।
मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम् ।।

इति चेन्न । अर्द्धरात्रोयोगस्य पूर्वविद्धाभावाभिप्रायेणैवोक्तत्वान्—

अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकिनन्दनः ।

इति वचनात् ।।

तथा सप्तमीविद्धाऽष्टमीं परित्यज्य नवमी रोहिण्या सहिता केवला वोपोष्या तत्र कलामुहूर्त्तादिमात्रापि सकला भवति तदा न हेयत्वशङ्का कार्येति । तथोक्तं पद्मपुराणे—

पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु उदये नवमीदिने ।
मुहूर्त्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ।।
कलाकाष्ठामुहूर्त्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि ।। इति ।

तथाऽष्टमीयुक्तनवम्यां नक्षत्रमल्पमपि सकलं ज्ञेयम् । तथोक्तं स्कन्दपुराणे—

सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम ! ।
प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्त्तार्धं भवेद्यदि ।।
तदाष्टयामिकं ज्ञेयं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा ।। इति ।।

ननु यदा पूर्वेद्युर्विद्धा परेद्युश्च किञ्चिदपि न स्यात्तदा पूर्वविद्धापि ग्राह्येति चेन्न ।

जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ।

सर्वमिश्रा सदा त्याज्या प्राप ऋक्षं यदा बहु ।
अर्द्धरात्रमतिक्रम्य सप्तमी दृश्यते यदि ।।
विनापि ऋक्षं कर्त्तव्यं नवम्यां चाष्टमीव्रतम् ।
जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ।।
विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत् ।। इति ।।

ब्रह्मवैवर्त्ते च--

वासरे वा निशार्द्धेपि सप्तम्यां च यदाऽष्टमी ।
पूर्वविद्धा तदा त्याज्या प्राजापत्यर्क्षसंयुता ।। इति ।।

वाशब्दः कैमुत्यन्यायद्योतकः । वासरे इति किमुत वक्तव्यं निशार्द्धेपि सप्तम्यां यदाऽष्टमी स्यात्तदा पूर्वविद्धा अतः प्राजापत्यर्क्षसंयुतापि त्याज्येत्यर्थः ।

पितामहः--

मुहुर्त्तेनापि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत् ।
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटयास्तु मुक्तिदा ।

स्कान्दे--

जन्माष्टमी पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कदाचन ।
पलवेधेपि विप्रेन्द्र ! सप्तम्या चाष्टमीं त्यजेत् ।।
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भः कलशे यथा ।
विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमीसंयुताऽष्टमी ।।
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमींसंयुताऽष्टमी ।

पाद्मेपि--

पञ्चगव्यं यदा शुद्धं न ग्राह्यं मधुदूषितम् ।
रविविद्धा तदा त्याज्या रोहिण्या संयुताऽष्टमी ।।

स्कान्दे--

नाष्टमी सप्तमीयुक्ता सप्तमी चाष्टमीयुता ।

नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ।।

ननूक्तवाक्यैः सप्तमीविद्धा त्याज्या चेन्नवमीदिवसेऽष्टम्या नक्षत्रस्य चाल्पत्वेऽर्द्धरात्रव्याप्त्यभावाद्धेयत्वमेव स्यात् कृष्णजन्मन्यर्धरात्रयोगस्यैव मुख्यकालत्वात् । **तथा भविष्योत्तरे वचनं स्वयमेवोक्तम् ।।** **वसिष्ठसंहितायां च—**

अष्टमी रोहिणीयुक्ता निशार्द्धे दृश्यते यदि ।
मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम् ।।

इति चेन्न । अर्द्धरात्रीयोगस्य पूर्वविद्धाभावाभिप्रायेणैवोक्तत्वात्—

अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकिनन्दनः ।

इति वचनात् ।।

तथा सप्तमीविद्धाऽष्टमीं परित्यज्य नवमी रोहिण्या सहिता केवला वोपोष्या तत्र कलामुहूर्त्तादिमात्रापि सकला भवति तदा न हेयत्वशङ्का कार्येति । **तथोक्तं पद्मपुराणे—**

पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु उदये नवमीदिने ।
मुहूर्त्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ।।
कलाकाष्ठामुहूर्त्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि ।। इति ।

तथाऽष्टमीयुक्तनवम्यां नक्षत्रमल्पमपि सकलं ज्ञेयम् । **तथोक्तं स्कन्दपुराणे—**

सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम ! ।
प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्त्तार्धं भवेद्यदि ।।
तदाष्टयामिकं ज्ञेयं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा ।। इति ।।

ननु यदा पूर्वेद्युर्विद्धा परेद्युश्च किञ्चिदपि न स्यात्तदा पूर्वविद्धापि ग्राह्येति **चेन्न ।**

जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ।

विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमुच्चरेत् ।।

इत्यादिना केवलायां नवम्यां व्रतविधानात् ।

पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ।

इत्युक्तत्वाच्च ।

एवञ्चाल्पाल्पतराप्यष्टमी विना ऋक्षेण सर्क्षा वापि नवमीयुता केवला नवमी वोपोष्या सप्तम्या तु मुहूर्त्तकलालवविद्धापि त्याज्येति बोध्यम् । तत्र विधिस्तु व्रतपञ्चके—

एवं निर्णीय कर्त्तव्या तत्रायं विधिरुच्यते ।

तथा स्कान्दे—

सर्वपापप्रशमनं सर्वपुण्यफलप्रदम् ।
अष्टम्यां रोहिणीयोगे जयन्ती नाम सुव्रतम् ।।
गृह्णीयान्नियमं पूर्वं दन्तधावनपूर्वकम् ।
नियमात्फलमाप्नोति न श्रेयो नियमं विना ।।
आदौ गुरुगृहे गत्वा पश्चान्नियममाचरेत् ।
सं शिरः पादयोः कृत्वा पादौ स्पृष्ट्वा च मौलिना ।।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा श्रीगुरुं प्रार्थयेत्ततः ।
नियमं देहि भोः ! स्वामिन्नष्टम्यां च मम प्रभो ! ।।
इति गुरूक्तमन्त्रेण स्वीकुर्यान्नियमं बुधः ।।

मत्रः—

जयन्त्यां तु निराहारः श्वोभूते परमेश्वर ! ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष ! शरणं चरणौ तव ।।
उपोषितस्तु मध्याह्ने स्नात्वा कृष्णतिलैः शुचिः ।
कृत्वा मूर्ध्नि फलं धात्र्या महापुण्यविवृद्धये ।।
कृत्वा माध्याह्निकं कर्म स्थापयेदव्रणं घटम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं पवित्रोदकपूरितम् ।।

सुचन्दनगन्धयुक्तं कर्पूरागुरुवासितम् ।
सुधूपवासितं शुभ्रं पुष्पमालाभिशोभितम् ।।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सौवर्णं श्रद्धयान्वितः ।
तदलाभे तु वै रूप्यं ताम्रं वेणुमयं मुने ! ।।
तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं लक्षणसंयुतम् ।
ददमाना तु पुत्रस्य स्तनं वै विस्मितानना ।।
पिबमानस्तनं सोऽथ कुचाग्रं पाणिना स्पृशन् ।
अवलोकमानः प्रेम्णा मुखं मातुर्मुहुर्मुहुः ।।
कृत्वा चैवं तु वैकुण्ठं मात्रा सह जगद्गुरुम् ।
क्षीरादिस्नपनं कृत्वा देवमावाहयेत्ततः ।।

मन्त्रः—

एहि एहि जगन्नाथ वैकुण्ठात्पुरुषोत्तम ! ।
परिबारगुणोपेतो लक्ष्म्या सह जगत्पते ! ।।

प्रतिष्ठामन्त्रः—

श्रीकृष्णाय सपरिवाराय पीठदेवतासहितायाऽ-
सनं दत्तमास्यतां भगवते नमः ।।
आवाहिते तु देवेश अर्घ्यानुपरि कल्पयेत् ।
उपचर्य्य बिधानेन चन्दनेन विलेपनम् ।।
कुङ्कुमेन महाभाग ! कर्पूरागुरुचर्चितम् ।
पद्मकोशीरगन्धैश्च मृगनाभिविमिश्रितम् ।।
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं पुष्पमालासुशोभितम् ।
मल्लिकामालतीपुष्पैश्चम्पकैः केतकीदलैः ।।
विल्वपत्रैरखण्डैश्च तुलसीदलकोमलैः ।
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः करवीरैः सितासितैः ।।
यूथिकाशतपत्रैश्च तथान्यैः कालसम्भवैः ।

पूजनीयो महाभाग ! महाभक्त्या जनार्दनः ।
कूष्माण्डैर्नारिकेरैश्च खर्जूरैर्दाडिमैः शुभैः ।
बीजपूगैः पूगफलैः सुमिष्टान्नैः सुशोभनैः ॥
द्राक्षाफलैर्जातिफलैः फलैरम्भासमुद्भवैः ।
नैवेद्यैर्विविधैः शुभ्रैर्घृतपक्वैरनेकधा ॥
दीपकं कारयित्वा तु तथा कुसुममण्डपम् ।
तमालसम्भवैर्दिव्यैः फलैर्नानाविधैर्मुने ! ॥
पनसादिफलैर्विप्र ! मेध्यवृक्षसमुद्भवैः ।
गीतवाद्यं तथा नृत्यं स्वयं भक्त्या तु नारद ! ॥
शान्तिपाठं शास्त्रपाठं गीतगानं तृतीयकम् ।
सहस्रनामचतुर्थं पञ्चमं नागमोक्षदम् ॥
बालस्य चरितं विष्णोः पठनीयं पुनः पुनः ।
एवं कृत्वा विधानं तु यथाविभवं नारद ! ॥
गुरुं सम्पूज्य सद्भक्त्या अर्चनीयस्ततो हरिः ।
श्राद्धे दाने पर्वणि च तीर्थे व्रतमखेषु च ॥
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत अन्यैर्धर्मप्रयोजनैः ।
जीवतां याति यः कालो जयन्तीवासरं विना ॥
तत् खण्डमायुषो व्यर्थं नराणामुपजायते ।
अतिक्रम्य नरो यस्तु गुरुं धर्मोपदेशकम् ॥
विप्रेन्द्र ! स्वेच्छया पुण्यं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ।
अभिवाद्य गुरुं तस्मात् धर्मकार्याणि साधयेत् ॥
धर्ममर्थं च कामं च यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
दद्यात्स्वशक्तितो भक्त्या गोमहीकाञ्चनं वसु ॥
भ्रष्टधान्यं च वस्त्रं च भूषणं मधुरं वचः ।
जन्माष्टम्यर्द्धरात्रे च कृत्यं कुर्याद्यथाविधि ॥

पूर्वं स्थलद्वयं कल्प्यं जन्मस्थानं च गोकुलम् ॥
पूर्वं गोष्ठं त्वलङ्कारैर्ध्वजतोरणमौक्तिकैः ॥
पूगीफलयुतैः स्तम्भैः कदलीभिश्च चित्रकैः ।
वर्णकैर्विविधैश्चैव शय्याभोजनपानकैः ॥
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैरलङ्कुर्वीत वैष्णवैः ।
भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यविशेषान्साधयेत्तथा ॥
सूपादिपायसान्तानि सर्वाण्येव च कारयेत् ।
यथास्थानमलङ्कृत्य गोष्ठमित्यादिरीतितः ॥
जन्मस्थाने तु श्रीकृष्णप्रादुर्भावं विभाव्य च ।
ततः पञ्चामृतादिभिर्महास्नानं विधाय च ॥
निशि पूजा विधातव्या देवक्याः केशवस्य च ।
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र ! गुरुणाभिहितेन च ॥

देवक्यर्चनमन्त्रः—

देवकी कृष्णमातस्त्वं सर्वपापप्रणाशिनी ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भीतो भवभयस्य च ॥
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र ! पूजयित्वार्थयेच्च ताम् ।
पूजिता तु यथा देवि ! प्रसन्ना त्वं वरानने ! ॥
यथाशक्त्या सुपूजिता प्रसादं कुरु सुव्रते ! ॥
यथा पुत्रं हरिं प्राप्ता निर्वृत्तिं च परां ध्रुवम् ।
तामेव निर्वृत्तिं देवि ! स्वपुत्राद्धि ददस्व मे ॥

कृष्णार्चनमन्त्रः—

अवतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन ! ।
न संख्या तेऽवताराणां कश्चिज्जानाति वै भुवि ॥
देवा ब्रह्मादयो वापि स्वरूपं न विदुस्तव ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्सङ्गसंस्थितम् ॥

वाञ्छितं कुरु मे देव ! दुष्कृतं चैव नाशय ।
कुरुष्व मे दयां देव ! संसारार्त्तिभयापह ! ।।
एवं सम्पूज्य गोविन्दं पात्रे तिलमये स्थितम् ।
ततस्तु दापयेदर्घ्यमिन्दोरुदयदः शुचिः ।।
श्रीकृष्णाय प्रथमतो देवकीसहिताय तु ।।
अर्घ्यं मुनिवरश्रेष्ठ ! सर्वकर्मफलप्रदः ।।
जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ।
कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां हि वधाय च ।।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे ! ।।
श्रीकृष्णाय देवकीसहिताय सगणपरिवाराय ।
सायुधाय श्रीलक्ष्मीसहितायार्घ्यं नमः ।।
नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घं विचक्षणः ।
कृष्णाय परया भक्त्या शंखोदेन विधानतः ।।
सोमाय च विशेषेण दद्यादर्घं तु पुत्रक ! ।।
अर्घ्यमिन्दो ! गृहाण त्वं रोहिण्या सहितो मम ।।
दद्याद्वै सकलामूर्वीं ससागरसमन्विताम् ।
अर्घ्यदानेन तत्पुण्यं लभते मानवो भुवि ।।
गीतवाद्यादिशास्त्रैश्च कुर्याज्जागरणं निशि ।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं दापयेद्धरेः ।।
फुल्लानि सुविचित्राणि देयानि मधुसूदने ।
पक्वान्नानि सुहृद्यानि बहूनि विविधानि च ।
धूपनीराजनं भक्त्या कुर्याच्चैव पुनः पुनः ।
सर्वतो रमणीयं तु तस्मिन्नहनि कारयेत् ।।
चरितं देवकीसूनोर्वाचनीयं विचक्षणैः ।
जागरे पद्मनाभस्य पुराणं पठते तु यः ।।

जन्मकोटिकृतं पापं दहते तूलराशिवत् ।
महानैवेद्यमर्घ्यं च देवकीसहिताय च ।।
यमुनाकल्पितां ततः कृष्णमुल्लङ्घ्य गोकुले ।
बालकं पूर्वकल्पिते स्थापयेद्वसुदेववत् ।।
ततः प्रभातरुदिते विमले रविमण्डले ।
कृत्वा माध्याह्निकं कर्म सत्यप्रवणमानसः ।।
दापयेद्विधिवत्सर्वं श्रीगुरवे महामुने ! ।
दद्याद्वस्त्राणि सोष्णीषं कञ्चुकं मुद्रिकां तथा ।।
गुरुरपिमहारत्नदानानिसकलानि च ।
कारयेत्परया भक्त्या व्रतनिष्पत्तिहेतवे ।।
ततो व्रजेश्वरीगेहे गोपस्त्रीणां समागतिम् ।
प्रसिद्धरीतितः कृत्वा महोत्सवं च कारयेत् ।।
दधिकर्दमनामानं दधिपयःप्रभृतिभिः ।
तत्र पारणनिर्णयः करणीयो विदुत्तमैः ।।
सर्वव्रतेषु पारणं प्रातः सामान्यतः कृतम् ।
विशेषतस्तु भाभावे तिथ्यन्ते चोभयान्तके ।।

तथा कुमाराः—

रोहिणीसंयुता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता ।
वियोगे पारणं कुर्युर्मुनयो ब्रह्मवादिनः ।।

वाह्नेये—

भान्ते कुर्यात्तिथेर्वान्ते शस्तं भारत ! पारणम् ।

नारदः—

सांयोगिके व्रते प्राप्ते यत्रैकोपि विपुज्यते ।
तत्रैव पारणं कुर्यादेवं वेदविदो विदुः ।।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं क्वचित् ।

हन्यात्पुरा कृतं कर्म उपवासार्जितं फलम् ।।
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं तु चतुर्गुणम् ।
तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ।।

याज्ञवल्क्यस्तु किञ्चन सामान्यतो ऽवदत्—

याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः ।
ऋक्षान्ते पारणं तासां श्रवणं रोहिणीं विना ।।
नक्षत्रान्ते दिनान्ते च पारणं यत्र नोदितम् ।
यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणम् ।।
वयं तु साम्प्रदायिका उत्सवान्ते प्रमाणिकाः ।
सर्वथा पारणं कुर्मस्तथाहुस्सनकादयः ।।
तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते च व्रती कुर्वीत–पारणम् ।।

वायवीये—

यदीच्छेत्सर्वपापानि हन्तुं निरवशेषतः ।
उत्सवान्ते सदा विप्र ! जगन्नाथान्नमाशयेत् ।।
समाप्यैवोत्सवं तस्मात्कर्त्तव्यं पारणं बुधैः ।
नवनीतदधिलक्रैर्हरिद्रादिविमिश्रितैः ।।
परस्परं विनोदकैः परमवैष्णवैः ।
ततः स्नात्वा तु नद्यादौ चान्योन्यजलसेचनैः ।।
भगवदवशेषेण प्रियेणैव महात्मना ।
वैष्णवान्भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्यात्प्रदक्षिणाम् ।।
ततोऽश्नीयात्स्वयं भक्तो मित्रबन्धुसमन्वितः ।
विधिनाऽनेन सहितां जयन्तीं च करोति यः ।।
नारी चोद्धरते पुंसः पुरुषानेकविंशति ।
सङ्क्षेपेण तु यः कुर्याज्जयन्तीं कलिवल्लभाम् ।।
मनसेष्टफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ।

एवं जन्माष्टमीं कृत्वा कर्त्तव्यं नावशिष्यते ।।
सर्वपुण्यफलं प्राप्य ह्यन्ते याति हरेः पदम् ।
तत्कालपुष्पमाहात्म्यं वर्णितं सनकादिभिः ।।
वर्षाकाले सकलेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः ।
येऽर्चयन्ति न ते मर्त्त्या देवास्ते देववन्दिताः ।।

भविष्योत्तरे युधिष्ठिर उवाच—

तद्व्रतं कीदृशं देव ! लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् ।
जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ! ।।
येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभवाप्यय ! ।
एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ! ।।

श्रीकृष्ण उवाच—

पार्थ ! तद्दिवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् ।
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्यतमानसः ।।
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन ! ।
सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।
उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयो नोपवासस्तु लङ्घनम् ।।
अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ।
भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष ! शरणं मे भवाच्युत ! ।।
ततः स्नात्वा तु मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले ।
देवक्याः शोभनं कुर्यात् सुगुप्तं सूतिकागृहम् ।।
पद्मरागैः पटैर्नेत्रैर्मण्डितं चर्चितं शुभैः ।
रम्यं वन्दनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ।।
सर्वं गोकुलवत्कार्य्यं गोपीजनसमाकुलम् ।
घण्टामर्दलसङ्गीतं मङ्गल्यकलशान्वितम् ।।

पलार्द्रस्वस्तिकावाद्यैः शङ्खवादित्रसङ्कुलम् ।
वद्धकारीलोहखण्डैर्दीपच्छागसमन्वितम् ।।
मन्थानवारियूपैश्च भूतिसर्षपवह्निभिः ।
द्वारि विन्यस्तमुखलरक्षितं रक्षपालकैः ।।
षष्टयादेव्याश्च तत्रैव विधानं विधिवत्तथा ।
एवंविधं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं सूतिकागृहम् ।।
तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ।
काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली गोमयी तथा ।।
वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णिता लिखिताऽथवा ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्य्यङ्के चार्द्धसुप्तिका ।।
प्रतप्तकाञ्चनाभासा मया सह तपस्विनी ।
प्रस्नुता च प्रसुप्ता च तत्क्षणे च प्रहर्षिता ।।
मां चापि बालकं तत्र पर्य्यन्ते स्तनपायिनम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं नीलोत्पलदलप्रभम् ।।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ।
चतुर्भुजं महःपूर्णं स्थापयेत्तत्र भक्तितः ।।
यशोदां चापि तत्रैव प्रसूतां वरकन्यकाम् ।
तत्र देवा ग्रहा नागा यक्षविद्याधरोरगाः ।।
प्रणताः पुष्पमालाभिर्व्यग्रहस्ताः सुरासुराः ।
सञ्चरन्त इवाकाशे प्रकारैर्मुदितोदितैः ।।
वासुदेवोपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ।
कश्यपो वासुदेवोयमदितिश्चापि देवकी ।।
शेषनागो हली चात्र यशोदा दितिरेव च ।
नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ।।
एषोऽवतारो राजेन्द्र ! कंसो वै कालनेमिजः ।

तत्र कंसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधाः ।।
ते च प्रहरिकाः सर्वे सुप्ता निद्राविमोहिताः ।
अरिष्टो धेनुकः केशी दानवाः शस्त्रपाणयः ।।
नृत्यन्तोऽप्सरसो हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः ।
लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ।।
नन्दगोपं च गोपांश्च यशोदां च प्रसूतिकाम् ।
रम्यामेवंविधां कृत्वा देवकीं नवसूतिकाम् ।।
तां पार्थ ! पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः ।
बीजपूरैः पूगफलैर्नारिङ्गैः पनसैस्तथा ।।
देशकालोद्भवैर्मिष्टैः पुष्पैश्चापि सुगन्धिभिः ।
ध्यात्वाऽवतारान् प्रागुक्तान् मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।
अदितिर्देवमाता त्वं सर्वपापप्रणाशिनी ।।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भीतो भवभयस्य च ।
पूजितासि यथा देवैः प्रसन्ना त्वं वरानने ! ।।
तथा मे पूजिता भक्त्या प्रसादं कुरु सुव्रते ! ।
यथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः परा ।।
तथा मे निर्वृत्तिं देवि ! सपुत्रात्वं ददस्व मे ।
यावद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणादिनादै-
र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रकृतयुतकरैः किंकरैः सेव्यमाना ।
पर्य्यङ्के त्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते
सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी कान्तरूपा ।।
पादावभ्यज्जयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके ।।
निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रिये सदा ।। इति ।।

श्रीकृष्णजन्माष्टमीमाहात्म्यम् स्कान्दे श्रीकृष्णनारदसंवादे-

कृष्णजन्माष्टमी लोके प्रसिद्धा पापनाशिनी ।
क्रतुकोटिसमा त्वेषा तीर्थायुतशतैः समा ।।
कपिलागोसहस्रं तु यो ददाति दिने दिने ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ।।
हेमभारसहस्रं तु कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ।।
रत्नकोटिसहस्राणि देवतायतनानि च ।
कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं कविभिः स्मृतम् ।।
मात्रापित्रोर्गुरूणां च भक्तिमुद्वहतां फलम् ।
गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा स्वाम्यर्थे वा त्यजेत्तनुम् ।।
परोपकारयुक्तानां तीर्थसेवारतात्मनाम् ।
सत्यव्रतानां यत्पुण्यं जयन्त्यां समुपोषणे ।।
निराश्रमेषु वसतां तापसानां तु यत्फलम् ।
राजसूयसहस्रेषु शतवर्षाग्निहोत्रतः ।।
एकेनैवोपवासेन जयन्त्यां तत्फलं स्मृतम् ।
कृत्वा राज्यं महीं भुक्त्वा प्राप्य कीर्तिं च शाश्वतीम् ।।
जयन्त्यां चोपवासेन विष्णोर्मूर्त्तौ लयं गताः ।
धर्ममर्थं च कामं च मुक्तिञ्च मुनिपुङ्गव ! ।।
ददाति वाञ्छितान् कामान् श्रावणे मासि चाष्टमी ।
जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः ।।
कारयन्ति च विप्रेन्द्र ! लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ।
न वेदैर्न पुराणैश्च मया दृष्टं महाफलम् ।।
यत्समं ह्यधिकं वाऽपि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्माष्टम्यां द्विजोत्तम ! ।।
विवर्णवदनो भूत्वा तल्लिप्यं मार्जयेद्यमः ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

या तु कृष्णाष्टमी नाम विश्रुता वैष्णवी तिथिः ।
तस्याः प्रभावमाश्रित्य पूताः सर्वे कलौ जनाः ।।
श्रावणे मासि बहुला रोहिणीसंयुताऽष्टमी ।
जयन्तीति समख्याता सैवाघौघविनाशिनी ।।
तस्यां विष्णुतिथौ ते वै धन्याः कलियुगे जनाः ।
येऽभ्यर्चयन्ति देवेशं जयन्त्यां समुपोषिताः ।।
न तेषां विद्यते क्वापि संसारभयमुल्बणम् ।
यत्र तिष्ठन्ति देवेशि ! कलिस्तत्र न तिष्ठति ।।

भविष्योत्तरे च—

एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन ! ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।

विष्णुधर्मे—

यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने वार्द्धके तथा ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।।
तत् क्षालयति गोविन्दं तस्यामभ्यर्च्य भक्तितः ।
होमयज्ञादिदानानां फलं च शतसंमितम् ।।
सम्प्राप्नोति न सन्देहो यच्चान्यन्मनसेप्सितम् ।
उपवासश्च तत्रोक्तो महापातकनाशनः ।।

विष्णुरहस्ये—

जयन्त्यामुपवासं तु कृत्वा योऽर्चयते हरिम् ।
तस्य जन्मशतोद्भूतं पापं नश्यति तत्क्षणात् ।।
कौमारयौवने वाच्यं वार्द्धके यदुपार्जितम् ।
तत्पापं शमयेत्कृष्णस्तिथावस्यां सुपूजितः ।।
स्नानं दानं तथा होमः स्वाध्यायोऽथ जपस्तपः ।

सर्वं शतगुणं प्रोक्तं जयन्त्यां यत्कृतं हरेः ।।
धनधान्यमहापुण्या सर्वपापहरा शुभा ।
समुपोष्या नरैर्यत्नाज्जयन्ती कृष्णभक्तिदा ।।

अथ प्रसङ्गाद्भाद्रचतुर्थ्यां चन्द्रदनर्शनिषेधादिकमुच्यते । तत्र चन्द्र-दर्शननिषेधमाह मार्कण्डेयः—

सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् ।
मिथ्याभिदूषितं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ।।
पराशरः कन्यादित्ये चतुर्थ्यान्तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् ।
मिथ्याभिदूषितं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ।।
तद्दोषशान्तये सिंहः प्रसेनमिति वै पठेत् ।।

ब्रह्मपुराणे—

ततश्चतुर्थ्यां चन्द्रन्तु यदि पश्येत्कदाचन ।
पठेत्पौराणिकं वाक्यं प्राङ्मुखो वा उदङ्मुखः ।।

पौराणिकं वाक्यं तु विष्णुपुराणे—

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक ! मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।। इति ।।

शुक्लाष्टम्यां लक्ष्मीव्रतारम्भः तदुक्तं भविष्योत्तरे—

भाद्रे मासि सिताष्टम्यां प्रारम्भोऽस्य विधीयते ।
ततः प्रभातमारभ्य यावत्स्यादसिताऽष्टमी ।।

तस्यामेव श्रीराधाजन्मोत्सवः तदुक्तं भविष्योत्तरे—

भाद्रे मासि सिते पक्षे या पवित्राऽष्टमी तिथिः ।
राधाजन्मोत्सवं तत्र कारयेत्कृष्णसेवकः ।।
मध्यान्हे वृश्चिके लग्ने ज्येष्ठायाः सप्तमे पदे ।
मुहूर्तेभिजितिके विप्राः ! जाता राधा हरिप्रिया ।।

स नित्यः—

भो विप्र ! ये न कुर्वन्ति राधाजन्ममहोत्सवम् ।
तेषां तु वार्षिकं कृत्यं भस्माहुतिसमं भवेत् ।।

इति भविष्योत्तरोक्तेः ।

श्रीमदाचार्य्यवर्येणाप्युक्तः—

शुक्लाष्टम्यां तु भाद्रस्य राधाजन्ममहोत्सवम् ।
करणीयं बहुप्रेम्णा जन्माष्टमीव्रतादपि ।।

तत्र व्रतं कर्त्तव्यमुत्सवमात्रं वेति सन्देहः प्राप्तः, तत्रोच्यते—

भाद्रशुक्लाष्टमीं शुद्धां कुर्याद्भक्तिविवर्द्धनीम् ।
उपोष्या नवमीविद्धा मुनियुक्तां च वर्जयेत् ।।
सर्वव्रताधिका पुण्या द्वादशी कृष्णवल्लभा ।
तस्मात्पुण्यतमा विष्णोः कृष्णजन्माष्टमी शुभा ।।
तस्मात्प्रियतमा श्रीमद्राधाजन्माष्टमी द्विजाः ! ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सोपोष्या मानवैः कलौ ।। इति ।

भविष्योत्तरे—

उपवासस्यावश्यकतया व्रतपूर्वक उत्सवः
कार्यो न तूत्सवमात्रम् उत्सवस्तु जन्माष्टमीवत् ।

तत्र शुक्लैकादश्यां कटिदानोत्सवः कार्यः—

प्राप्ते भाद्रपदे मासि त्वेकादश्यां सितेऽहनि ।
कटिदानं भवेद्विष्णोर्महापातकनाशनम् ।।
देवदेव जगन्नाथ योगिगम्य श्रियःपते ! ।
कटिदानं कुरुष्वाद्य मासे भाद्रपदे शुभे ।। इति ।
द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्त्तनोत्सवाः ।।

इति च भविष्ये ।

श्रीमदौदुम्बरः—

क्रीडयित्वा जलयानैः पुनर्मन्दिरमानयेत् ।
तदा महोत्सवः कार्यः स्वशक्त्या वैष्णवैर्मुदा ।।
गन्धाद्यैर्गीतवाद्यैश्च पताकाचैलतोरणैः ।। इति ।

तत्र शुक्लद्वादश्यां श्रीमद्वामनोत्सवः कार्यः—

श्रोणाश्रवणद्वादश्यां मुहूर्त्तेऽभिजिति प्रभुः ।
ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ।।
द्वादश्यां सविता तिष्ठन्मध्यन्दिनगते नृप ! ।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ।।

इति भागवतोक्तेः ।

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां विष्णुदैवते ।
आदित्यामाविरभूद्विष्णुरुपेन्द्रो वामनोऽव्ययः ।।

इति हारीतस्मृत्युक्तेश्च ।

भविष्ये कृष्णः--

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।
सर्वकामप्रदा पुण्या उपवासे महाफला ।।
सङ्गमे सरितां स्नात्वा ततस्तर्पणमाचरेत् ।
अद्य नाशमवाप्नोति द्वादश्या द्वादशीफलम् ।।

बुधश्रवणसंयुक्ता सा चैव विजया मता ।
द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति भारत ! ।।
सङ्गमे सरितां स्नात्वा शतयज्ञाधिकं फलम् ।
जपोपवासमासाद्य नात्र कार्या विचारणा ।।

ब्रह्मवैवर्त्ते--

मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे यदि हरेर्दिनम् ।
बुधश्रवणसंयोगः प्राप्यते तत्र पूजितः ।।
प्रयच्छति शुभान्कामान्वामनो मनसि स्थितान् ।
विजया नाम सा प्रोक्ता तिथिः प्रीतिकरी हरेः ।।

नारदः--

यदा च शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत् ।

तदा सा तु महापुण्या द्वादशी विजया मता ।।
मन्त्रदानोपवासाद्यमक्षयं तु प्रकीर्तितम् ।
श्रवणेनान्विता यत्र द्वादशी लभते क्वचित् ।।
उपोष्यैकादशी तत्र द्वादश्यामर्चयेद्धरिम् ।
दशम्यां नियमं कृत्वा चैकादश्यां व्रतान्वितः ।।
उपोष्य द्वादशीं तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ।
नन्वेवं विधिलोपः स्यात्सत्युत्तरोत्तरे व्रते ।।
नैवं शास्त्राननुज्ञानात्तथाहुः सनकादयः ।
मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।।
महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ।
एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमप्युपोषयेत् ।।
न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः ।
असमाप्तव्रतो ह्येवं कुर्याद्व्रतमिति श्रुतिः ।।

भविष्ये कृष्णः—

उपोष्यैकादशीं शुद्धां द्वादशीं समुपोषयेत् ।
न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः ।।

मात्स्ये—

द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नभस्ये श्रवणे यदि ।
उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादशीमप्युपोषयेत् ।।

ब्रह्माण्डे—

द्वादश्यां तु दिने भाद्रे हृषीकेशर्क्षसंयुते ।
उपवासद्वयं कुर्याद्विष्णुप्रीणनतत्परः ।।
नक्षत्रमात्रस्पर्शापि सर्वेज्यासनकास्तथा ।
द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पूज्यतमा मता ।
न चासौ तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते ।।

गोविलः—

या तिथिर्भेन संयुक्ता या च योगेन नारद !।
मुहूर्त्तद्वयमात्रापि सा सर्वा हि प्रशस्यते ।।

कुमाराः—

द्वादशी श्रवणस्पृष्टा पलमात्रं यदा नृप !।
उपवासद्वयं कुर्याद्विष्णुप्रीणनतत्परः ।।

मार्कण्डेयः—

श्रवणर्क्षसमायुक्ता द्वादशी यदि लभ्यते ।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ।।
द्वादश्यां श्रवणं यर्हि स्वल्पमपि न लभ्यते ।
एकादशी तदापोष्या सैव चेच्छ्रवणान्विता ।।

तथा कुमाराः—

श्रवणलेशवर्जिता वामनद्वादशी भवेत् ।
एकादशी यदा वा स्याच्छ्रवणेन समन्विता ।।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता पापानां विजयप्रदा ।।

नारदीये—

यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित् ।
एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता ।।

एवमादिवाक्यबलाच्छ्रवणद्वादशीव्रते एकादश्यां प्रोक्तमपि—

न चासौ तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते ।।

इति वाक्यबलात् केवलायामपि द्वादश्यां श्रीवामनजन्मोत्सवमात्रं कार्यम् । द्वादश्यां श्रवणयोगे तु एकादशीं समुपोष्य तद्विहिततिथ्यां सव्रतो जन्मोत्सवः कार्यः । त्रयोदश्यां पारणोत्सव इति विवेकः । सा च पूर्वविद्धापि कार्या—

द्वादशी च प्रकर्त्तव्या एकादश्या युता विभो !।

सदा कार्या च विद्वद्भिर्विष्णुभक्तैश्च मानवैः ॥

इति स्कान्दोक्तेः ।

किञ्चैकादश्यां यदा श्रवणं द्वादशी च भवेत्तदा विष्णुशृङ्खलं भवति ।
तथा विष्णुधर्मोत्तरे—

एकादशी द्वादशी च वैष्णवं चापि तत्र चेत् ।
तद्विष्णुशृङ्खलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत् ॥ इति ।

तथा मात्स्ये—

द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि ।
स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृङ्खलसंज्ञितः ॥
व्रतद्वयासमर्थस्तु त्यक्त्वैवैकादशीमपि ॥
द्वादशीं समुपवसेदुभयोः फलदायिकाम् ।

तथा वामने—

एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषयेत् ।
व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

बौधायनः—

एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ।
पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
दिनद्वयेऽपि श्रवणाभावे तद्योगहानितः ।
एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां वामनं यजेत् ॥
अनेन निर्णयेन तु महाग्रहोपवासिनाम् ।
व्रतद्वयेऽप्यसामर्थ्ये द्वादश्याः श्रेष्ठमीरितम् ॥
एवं कृतव्यवस्थयैकादशीं द्वादशीमुभे ।
संविवेच्य सुनिश्चित्य विधिना समुपोषयेत् ॥

पारणानिर्णयस्तु जन्माष्टमीवत् । अत्रोत्सवान्तस्तु रात्रिजागरमारभ्य परदिने भगवत्पूजनावधिर्ज्ञेयः । भविष्योत्तरोदितस्तद्विधिरुक्तः

श्रीमदौदुम्बराचार्यैः तथाहि—

कृष्णस्तं विधिमाह च भविष्योत्तरके तथा ।
आदौ गुरुगृहं गत्वा पश्चान्नियमं तु कारयेत् ।।
मन्त्रेण प्रार्थयेद्विद्वान्वामनं व्रतदैवतम् ।

मन्त्रः—

प्रसन्नो भव देवेश ! कृपां कुरु ममोपरि ।
द्वादश्यां च निराहारः स्थित्वा चैवापरेऽहनि ।।
भोक्ष्ये त्रिविक्रमानन्त ! शरणं मे भवाच्युत ! ।
ततश्चोपोष्य मध्याह्ने श्रीवामनाविरस्तिकाम् ।।
ध्यात्वा पञ्चामृतादिभिर्महास्नानं विधाय च ।
महाभोगादि सम्पाद्य गृहे परमवैष्णवान् ।।
समाहूय समाहृतानवशेषप्रभृतिभिः ।
गीतवादित्रनृत्याद्यैर्महोत्सवं च कारयेत् ।।
द्वादश्यां सोपवासः सन् रात्रौ सम्पूजयेद्धरिम् ।
जलपूर्णं स्थितं कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः ।।
पञ्चरत्नसमोपेतं सोपवीतं सुपूजितम् ।
तस्य स्कन्धे सुनिर्मितं स्थापयित्वा जनार्दनम् ।।
स्वर्णमयं यथाशक्त्या शार्ङ्गशरविभूषितम् ।
स्थापयित्वा विधानेन सितचन्दनचर्चितम् ।।
सितवस्त्रसमोपेतमुपानच्छत्रसंयुतम् ।
वैष्णवयष्टिसंयुक्तं साक्षकक्षापवित्रकम् ।।
ॐ नमो भगवतेऽस्तु चतुर्भुजाय वै नमः ।
वासुदेवाय नमोऽस्तु शिरः सम्पूज्य भक्तितः ।।
श्रीरामाय मुखं कण्ठं श्रीकृष्णाय नमस्तथा ।
श्रीपतये नमो वक्षो भुजो शस्त्रास्त्रधारिणे ।।

व्यापकाय नमः कुक्षी कवीशायोदरं नमः ।
त्रैलोक्यजननायेति मेढ्रसंज्ञं जनो हरेः ।।
सर्वाधिपतये जानू पादौ सर्वात्मने नमः ।
अनेन विधिना सम्यक्पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ।।
ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं विविधं शुभम् ।
सोदकं नवकुम्भं च भक्त्या दद्याद्विचक्षणः ।।
एवं सम्पूज्य राधेशं नानालीलानुकारिणम् ।
जागरं तत्र कुर्वीत गीतवादित्रनर्तनैः ।।
प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य गरुडध्वजम् ।
पुष्पैर्नैवेद्यसंयुक्तैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभनैः ।।
पुष्पाञ्जलिं ततः कृत्वा मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।
नमस्ते कृष्णगोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ! ।।
सर्वपापक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।
श्रीगुरवे त्वनश्वरं परमधर्मशिक्षिणे ।।
दापयेच्छक्तितो भक्त्या गोमहीकाञ्चनं वसु ।
धिष्ण्यं धान्यं च वस्त्रं च भूषणं मधुरं वचः ।।
प्रार्थ्य श्रीवामनं विष्णुं सर्वमन्त्रेण दापयेत् ।।

तत्र प्रार्थना—

प्रीयतां देवदेवेश ! मम नित्यं जनार्दन ! ।
गोदानं हेमदानं च भूदानं सम्प्रदीयताम् ।।

दानमन्त्रः—

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम् ।
वामनोऽस्य प्रतिग्राही तेनेयं वामने रतिः ।।

प्रतिग्रहमन्त्रः—

वामनः प्रतिगृह्णातु वामनो वै ददाति च ।

वामनोऽस्य प्रतिग्राही तेनेयं वामने रतिः ।।
आदावर्घ्यः प्रदातव्यः पश्चात्प्रस्वापयेद्धरिम् ।।
नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घ्यं विचक्षणः ।

अर्घ्यमन्त्रः—

वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वामनाय नमोऽस्तु ते ।।
अनेनैव विधानेन नद्यास्तीरे नरोत्तमः ।
निवर्त्तयेत्ततः सम्यगेकभक्तिरतोपि सन् ।।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

गृहीत्वा नियमं प्रातर्गत्वा नद्योश्च सङ्गमे ।
सौवर्णं वामनं कृत्वा सौवर्णमाषकेण वा ।।
यथाशक्त्याऽथ वित्तस्य कुम्भोपरि जगत्पतिम् ।
स्वर्णपात्रे स्नापयित्वा मन्त्रैरेतैः प्रपूजयेत् ।।
ॐ वामनाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ।
ऊरू श्रीपतये गुह्यं कामदेवाय पूजयेत् ।।
पूजयेज्जगतां पत्युरुदरं विश्वधारिणे ।
हृदयं योगनाथाय कण्ठं श्रीपतये नमः ।।
मुखं च पङ्कजाक्षाय शिरः सर्वात्मने नमः ।
इत्थं सम्पूज्य वासोभिराच्छाद्य च जगद्गुरुम् ।।
दद्यात् सुश्रद्धया चार्घ्यं नारिकेरादिभिः फलैः ।। इति ।

तन्माहात्म्यं भविष्योत्तरे—

समाप्ते तु व्रते तस्मिन्यत्पुण्यं तन्निबोध मे ।
चतुर्युगानि राजेन्द्र ! सप्तसप्ततिसंख्यया ।।
प्राप्तं विष्णुपुरं राजन्क्रीडते फलमक्षयम् ।
इहागत्य भवेद्राजा प्रतिपक्षक्षयङ्करः ।।

एषा पुष्टिमयी ख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ।
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना !।।
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र ! द्वादशी कामदा कृता ।।

स्कान्दे—

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।
महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ।।
सङ्गमे सरितां पुण्ये द्वादशीं तामुपोषितः ।
आप्लवादेव चाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ।।
बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेत् द्वादशी भवेत् ।
अत्यन्तमहती तस्यां दत्तं भवति चाक्षयम् ।।
अर्चयित्वाऽच्युतं भक्त्या लभेत्पुण्यं दशाब्दिकम् ।
फलं दशहुतानां च तस्यां लक्षगुणं भवेत् ।।

ब्रह्मवैवर्त्ते पितापुत्रसंवादे—

मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे यदि हरेर्दिने ।
बुधश्रवणसंयोगः प्राप्यते तत्र पूजितः ।।
प्रयच्छति शुभान् कामान् वामनो मनसि स्थितान् ।
विजया नाम सा प्रोक्ता तिथिः प्रीतिकरी हरेः ।।
सङ्गमे सर्वतीर्थानां सङ्गमस्तत्र जायते ।
शुक्ला भाद्रपदे स्वर्गं कृष्णा कलुषसंक्षयम् ।।
फाल्गुने कुरुते मोक्षमपि ब्रह्मवधान्ननृणाम् ।
महापुण्यप्रदा ह्येषा संगमे विजया तिथिः ।।
सर्वपापक्षयो नूनं जायते तदुपोषिणाम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे श्रीपरशुराम उवाच—

उपवासासमर्थानां किं स्यादेकमुपोषितम् ।।
महाफलं महादेव ! तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।

श्रीशङ्कर उवाच—

या राम ! श्रवणोपेता द्वादशी महती तु सा ।
तस्यामुपोषितः स्नातः पूजयित्वा जनार्दनम् ।।
प्राप्तोत्ययत्नाद्धर्मज्ञ ! द्वादशद्वादशीफलम् ।।

भविष्योत्तरे श्रीयुधिष्ठिर उवाच—

उपवासासमर्थानां सदैव पुरुषोत्तम ! ।
एका या द्वादशी पुण्या तां वदस्व ममानघ ! ।।

श्रीकृष्ण उवाच—

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।
सर्वकामप्रदा पुण्या उपवासे महाफला ।।
सङ्गमे सरितां स्नात्वा गङ्गास्नानादिजं फलम् ।
सोपवासः समाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ।।

तत्र शुक्लचतुर्दश्यामनन्तोत्सवः—

मासि भाद्रपदे शुक्ले चतुर्दश्यां द्विजोत्तम ! ।
अनन्तं पूजयेद्भक्त्या दानं दद्याच्च शक्तितः ।।

इति पुराणान्तरोक्तेः ।।

सा विद्धाधिके किञ्चन्मात्रनिर्गमने परेद्युरेव-"चतुर्दश्युदये किञ्चिदिति" नागरखण्डोक्तेः । प्रसङ्गादिदमप्युक्तम् ।।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धौ त्रयोविंशस्तरङ्गः ।। २३ ।।

अथाश्विनकृत्यम् ।।

श्रीनिवासपदद्वन्द्वचिन्तनामृतप्राशने ।
अकर्मपङ्कपूर्णाङ्गं क्षालयेत्कर्मवारिभिः ।।

तत्र कृष्णप्रतिपदमारभ्य शुक्लप्रतिपदावधि श्राद्धकालः । तदुक्तं नागरखण्डे—

नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकस्तु यः ।

कन्यागतान्वितश्चेत्स्यात्स मुख्यः श्राद्धकर्मणि ।। इति ।।

अत्रासन्दिग्धे सन्दिग्धवचनं **नभस्य** इति । अमान्तमासेन तत्तिथिषोडशकस्तु देवलेन स्पष्टतयोक्तः—

अहःषोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह ।
चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता ।। इति ।

स श्राद्धो **नित्यः**—

आषाढ्या पञ्चमे पक्षे यः श्राद्धं न करिष्यति ।
शाकेनापि दरिद्रोऽपि सोऽन्त्यजत्वमुपैष्यति ।।
आसनं शयनं भोज्यं स्पर्शनं भाषणं तथा ।
तेन श्राद्धं करिष्यन्ति ये ते पापतरा नराः ।।

इत्ति नागरखण्डोक्तेः ।

यत्र श्राद्धनिषेधस्तत्राह--**वसिष्ठः**—

नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु ।
एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ।। इति ।।

श्रीनारदः—

न नन्दासु भृगोर्वारे रोहिण्यां च त्रिजन्मसु ।
रेवत्यायां मघायां च कुर्यादापरपाक्षिकम् ।। इति ।।

नन्दा-प्रतिपत्, षष्ठ्येकादश्यः त्रिजन्मान्याद्यदशमैकोनविंशतिनक्षत्राणि । **अन्ये** तु जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मानीत्याहुः । **ननु** धनाढ्यश्चेन्निषेधतिथौ त्यक्त्वा विहिते श्राद्धं कुर्यात्तत्र धनहीनस्य का गतिरिति **चेदुच्यते**—

यो वैः श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे ।
तस्य संवत्सरं यावत् सन्तृप्ताः पितरो ध्रुवम् ।।

इति नागरखण्डोक्तेस्तन्निस्तारः ।

नियमस्तत्रैव—

आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे ।
मृताऽहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः ।।
तस्य संवत्सरं यावत्सन्तुष्टाः पितरो ध्रुवम् ।। इति ।।

तथा कात्यायनः—

या तिथिर्यस्य तातस्य मृताहे तु प्रवर्तते ।
सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ।। इति ।।

ननु यस्य पञ्चम्यवधौ पितुर्मृताहनि कंन्यासंक्रमश्चेत् षष्ठ्यां वा तदा स किं करोति तदुच्यते—

आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।।
श्राद्धं तत्र प्रकुर्वीत कन्या गच्छतु मानवाः ।।
इति नागरखण्डोक्तेः ।

किञ्च—

विवाहे विहिते मासांस्त्यजेयुर्द्वादशावधि ।
सापिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि ।।
इति ज्योतिःपराशरेणोक्तम् ।

तस्यापवादः स्मृतिसङ्ग्रहे—

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ।।
कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सुतः ।। इति ।

तत्र पिण्डदानेऽधिकारिणो हेमाद्रौ—

उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः ।
श्वसुरभ्रातृतत्पुत्रऋत्विक्शिष्याप्तयोषकाः ।।
भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः ।
पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा ।।
सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये ।

एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः ।। इति ।

विरक्तानां तु श्राद्धकरणे द्वादश्यामेव नियमः, तच्चोक्तं पृथिवीचन्द्रोदये—

यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः ।
द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः ।। इति ।

वैष्णवानां त्वयं विवेकः पद्मपुराणे—

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् ।
पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते ।। इति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं
ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम् ।
तेनैव पिण्डान् तुलसीविमिश्रिता-
नाकल्पकोटि पितरः सुतृप्ताः ।। इति ।।

श्राद्धे निर्विद्यत्वादिना वैष्णवापमाने दोषस्तदादरे च गुण उक्तः स्कान्दे—

यस्तु विद्याविनिर्मुक्तं मूर्खं मत्वा तु वैष्णवम् ।
वेदविद्भ्यो ददाद्विप्रः श्राद्धं तद्राक्षसं भवेत् ।।
अविद्यो वा सविद्यो वा वैष्णवो विष्णुवद्भवेत् ।
सर्वयज्ञेषु मान्योऽसौ स ज्ञेयः पंक्तिपावनः ।।
सिक्थमात्रं तु यद्भुङ्क्ते जलगण्डूषमात्रकम् ।
तदन्नं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ।। इति ।।

ब्रह्माण्डपुराणे—

शङ्खचक्राङ्कितो विप्रो भुङ्क्ते यस्य तु वेश्मनि ।
तदन्नं स्वयमश्नाति पितृभिः सह केशवः ।। इति ।।

यदा शुद्धैकादशी तदा द्वादश्यां श्राद्धं यद्येकादशी विद्धा तदा

त्रयोदश्यां श्राद्धं कर्त्तव्यम् । ननु—

अद्यप्रभृति यः श्राद्धं त्रयोदश्यां करिष्यति ।
कन्यासंस्थे सहस्रांशौ तस्य स्याद्वंशसंक्षयः ।।

इति नागरखण्डोक्तेस्तत्र श्राद्धे प्राप्ते किं कर्त्तव्यमिति चेत्, उच्यते तत्रैव—

अतः श्राद्धं विना देयं तद्दिने मधुपायसम् ।
वैष्णवेभ्यः सुविप्रेभ्यः पितृणां तुष्टये नृप ! ।। इति ।
मण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ।
न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ।।

इति दक्षोक्तेर्जीवत्पितृकस्य सर्वश्राद्धेषु निषेधे प्राप्ते विधिं दर्शयति निर्णयामृते—

अनष्टक्यां गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि ।
मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ।।

अत्र तु नवम्यां नियमः तत्रैव—

सर्वासामपि मातृणां श्राद्धं कन्यागते रवौ ।
नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा हि ताः ।। इति ।।

मातृश्राद्धे स्त्रीभोजनस्यावश्यकता तदुक्तं मार्कण्डेये—

मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम् ।
सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ।। इति ।।

तत्र षष्ठ्यां भौमवाररोहिणीनक्षत्रयोर्योगे सा कपिलाषष्ठी। सोक्ता वाराहे—

नभस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणी या तु भूसुतैः ।
युता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ।।
व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् ।
कपिलां च द्विजाग्र्याय दत्वा क्रतुफलं लभेत् ।। इति ।

तत्र त्रयोदश्यां यदा गजच्छायायोगस्तदा तत्र श्राद्धं कर्त्तव्यम्—

अषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गयामध्याऽष्टमी स्मृता ।
त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्ये तु पैतृके ॥

इति ब्रह्माण्डोक्तेः ।

गजच्छायायोगस्तु ब्राह्मेऽभिहितः—

योगो मघात्रयोदश्या जगच्छायासुसंज्ञकः ।
भवेन्मघायां संस्थे च शशिन्यर्के करे स्थिते ॥ इति ।

इदं पक्षकृत्यं प्रसङ्गादुक्तम् ॥

तत्र शुक्लसप्तम्यां मूलनक्षत्रे सरस्वतीस्थापनमुक्तं देवीपुराणे—

मूलेषु स्थापनं देव्या पूर्वाषाढासु पूजनम् ।
उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत् ॥

रुद्रयामले च—

मूलऋक्षे सुराधीश ! पूजनीया सरस्वती ।
पूजयेत्प्रत्यहं देवीं यावद्वैष्णवमृक्षकम् ॥
नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन ।
पुस्तके स्थापिते देवी विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥ इति ।

प्रसङ्गादिदमप्युक्तम् ॥

तत्र शुक्लदशम्यां विजयोत्सवः—

विजयायां दशम्यां च मुहूर्त्ते विजयाभिधे ।
श्रवणर्क्षे च राजेन्द्र ! प्रस्थानं विजयप्रदम् ॥

इति गर्गोक्तेः ।

अत्रैकादशमुहूर्त्तो विजयाभिधः स च ज्योतिः शास्त्रे प्रसिद्धः । किञ्च-यदा परेद्युः केवला दशमी किञ्चिद्वृद्धिं गता तदा पराजितापूजनं पूर्वेद्युरेव प्राप्तं श्रीभगवदुत्सवस्तु परेद्युरेव । तदुक्तं सुमन्तुना—

पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या दशम्यां पूजयेच्छमीम् ।

परविद्धैव कर्त्तव्या अभ्यङ्गादिमहोत्सवे ।। इति ।

अत्रापिशब्दो राज्याभिषेकादिपर,—

ईषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् ।

श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ।।

इति पुराणसमुच्चयोक्तेः ।। प्रसङ्गादिदमप्युक्तम् ।।

तत्र विशेषकृत्यमस्माकं श्रीकुमारा आहुः—

विजयादशमीं ज्ञात्वा रामलीलानुसारिणम् ।

आश्विनस्य सिते पक्षे सीमासङ्क्रमणोत्सवम् ।। इति ।।

तथा श्रीमदाचार्या आहुः—

श्रीरामं रथमारोप्य सर्वानुकरणैः सह ।

समतिक्रामयेद्रामं स्वसीमानं विधानतः ।।

रावणादिविजयाय सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।

रामलीलां समुद्दिश्य रावणादिवधादिकम् ।। इति ।।

तत्र पूर्णिमायां रामोत्सवः कार्यः । आश्विनशुक्लपूर्णिमावधिकृत्यं नारदीयपुराणेऽभिहितम्—

यः कुर्याद्ब्राह्मणश्रेष्ठ ! रासक्रीडामहोत्सवम् ।

तस्य चित्ते परां भक्तिं यादवेन्द्रः प्रयच्छति ।।

सा विद्धाधिके तु परेद्युरेव—

भूतविद्धा न कर्त्तव्या दर्शपूर्णा कदाचन ।

इति ब्रह्मवैवर्त्तोक्तेः ।।

पूर्वविद्धदिने दत्तं यत्किञ्चित्पूजनं च वै ।

नैव गृह्णाति वैकुण्ठः पूजां तद्दिनसंभवाम् ।।

इति नारदीयोक्तेश्च ।।

उदये या कलामात्रा सा व्याप्नोत्यखिलं दिनम् ।इत्यादि।।

गौतमीयतन्त्रे षोडशाध्याये—

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तमानसं देवकीसुतम् ।
रासगोष्ठीपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम् ।।
वृन्दावनगतं ध्यायेच्छायायां कलशाखिनः ।

इत्यादिना ध्यानं विस्तरतः प्रोक्तम् । शक्तौ तु रासकर्त्तव्यतायां विधिर्दर्शितो बृहद्गौतमीये । श्रीगौतम उवाच—

वन्देहं श्रीगुरुं देवं रासकेलिस्वरूपिणम् ।
सखीरूपधरं विज्ञं राधाकृष्णात्मकं विभुम् ।।
आदावाचमनं कार्यं प्राणायामस्ततः परम् ।
प्रतिज्ञां तन्मनोवाग्भिर्महत्सङ्गं समाश्रितः ।।
सावधानं मनः कृत्वा कारयेद्विधिसंयुतम् ।
राधाकृष्णाद्यशेषं च प्रतिष्ठां कारयेद्ध्रुवम् ।।
रासस्थलप्रतिष्ठेयं मया कर्त्तुं नियुज्यते ।
श्रीकृष्णरमणार्थाय राधया सह तद्व्रते ।।
राधाधवौ राधिकाकृष्णौ रसरूपौ रसात्मकौ ।
रासक्रीडाप्रियौ पूर्णौ स्वाङ्गीकारं कुरुतां मे ।।

अस्य श्रीरासक्रीडामान्त्रस्य मुग्धानारदऋषिर्गायत्रीछन्दः ॐक्लींसाक्षान्मन्मथबीजं प्रेमाब्ध्युद्भवस्वाहा शक्तिः श्रीराधाकृष्णौ देवौ रासक्रीडायां परस्परानन्दप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः । ॐक्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐ रासतर्जनीभ्यां नमः ॐ रसमध्यमाभ्यां नमः ॐ विलासिन्यै अनामिकाभ्यां नमः ॐ राधाकृष्णौ कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐ स्वाहाकरतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॐ क्लीं हृदयाय नमः ॐ रासशिरसेस्वाहा ॐ रसशिखायै वषट् ॐ विलासिन्यै नेत्राभ्यां वौषट् श्रीराधाकृष्णौ कवचायहुं ॐ स्वाहा अस्त्रायफट् ।। अथ ध्यानम्—

ध्येयं वृन्दावने रम्यं द्रुममण्डलमण्डितम् ।
द्विजालिकुलसंन्नादिफलितं पुष्पपत्रितम् ।।

लसन्मणिमयीभूमिजाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
कङ्कणाकारकालिन्दीहंसपद्मादिसङ्कुलम् ।।
तन्मध्ये मण्डलं सुष्ठु योजनत्रयवर्त्तुलम् ।
तन्मध्ये षोडशदलं पद्मं तदुपरिस्थितम् ।।
किशोरौ गौरश्यामाङ्गौ कोटिकन्दर्पमोहनौ ।
राधाकृष्णाविति ख्यातौ वेणुना चिह्नितौ नुमः ।।
मुख्याष्टसखिभिर्युक्तौ गोपिकाशतयूथपौ ।
राधाकृष्णावहं वन्दे रासमण्डलमध्यगौ ।।
प्रियलोकरसौ दिव्यं गोलोकाख्यं पदं त्विह ।
गच्छेति हरिक्रीडार्थं वृन्दारण्यं नमाम्यहम् ।।
मण्डलं सुमहत्सौम्यं सखियूथायुतान्वितम् ।
वृन्दादेवि ! नमस्तेऽस्तु इहागच्छ समं पदम् ।।
राधाकृष्णविलासार्थमागच्छद्रविजा सरित् ।
मन्मथमन्मथौ साक्षात्केलिरूपौ रतिप्रियौ ।।
राधाकृष्णावहं वन्दे रासक्रीडासुखावुभौ ।
नमः शशाङ्कदेवाय निर्मलोडुगणाय च ।।
उदिते रासक्रीडार्थं राधाहर्योर्यदृच्छया ।
प्रजपेद्वस्त्रभूषाभ्यां मण्डलेस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।।
बर्हापीडं च वेणुं च कृष्णक्रीडोचितं विभुम् ।
चन्दनं वन्दनं पुष्पबहुधाभक्षसञ्चयम् ।।
ताम्बूलं सुष्ठु गन्धं च यच्चान्यदुपचारकम् ।
धूपदीपार्तिकायुक्तं मन्त्रेणाप्यर्चयेद्बुधः ।।
एवं रासे यजेत्सत्यं राधाकृष्णात्मको भवेत् ।
यत्र यत्र स्थितिर्यस्य रासक्रीडावलोकने ।।
तत्र तत्र सुखे स्थित्वा दासीभूत्वा विलोकयेत् ।

रासरूपान्निनादांश्च वापकागायकास्तथा ।।
राधाहर्योर्विलासार्थे सानुकूला भविष्यथ ।
तत्तदा विलिखत्सुष्ठु मण्डलं कमलाकृति ।।
दलैः षोडशभिर्युक्तं कर्णिकाकेशरान्वितम् ।
पत्रे पत्रे लिखेत्सख्यः आद्यायाः पूर्ववत् क्रमात् ।।
तत्सखी तत्समीपस्थे पत्रे कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
मुख्यपत्रे सखीमुख्या समीपे तत्समीपगा ।।
एवं षोडशभिः पत्रैर्लेख्याः सख्यः सहानुगाः ।
देव दक्षिणतः पूर्वं स्वगुरुं स्थापयेत्सुधीः ।।
राधाकृष्णात्मकं श्रीमान् राधाकृष्णस्वरूपिणम् ।
प्रेमपत्रमयं सुष्ठु हेयरागविवर्जितम् ।।
सखीरूपधरं भूत्वा गुरुं रासे विलोकयेत् ।
तथाभूतात्मनो रूपं तत्कृपाप्रापितो भवेत् ।।
अनन्यसाधनैर्लभ्यः प्रवेशो रासमण्डले ।
तस्मात्सर्वात्मना सेव्यः श्रीगुरुस्तत्पदेप्सुभिः ।।
विना ईदृग्विधां दीक्षां प्रसादात्सद्गुरोर्विना ।
विना ईदृग्विधैर्धर्मैः कथमीदृग्विधो भवेत् ।।
तस्मान्नत्वा गुरोः पादौ हृदि रूपं विचिन्तयेत् ।
वचसा तद्गुणान् गायन्मण्डलं स्थापयेत्पुनः ।।
मध्ये च राधिकाकृष्णौ गौरश्यामौ सुशोभनौ ।
गुरुं च दक्षिणे पार्श्वे पूर्वे च ललितां सखीम् ।।
विशाखां दक्षिणे पूर्वे दक्षिणे चम्पकीलताम् ।
दक्षिणे पश्चिमे चित्रां तुङ्गविद्यां च पश्चिमे ।।
पश्चिमोत्तरयोः स्थाप्य इन्दुलेखां सुशोभनाम् ।
उत्तरे रङ्गदेवीं च ह्यष्टमीं च सुदेविकाम् ।।

उत्तरेन्द्रदिशायां च राजतीं सहसाम्बिकाम् ।
इत्यष्टौ च सखी मुख्यास्तस्यां तस्यां सखीस्तथा ।।
प्रसन्नास्याः प्रपश्यन्त्यो भ्राजमानाः सर्वतो दिशम् ।
वृन्दाद्यान्या सखीः सर्वाः स्थापयेत्तत्समीपतः ।।
स्वाधिकारा सखीमुख्यास्ततः पूज्याः पृथक् पृथक् ।
एवं तन्नामभिः पूज्यं यूथं यूथं सहस्रकम् ।।
सर्वतोमण्डले स्थाप्य मध्ये श्रीराधिकाहरी ।
कोटिकन्दर्पलावण्यौ लावण्यामृतमेदुरौ ।।
पीतारुणलसद्वस्त्रौ श्यामगौराङ्गदम्पती ।
शिखिपिच्छलसन्मौल्यौ मुक्तावलिलसच्छिखौ ।।
वस्त्राभरणवेशाभ्यां रेजे मण्डलमध्यगौ ।
नानाकेलिकलाकाङ्क्षाकाङ्क्षतौ प्रेयसी प्रिया ।।
हासयन्तौ लसद्दन्तपङ्क्तावन्योन्यवीक्षणौ ।
अन्योन्यरसमाध्वीकमादितौ हरिराधिके ।।
आरभ्य तौ महारासौ नृत्यवाद्यप्रहर्षितौ ।
नानाकामकलामूर्त्तिस्फूर्त्तिमदभुततालयोः ।।
मुमुहुर्देवता देव्यः पन्नगाः पन्नगेश्वराः ।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा मनुष्या, पशुपक्षिणः ।।
भूमिरुहा लताकाण्डाः सरिच्छैलेन्द्रवीरुधः ।
चित्रायत्तभवत्सर्वाः स्वदेहात्मानं न सस्मरुः ।।
गोपीयूथावृतः साक्षाद्भगवान् राधिकापतिः ।
क्रीडते राधिकासार्द्धं प्रतिगोपी स्वरूपधृक् ।।
महदानन्दनिस्नाता कल्पोपमशरत्क्षयाम् ।
न विदुः केलिलोलाङ्गाः काहं क्व गिरिविग्रहः ।।
विगलत्कबरिकाः स्रग्भिः श्लथद्भूषणवासस‌ः ।

परमानन्दसंहृष्टाः सह सख्यौत्सुकाश्रयाः ।।
एवं सद्भिः प्रकर्त्तव्यं रासस्थलप्रतिष्ठितम् ।
सर्वदा मनसा धार्यं राधासख्येप्सुभिर्जनैः ।।
य एवं पठ्यते सौम्यात्रिसन्ध्यं नित्यमेव हि ।
अम्बरीष ! जनः सोपि राधिकासख्यमाप्नुयात् ।।
य एवं श्रूयते पुण्यं राधाकेलिकलामृतम् ।
स याति परमं स्थानं यत्र श्रीराधिकाहरी ।।
अनेन मनुना राजन् ! संस्कृतः स्त्रीपुमानपि ।
तस्य भवति तद्रूपं यद्रूपं रासमण्डले ।।
य एवं केलिमधुरं दृश्यते वाऽनुमोदते ।
स पुमान् सर्वसम्पद्भिः कृष्णसांनिध्यमाप्नुयात् ।।
य एवं राधिकाकेलिं श्रुत्वा कलिमलापहाम् ।
निन्दन्ति जारजा ते वै सत्यं सत्यं नृपोत्तम ! ।।
य एवं कुरुते राजन् ! राधाकृष्णमहोत्सवम् ।
स सत्यं राधिकाकृष्णकेलिदर्शी भविष्यति ।।
कृष्णक्रीडान्वितां लीलां यः करोति नृपोत्तम ! ।
स याति परमाख्यानं स्थानं दृष्ट्वाऽनुमोदकः ।। इति ।।

इति श्रीस्वधर्मामृतसिन्धौ चतुर्विशस्तरङ्गः ।। २४ ।।

श्रीराधामाधवं वन्दे श्रीहंसादीन्स्वदेशिकान् ।
गुरुं तत्त्वदृगं वन्दे सर्वेश्वरपरायणम् ।।

-o-○-o-

अथ कार्तिककृत्यम् ।।

तत्र तावत्तद्देशनिर्णयः पाद्मे—

यत्र कुत्रापि देशेऽयं कार्त्तिकः स्नानदानतः ।
अग्निहोत्रसमफलः पूजायां च विशेषतः ।।
कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गङ्गायां चापि तत्समः ।

ततोऽधिकः पुष्करे स्याद्द्वारकायां च भार्गव ! ।।
कृष्णसालोक्यदो मासः पूजास्नानैश्च कार्तिकः ।
अन्या पुर्य्यस्तत्समाना मुनयो मथुरां विना ।।
दामोदरत्वं हि हरेस्तत्रैवासीद्यतः किल ।
मथुरायां ततश्चोर्ज्जो वैकुण्ठः प्रीतिवर्द्धनः ।।
कार्तिको मथुरायां वै परमावधिरिष्यते ।
यथा माघे प्रयागः स्याद्वैशाखे जाह्नवी यथा ।।
कार्तिके मथुरा सेव्या ततोत्कर्षः परो नहि ।
मथुरायां नरैरूर्जे स्नात्वा दामोदरोऽर्चितः ।।
कृष्णरूपा हि ते ज्ञेया नात्र कार्य्या विचारणा ।
दुर्लभः कार्त्तिको विप्र ! मथुरायां नृणामिह ।।
यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः सम्प्रयच्छति ।
भुक्तिं मुक्तिं हरिर्दद्यादर्चितोऽन्यत्र सेवनात् ।।
भक्तिं च न ददात्येष यतो वश्यकरी हरेः ।
सा त्वञ्जसा हरेर्भक्तिर्लभ्यते कार्त्तिके नरैः ।।
मथुरायां सकृदपि श्रीदामोदरपूजनात् ।
मन्त्रद्रव्यविहीनं च विधिहीनं च पूजनम् ।।
मन्यते कार्त्तिके देवो मथुरायां सदर्चनम् ।
यस्य पापस्य युज्येत मरणान्ता हि निष्कृतिः ।।
तच्छुद्ध्यर्थमिदं प्रोक्तं प्रायश्चित्तं सुनिश्चितम् ।
कार्त्तिके मथुरायां वै श्रीदामोदरपूजनम् ।।
कार्त्तिके मथुरायां वै पूजनाद्दर्शनं ध्रुवः ।
शीघ्रं सम्प्राप्तवान् बालो दुर्लभं योगतत्परैः ।।
सुलभा मथुरा भूमौ प्रत्यब्दं कार्त्तिकस्तथा ।
तथापि संसरन्तीह नरा मूढा भवाम्बुधौ ।।

किं यज्ञैः किं तपोभिश्च तीर्थैरन्यैश्च सेवितैः ।
कार्त्तिके मथुरायां चेदर्च्यते राधिकाप्रियः ।।
यानि सर्वाणि तीर्थानि नदा नद्यः सरांसि च ।
कार्त्तिकेऽन्यच्च सन्त्यत्र माथुरे सर्वमण्डले ।।
कार्त्तिके जन्मसदने केशवस्य च ये नराः ।
सकृत्प्रविष्टाः श्रीकृष्णं ते यान्ति परमव्ययम् ।।
परोपहासमुद्दिश्य कार्त्तिके हरिपूजया ।
मथुरायां लभेद्भक्तिं किं पुनः श्रद्धया नरः ।। इति ।

कार्तिककृत्योपक्रमकाल उक्तस्तत्रैव—

आश्विने शुक्लपक्षस्य प्रारम्भो हरिवासरे ।
वैष्णवस्य व्रतस्यास्य कार्त्तिके हरिवल्लभे ।। इति ।

विष्णुरहस्ये—

आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।। इति ।

तद्व्रतनित्यतोक्ता व्यतिरेकमुखेन स्कान्दे—

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्त्तिकोक्तं चरेन्न हि ।
धर्म्मं धर्म्मभृतां श्रेष्ठ ! स मातृपितृघातकः ।।
अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् ।
तिर्य्यग्योनिमवाप्नोति सर्वधर्मबहिष्कृतः ।।
स ब्रह्महा स गोघ्नश्च स्वर्गस्तेयी सदाऽनृती ।
न करोति मुनिश्रेष्ठ ! यो नरः कार्त्तिके व्रतम् ।।
विधवा च विशेषेण व्रतं यदि न कार्त्तिके ।
करोति मुनिशार्दूल ! नरकं याति सा ध्रुवम् ।।
व्रतं तु कार्त्तिके मासे यदा न कुरुते गृही ।
इष्टापूर्त्तं वृथा तस्य यावदाहूत नारकी ।।

सम्प्राप्ते कार्त्तिके मासे द्विजो व्रतपराङ्मुखः ।
भवन्ति विमुखाः सर्वे तस्य देवाः सवासवाः ।।
इष्ट्वा च बहुभिर्यज्ञैः कृत्वा श्राद्धशतानि च ।
स्वर्गं नाप्नोति विप्रेन्द्र ! अकृत्वा कार्त्तिके व्रतम् ।।
यतिश्च विधवा चैव विशेषेण वनाश्रमी ।
कार्त्तिके नरकं याति अकृत्वा वैष्णवं व्रतम् ।
वेदैरधीतैः किं तस्य पुराणपठनैश्च किम् ।।
कृतं यदि न विप्रेन्द्र ! कार्त्तिके वैष्णवं व्रतम् ।
जन्मप्रभृति यत्पुण्यं विधिवत्समुपार्जितम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमकृत्वा कार्त्तिके व्रतम् ।।
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं वृथा भवति नारद ! ।
अकृत्वा कार्त्तिके मासि वैष्णवं व्रतमुत्तमम् ।।
पापभूतास्तु ते ज्ञेया लोके मर्त्या महामुने ! ।
वैष्णवाख्यं व्रतं येन न कृतं कार्त्तिके शुभम् ।।

अन्वयमुखेन तद्व्रतनित्यतोक्ता पाद्मे—

द्वादशेष्वपि मासेषु कार्त्तिकः कृष्णवल्लभः ।
तस्मिन्सम्पूजितो विष्णुरल्पकैरप्युपायनैः ।।
ददाति वैष्णवं लोकमित्येवं निश्चितं मया ।
यथा दामोदरो भक्तवत्सलो विदितो जनैः ।।
तथैव तस्य मासोऽयं स्वल्पमप्युरुकारकः ।
दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः ।।
तत्रापि दुर्लभः कालः कार्त्तिको हरिवल्लभः ।
दीपेनापि हि यत्रासौ प्रीयते हरिरीश्वरः ।।
सुगतिं च ददात्येव परदीपप्रबोधनात् ।

तथा—

कार्त्तिके भूमीशायी यो ब्रह्मचारी हविष्यभुक् ।
पलाशपत्रे भुञ्जानो दामोदरमथार्चयेत् ।।
स सर्वं पातकं हित्वा वैकुण्ठे हरिसन्निधौ ।
मोदते विष्णुसदृशो भजनानन्दनिर्वृतः ।।

तथा—

इत्थं दिनत्रयमपि कार्त्तिके च प्रकुर्वते ।
देवानामपि ते वन्द्याः किं यैराजन्म तत्कृतम् ।।

स्कान्दे च—

एकतः सर्वतीर्थानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः ।
कार्त्रिकस्य तु मासस्य कोट्यंशमपि नार्हति ।।
सुवर्णमेरुतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ।
एकतः कार्त्तिको वत्स ! सर्वदा केशवप्रियः ।।

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके ।
तदक्षयं भवेत्सत्यं सत्योक्तं ! तव नारद ! ।।
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करेऽर्बुदे ।
गत्वा फलं यदाप्नोति व्रतं कृत्वा तु कार्त्तिके । इति ।।

तत्र कर्त्तव्यमुक्तं स्कान्दे—

साधुसेवा गवां ग्रासः कथा विष्णोस्तथार्चनम् ।
जागरं पश्चिमे यामे दुर्लभं कार्त्तिके कलौ ।।
मालती केतकीपत्रं तुलसी द्विविधा मुने ! ।
ददाति कार्त्तिके मासि दीपदानमहर्निशम् ।।
दुर्लभं वैष्णवं शास्त्रं वैष्णवैः सह सत्कथाः ।
जन्मकोटिसहस्रैस्तु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।।
कार्त्तिके चार्चितो विष्णुस्त्यक्त्वान्ते यमयातनाम् ।
संनिहत्य कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ।।

सूर्यवारेण यः स्नाति तदेकाहेन कार्त्तिके ।
तुलसीपत्रलक्षेण कार्त्तिके योर्चयेद्धरिम् ।।
पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ ! मौक्तिकं लभते फलम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने ! ।।
अष्टादशपुराणानां कार्त्तिके फलमाप्नुयात् ।
मालतीमालया येन कार्त्तिके पुष्पमण्डपम् ।।
कृतं विष्णुगृहे रम्यं परमं हि तथा फलम् ।
अगस्त्यकुसुमैर्देवं येर्चयन्ति जनार्दनम् ।।
देवर्षे ! दर्शनात्तेषां नरकाग्निः प्रणश्यति ।
तुलसीदलपुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्दनम् ।।
कार्त्तिके सकलं वत्स ! पापं जन्मायुतं दहेत् ।
दृष्टा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्त्तिता नमिता स्तुता ।।
रोपिता सिञ्चिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ।
नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।।
युगकोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ।
कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवगानं करोति यः ।।
वसते श्वेतदीपे तु पितृभिः सह नारद ! ।
विष्णोर्नैवेद्यदानेन कार्त्तिके सिक्थसंख्यया ।।
युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तम ! ।
प्रदक्षिणां यः कुरुते कार्त्तिके विष्णुसद्मनि ।।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलभागी भवेन्नरः ।
कुरुते दण्डवन्नतिं कार्त्तिके भक्तिभावितः ।।
रेणुसंख्या वसेत्स्वर्गे मन्वन्तरशतं नरः ।
गीतं वाद्यं च नृत्यं च कार्त्तिके पुरतो हरेः ।।
यः करोति नरो भक्त्या लभते चाक्षयं पदम् ।

बहुवर्त्तिसमायुक्तं ज्वलन्तं केशवोपरि ॥
कुर्यादारार्त्तिकं यस्तु कल्पकोटिं दिवं वसेत् ।
मा मूढ ! गच्छ मथुरां मा प्रयागं तथार्बुदम् ॥
दीपदानेन देवस्य सर्वं फलमवाप्स्यसि ।
कार्त्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम् ॥
घृतेन दीपको यस्तु तिलतैलैन वा पुनः ।
ज्वलते मुनिशार्दूल ! ह्यश्वमेधैस्तु तस्य किम् ॥
सरोरुहाणि तुलसीमालतीमुनिपुष्पकम् ।
कार्त्तिके दीपदानं च सर्वदा केशवप्रियम् ॥
यो ददाति गवां कोटिं सवत्सां क्षीरसंयुताम् ।
हरेः शिखरि दीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

दीपपङ्क्तेश्च रचनं सबाह्याभ्यन्तरे हरेः ।
विष्णोर्विमाने कुरुते स नरः शङ्खचक्रधृक् ॥
दिवि देवा निरीक्षन्ते विष्णुदीपप्रदं नरम् ।
कदा भविष्यत्यस्माकं सङ्गमः पूर्वकर्मणाम् ॥ इति ॥

कर्तव्यमकर्तव्यं चोक्तं विष्णुरहस्ये नारद उवाच—

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि व्रतानां व्रतमुत्तमम् ।
विधिं मासोपवासस्य फलं चास्य यथोदितम् ॥
तथाविधा नरैः कार्या व्रतचर्या यथा भवेत् ।
आरभ्यते यथा पूर्वं समाप्यं हि यथाविधि ॥
यावत्कल्पं हि कर्त्तव्यं तावद्ब्रूहि पितामह ! ।

ब्रह्मोवाच—

साधु नारद ! साध्वेतत्त्वया पृष्टं तपोधन ! ॥
देहिनां नितरां श्रेष्ठं तच्छृणुष्व ब्रवीमि ते ।
सुराणां च यथा विष्णु रूपाणां च यथा रविः ॥

मेरुः शिखरिणां यद्वद्वैनतेयस्तु पक्षिणाम् ।
तीर्थानां तु यथा गङ्गा प्रजानां च यथा वणिक् ।।
श्रेष्ठं सर्वव्रतानां च तद्वन्मासोपवासनम् ।
सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।।
सर्वदानोद्भवं वापि लभेन्मासोपवासकृत् ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विधिवद्भूरिदक्षिणैः ।।
न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ।
तेन जप्तं हुतं दत्तं तपस्तप्तं सुधाकृता ।।
यः करोति विनानेन व्रतं मासोपवासनम् ।
प्रविश्य वैष्णवं यज्ञं तत्राभ्यचर्य जनार्दनम् ।।
गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ।
वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्वा सर्वव्रतानि तु ।।
द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपावसेत् ।
अतिकृच्छ्रं च पाराकं कृत्वा चान्द्रायणं ततः ।।
आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्रिंशद्दिनानि तु ।।
अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुसुमैः शुभैः ।
ह्रीवेरमालतीपद्मैः कमलैस्तु सुगन्धिभिः ।।
कुङ्कुमोशीरकर्पूरैर्विलिप्य वरचन्दनैः ।
नैवेद्यं धूपदीपाद्यैरर्चयेत्तु जनार्दनम् ।।
मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्गरुडध्वजम् ।
कुर्यान्नरस्त्रिषवणं बृहद्भक्तिर्जितेन्द्रियः ।।
नाम्नामेव सदालापं विष्णोः कुर्यादहर्निशम् ।
भक्त्या विष्णोः स्तुतिर्वाच्या मृषावादं विवर्जयेत् ।।
सर्वदैव दयायुक्तः शान्तवृत्तिरहिंसकः ।

सुप्तो वाऽऽसनसंस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्त्तयेत् ।।
स्मृत्यालोकसुगन्धादिस्वादुन्नापरिकीर्त्तनम् ।
अन्नस्य वर्जयेत्सर्वं ग्रासानां चाभिकांक्षया ।।
गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं च विलेपनम् ।
कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तं विधिना नरः ।।
नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्च्चयेत् ।
व्रतस्थो न स्पृशेत्किञ्चिद्विकर्मस्थान्न चालयेत् ।।
देवतायतने तिष्ठन् गृहस्थस्तु चरेद्व्रतम् ।

वार्याणि स्कान्दे—

परान्नं परवस्त्रं च परवासं पराङ्गनाम् ।
सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञः कार्त्तिके तु विशेषतः ।।
तैलाभ्यङ्गं तथा शय्यां परान्नं कांस्यभोजनम् ।
कार्त्तिके वर्जयेद्यस्तु परिपूर्णव्रती भवेत् ।।
सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा परान्नं यस्तु वर्जयेत् ।
दिने दिने स कृच्छ्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ।।
प्रवृत्त्यानां तु भक्ष्याणां कार्त्तिके नियमे कृते ।
अवश्यं विष्णुसान्निध्यं दुर्लभा मुक्तिराप्यते ।। इति ।।

तत्र दीपदानमाहात्म्यम् नारदीये—

एकतः सर्वदानानि दीपदानानि चैकतः ।
कार्त्तिकेन समं प्रोक्तं दीपदो ह्यधिकः स्मृतः ।।

पाद्मे—

कार्तिकेऽखण्डदीपं यो ददाति हरिसंनिधौ ।
दिव्यं कान्तिविमानेन रमते स हरेः पुरे ।।

स्कान्दे—

शृणु दीपस्य माहात्म्यं कार्तिके केशवप्रियम् ।

दीपदानेन विप्रेन्द्र ! न पुनर्जायते भुवि ।।
रविग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे ।
तत्फलं कोटिगुणितं दीपदानेन कार्त्तिके ।।
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ।
ज्वलते मुनिशार्दूल ! अश्वमेधेन तस्य किम् ।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं शौचहीनं जनार्द्दन ! ।
सर्वं सम्पूर्णतां याति कार्त्तिके दीपदानतः ।।
तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् ।
दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ।।
तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
यावन्न ज्वलते ज्योतिः कार्त्तिके केशवाग्रतः ।।
श्रूयते चापि पितृभिर्गाथा गीता पुरा द्विज ! ।
भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुतो भुवि ।।
कार्त्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम् ।
मुक्तिं प्राप्स्यामहे नूनं प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।।

तथा—

मेरुमन्दरमात्राणि कृत्वा पापान्यशेषतः ।
दहते नात्र सन्देहो दीपदानात्तु कार्त्तिके ।।
गृहे वा पत्तने वापि दीपं दद्याच्च कार्त्तिके ।
पुरतो वासुदेवस्य महाफलविधायिनः ।
स जातो मानुषे लोके स धन्यः स च कीर्त्तिमान् ।
प्रदत्तः कार्त्तिके मासि दीपो वै मधुहाग्रतः ।।
निमिषार्द्धार्द्धमात्रेण दीपदानेन कार्त्तिके ।
न तत् क्रतुशतैः प्राप्यं फलं तीर्थशतैरपि ।।
स चानुष्ठानहीनोपि सर्वपापरतोपि सन् ।

पूर्यते नात्र सन्देहो दीपं कृत्वा तु कार्त्तिके ।।
तन्नास्ति पातकं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु नारद ! ।
यन्न शोधयते दीपः कार्त्तिके केशवाग्रतः ।।
पुरतो वासुदेवस्य दीपं दत्वा तु कार्त्तिके ।
प्राप्नोति शाश्वतं स्थानं सर्वबाधाविवर्जितम् ।।
यः कुर्य्यात्कार्त्तिके मासि कर्पूरेण तु दीपकम् ।
दीपावल्यां विशेषेण तस्य पुण्यं वदामि ते ।।
कुले तस्य प्रसूता ये ये भविष्यन्ति नारद ! ।
समतीताश्च ये केचित् येषां संख्या न विद्यते ।।
क्रीडित्वा सुचिरं कालं देवलोके यदृच्छया ।
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।।

दीपमालामाहात्म्यं तत्रैव—

दीपपङ्क्तेश्च रचनां सबाह्याभ्यन्तरे हरेः ।
विष्णोर्विमाने कुरुते स नरः शङ्खचक्रधृक् ।।
दीपपङ्क्तेश्च रचनां कुरुते केशवालये ।
तस्मान्वये प्रसूतानां लक्षाणां नरकं नहि ।।
विष्णोर्विमानं दीपाढ्यं सबाह्याभ्यन्तरं मुने ! ।
दीपोद्यतकरे मार्गे तेन प्राप्तं परं पदम् ।।

भविष्ये च—

यः कुर्य्यात्कार्त्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् ।
प्रबोधे चैव द्वादश्यामेकादश्यां विशेषतः ।।
सूर्य्यायुतप्रकाशस्तु तेजसा भासयन् दिशः ।
तेजोराशिविमानस्थो जगच्च द्योतयंस्त्विषा ।।
यावत्प्रदीपसंख्या तु तैलेनापूर्य्य बोधिता ।
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ।।

शिखरदीपमाहात्म्यं स्कान्दे—

यदा यदा भासयते दीपकः कलशोपरि ।
तदा तदा मुनिश्रेष्ठ ! द्रवते पापसञ्चयः ।।
यो ददाति द्विजातिभ्यो महीमुदधिमेखलाम् ।
हरेः शिखरि दीपस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।।
सर्बस्वदानं कुरुते वैष्णवानां महामुने ! ।
केशवोपरि दीपस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।।
यः करोति परं दीपं मूल्येनापि महामुने ! ।
शिखरोपरि मध्ये च कुलानां तारयेच्छतम् ।।
विमानं ज्योतिषा दीपं ये निरीक्षन्ति कार्त्तिके ।
केशवस्य महाभक्त्या कुले तेषां न नारकी ।।
दिवि देवा निरीक्षन्ते विष्णुदीपप्रदं नरम् ।
कदा भविष्यत्यस्माकं संमतः पुण्यकर्मणा ।।
कार्त्तिके कार्त्तिकीं यावत् प्रासादोपरि दीपकम् ।
यो ददाति मुनिश्रेष्ठ ! तस्येन्द्रत्वं न दुर्लभम् ।।

आकाशादिदीपमाहात्म्यं पाद्मे—

उच्चैः प्रदीपमाकाशे यो दद्यात्कार्त्तिके नरः ।
सर्वं कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।
कृष्णकेशवमुद्दिश्य दीपं दद्यात्तु कार्त्तिके ।
आकाशस्थं जलस्थं च शृणु तस्यापि यत्फलम् ।।
धनधान्यसमृद्धिश्च पुत्रवानीश्वरो गृहे ।
लोचने च शुभे तस्य विद्वानपि च जायते ।।
विप्रवेश्मनि यो दद्यात् कार्त्तिके मासि दीपकम् ।
अग्निष्टोमफलं तस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ।।
चतुःपथेषु रथ्यासु ब्राह्मणवासथेषु च ।

वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारे गहनेषु च ।।
दीपदानाद्धि सर्वत्र महाफलमवाप्नुयात् ।

आकाशदीपमन्त्रः तत्रैव—

दामोदराय नभसि तुलस्या लोलया सह ।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे ।। इति ।

परदीपप्रबोधनमाहात्म्यं स्कान्दे—

पितृपक्षेऽन्नदाने च ज्येष्ठाषाढे च वारिणा ।
कार्त्तिके तत्फलं पुंसां परदीपप्रबोधनात् ।।
बोधनात्परदीपस्य वैष्णवानां च सेवनात् ।
कार्त्तिके फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ।।

दीप्यमानं तु ये दीपं बोधयन्ति हरेर्गृहे ।
परेण नृपशार्दूल ! निस्तीर्णा यमयातना ।।
न तद्भवति राजेन्द्र ! स्विष्टैरपि महामखैः ।
कार्त्तिके यत्फलं प्रोक्तं परदीपप्रबोधनात् ।।
एकादश्यां परैर्दत्तं दीपं प्रज्वाल्य मूषिका ।
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य परां गतिमवाप सा ।।

अथ श्रीराधादामोदरपूजाविधिः ।।

साम्प्रदायिभिर्नित्यार्चनं प्रतिमाविषयेऽन्यैर्द्विजैः कार्यम् इत्याशयेनोक्तम् पाद्मे—

ततः प्रियतमा विष्णो राधिका गोपिकासु च ।
कार्तिके पूजनीया च श्रीदामोदरसंनिधौ ।
द्विजं दामोदरं कृत्वा तत्पत्नीं राधिकां तथा ।।
कार्त्तिके पूजनीयौ तो वासोलङ्कारभोजनैः ।।
राधिकाप्रतिमां विप्राः ! पूजयेत् कार्त्तिके तु यः ।
तस्य तुष्यति तत्प्रीत्यै श्रीमान् दामोदरो हरिः ।। इति ।

सङ्कल्पमन्त्रः—

कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्दन ! ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश ! राधया सह माधव ! ।।
ध्यात्वाहं त्वां च देवेश ! जलेस्मिन् स्नातुमुद्यतः ।
तव प्रसादात् पापं मे दामोदर ! विनश्यतु ।।
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ! ।।
स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत् ।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन् व्रती स्नायाद्यथाविधि ।। इति ।

पाद्मे-ततो मौनेन स्तोत्रपाठाद्वा गृहमागत्य स्वसम्प्रदायरीत्या द्वादश-तिलकं कृत्वा श्रीराधिकाकृष्णं युग्मं प्रपूजयेत । श्रीमदौदुम्बराचार्य प्राह—

ततो धौताङ्घ्रिहस्तको न्यासद्वयं विधाय च ।
आदौ निजकरौ सम्यक् सुगन्धाद्यैः प्रलिप्य च ।।
प्रार्थनापूर्वकं शनैराधां देवीं प्रबोधयेत् ।
द्वादशाहं हरेः पूर्वं राधाप्रबोधनं मतम् ।।
लोकशास्त्रप्रकारेण पाद्मीये कार्त्तिके तथा ।
यथा पतिव्रता नारी ब्राह्मे काले प्रबुध्यते ।।
पूर्वं भर्त्तुस्तथा लक्ष्मीः प्राग्घरेर्द्वादशाहकम् ।

प्रार्थना—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राधिके ! त्यज निद्रां प्रियोत्तमे ! ।
रासेश्वरि महारम्ये श्रीदामोदरवल्लभे ! ।।
प्रबुद्धायै श्रियै दद्यात्तत्समं योचितं वसु ।
मुखप्रक्षालनार्थाय सुगन्धसलिलादिकम् ।।
मुखसंमार्जनार्थाय सूक्ष्मं वस्त्रं निवेदयेत् ।

राधानिदेशमासाद्य भावनया तदीरितः ॥
कृष्णमृद्वङ्गमर्द्दनैः शनैः शनैः प्रबोधयेत् ।
राधाकृष्णौ निषेवयेत्तत ऐतिह्यरीतितः ॥
राधादामोदरावेवं सम्पूज्य प्रातरेव हि ।
राधादामोदराष्टकं पठेद्गद्गदया गिरा ॥

तथा स्कान्दे—

कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवगानं करोति यः ।
वसन्ते श्वेतदीपे तु पितृभिः सह नारद ! ॥
तत्र राधास्तवस्त्वादौ ब्रह्माण्डे श्रूयते तथा ।

श्रीराधायै नमः ॥ नारद उवाच—

किं तद्गुह्यतरं ब्रह्मन्यच्चिन्त्यमखिलेश्वरैः ।
तन्मे ब्रूहि सुतत्त्वज्ञ ! योगेश ! मयि वत्सल ! ॥

ब्रह्मोवाच—

शृणु गुह्यतमं तात ! नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
सर्वैरापूजिते देवै राधावृन्दावने वने ॥
राधाविश्लेषतः कृष्णो ह्येकदा प्रेमविह्वलः ।
राधामन्त्रं जपन् ध्यायन् राधां सर्वत्र पश्यति ॥

ॐ अस्य श्रीराधास्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीराधाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

गृहे राधा वने राधा पृष्ठे राधा पुरः स्थिता ।
यत्र यत्र स्थिता राधा राधैवाराध्यते मया ॥
जिह्वा राधा स्तुतौ राधा नेत्रे राधा हृदि स्थिता ।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया ॥
पूजा राधा जपे राधा राधिका चाभिवन्दने ।
श्रुतौ राधा शिरो राधा राधैवाराध्यते मया ॥

गाने राधा गुणे राधा राधिका भोजने गतौ ।
रात्रौ राधा दिवा राधा राधैवाराध्यते मया ।।
माधुर्ये मधुरा राधा महत्त्वे राधिका गुरुः ।
सौन्दर्ये सुन्दरी राधा राधैवाराध्यते मया ।।
राधा पद्मानना पद्मा पद्मोद्भवसमुद्भवा ।
पद्मे विवेचिता राधा राधैवाराध्यते मया ।।
राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम् ।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया ।।
जिह्वाग्रे राधिका नाम नेत्राग्रे राधिकातनुः ।
कृष्णहार्द्दपरा राधा राधैवाराध्यते मया ।
कर्णाग्रे राधिकाकीर्त्तिर्मनोग्रे राधिकामनुः ।
कृष्णप्रेममयी राधा राधैवाराध्यते मया ।।
राधा रासासुधासिन्धू राधासौभाग्यमञ्जरी ।
राधा व्रजाङ्गनामुख्या राधैवाराध्यते मया ।।
कृष्णेन पठितं स्तोत्रं श्रीराधाप्रीतये परम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं राधाकृष्णप्रियो भवेत् ।।
इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे
श्रीकृष्णोक्तः श्रीराधास्तवः ।।

सुदर्शन उवाच—

ॐ नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै
नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै ।
सदानन्दरूपे ! प्रसीद त्वमन्तः-
प्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्द्धम् ।।
स्ववासोपहारं यशोदासुतं वा
स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम् ।

स्वदाम्नोदरे या बबन्धाशु नीव्या
प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम् ॥
दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे तं
महाप्रेमपूरेण राधाभिधाऽभूः ।
स्वयं नामकीर्त्या हरौ प्रेम यच्छत्
प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम् ॥
मुकुन्दस्त्वया प्रेमडोरेण वद्धः
पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः ।
उपक्रीडयन् हार्द्दमेवानुगच्छन्
कृपां वर्त्तते कारयातो मयीष्टिम् ॥
व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं
मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालाम् ।
समामोक्ष्यमाणाऽनुकम्पाकटाक्षैः
श्रियं चिन्तये सच्चिदानन्दरूपाम् ॥
मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चिताङ्गै-
रहं वेध्यमानां तनुस्वेदबिन्दुम् ।
महाहार्द्दवृष्टया कृपापाङ्गदृष्टया
समालोकयन्तीं कदा मां विचक्षे ॥
यदङ्कावलोके महालालसौघं
मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः ।
पदं राधिके ! ते सदा दर्शयान्त-
र्हृदि तं नमन्तं किरद्रोचिषं माम् ॥
सदा राधिका नाम जिह्वाग्रतः स्तात्
सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम् ।
श्रुतौ राधिकाकीर्त्तिरन्तःस्वभावे

गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे ।।
इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य ।
सुतिष्ठन्ति वृंदावने कृष्णधाम्नि
सखीमूर्त्तयो युग्मसेवानुकूलाः ।।
इति श्रीनिम्बार्कोक्तं राधाष्टकम् ।।

सत्यव्रत उवाच—

ॐनमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम्
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं
परामृष्टमत्यन्तमुप्लुत्य गोप्या ।।
रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं
कराम्भोजयुग्मेन सातङ्कनेत्रम् ।
मुहुः श्वासकम्पत्रिरेखाङ्ककण्ठ-
स्थितग्रैवदामोदरं भक्तिबद्धम् ।।
इतीदृक्स्वलीलाभिरानन्दकुन्दे
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेप्सितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ।
वरं देवमोक्षं न मोक्षावधिं वा
न चान्यं वृणेहं वरेशादपीह ।।
इदं ते वपुर्बालगोपालबालं
सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ।
इदं ते मुखाम्भोजमत्यन्तनीलै-
र्वृतं कुन्तलैः स्निग्धवक्रैश्च गोप्योः ।।

मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे
मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः ।
नमो देव दामोदरानन्त विष्णो!
प्रसीद प्रभो! दुःखजालाब्धिमग्नम् ।।
कृपादृष्टिवृष्ट्यातिदीनं बतानु-
गृहाणेश! मामद्य मेऽप्यक्षिदृश्यः ।
कुबेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्व-
त्त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च ।।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ
न मोक्षग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ।
नमस्ते सुदाम्ने स्फुरद्दीप्तधाम्ने
त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने ।।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै
नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ।।

इतिश्रीपाद्मे सत्यव्रतोक्तं श्रीदामोदराष्टकं समाप्तम् ।।

इत्यष्टकत्रयं पठेद्राधादामोदरप्रियम् ।
स्वसम्प्रदायरीत्यैवं कृत्वा चांपायसादिकम् ।।
राधादामोदरा अर्चयेत्कार्त्तिके व्रती ।

तथा पाद्मे—

नैवेद्यं पायसं विष्णोः प्रियखण्डघृतान्वितम् ।
अव्रतघ्नमवशेषं भुञ्जीत कार्त्तिके व्रती ।।
अष्टावेव व्रतघ्नानि स्कान्दे चोक्तानि तानि तु ।
अष्टौ तु चाव्रतघ्नानि हविर्भुक्तानुमोदितम् ।।
क्षीरौषधं गुरोराज्ञा आपो मूलफलानि च ।
सर्वशिखरदीपादि यथासम्भवमाचरेत् ।।

दिनविशेषकृत्यं तु कर्त्तव्यं कार्त्तिके सताम् ।
राधाकुण्डेऽसिताष्टम्यां कृत्वा विशेषसेवनम् ।।
स्नातो नैवेद्यमुख्यं च दत्वोत्सवादि कारयेत् ।

तथा पाद्मे—

गोवर्द्धनगिरौ रम्ये राधाकुण्डं प्रियं हरेः ।
कार्त्तिके बहुलाष्टम्यां तत्र स्नात्वा हरेः प्रियः ।।
नरो भक्तो भवेद्विप्रास्तद्धित्तस्याः प्रतोषणम् ।
यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।।
सर्वगोपीषु सैबैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ।

पुनस्तत्रैव—

वृन्दावनाधिपत्यं च दत्तं तस्याः प्रतुष्यता ।
कृष्णेनान्यत्र देवितुं राधावृन्दावने वने ।।
तत्कुण्डे कार्तिकाष्टम्यां स्नात्वा पूज्यो जनार्द्दनः ।
स वो धन्या! यथा प्रीतस्तथा प्रीतस्ततो भवेत् ।।

तत्र कृष्णद्वादश्यां श्रीकृष्णादिनिजगुरूपर्यन्तान् गुरून् प्रपूजयेत् ।

तथा श्रीमदौदुम्बरसंहितायाम्—

द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य पारम्पर्यान् गुरूनस्वयम् ।
उद्दिश्य कार्त्तिके चेष्टिं वैष्णवीं कारयेत् सुधीः ।।
कृष्णादिनिजपर्यन्तं संख्याकांस्तु विशेषतः ।
निम्बग्रामे महान्तस्तद्धियेज्याः स्वैर्यथाबलम् ।।
सम्पूजितास्सुसूचयेद्गुरूणां चरितं क्रमात् ।

तथा सांखायनः—

आविर्भावतिरोधानं ज्ञात्वा तु तद्दिने दिने ।
गुरूणां कारयेदिष्टिं कार्त्तिके ज्ञस्तु वैष्णवीम् ।।
द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य तावन्तो वैष्णवोत्तमाः ।

पूज्या गुरुधिया सर्वे रीत्या कृष्णाविशेषतः ।।
मुख्यस्थानविभावेन गुरुभक्तिपरायणैः ।।

अथ कृष्णत्रयोदश्यां सन्ध्यायां धर्मराजाय तन्मन्त्रपूर्वकं दीपं दद्यात् । तथा पाद्मे —

कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु त्रयोदश्यां निशामुखे ।
यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ।।

तत्रैव मन्त्रः—

मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालः श्यामलया सह ।
त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः खलु प्रियताम् ।। इति ।

अथ कृष्णचतुर्दशीकृत्यम् स्कान्दे—

कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यां विधूदये ।
अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ।।

भविष्योत्तरे—

कार्त्तिकस्यासिते पक्षे चतुर्द्दश्यां विधूदये ।
स्नातव्यं तिलतैलेन नरैर्नरकभीरुभिः ।। इति ।

तत्रायं विधिः । त्रयोदश्यां तु सन्ध्यायां चक्रमर्दकमपामार्गं तुम्बीं कर्षितक्षेत्रलोष्ठं चानयित्वा स्थापयेत् । चतुर्दश्यामत्युषसि नद्यादावर्द्धस्नानं कृत्वा मन्त्रं पठन् शीर्षोपरिष्टात् भ्रामयित्वा जलं क्षिपेत् ।

तन्मन्त्रः पाद्मे—

सीतालोष्टसमायुक्तः सकण्टकदलान्वितः ।
हर पापमपामार्ग ! भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ।।
गृहीतमौषधीत्रयं मन्त्रेणानेन वैष्णवः ।
अपामार्गमथो तुम्बीं तृतीयं चक्रमर्दकम् ।।
भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ।। इति ।

सा दिनद्वये कालव्याप्तौ परैव—

चन्द्रोदये चतुर्दश्यां वर्त्तते तु दिनद्वये ।
तदाभ्यङ्गं नरः कुर्यात्परे विधूदये ।।

इति जनकोक्तेः ।।

दिनद्वये स्पर्शे तु गालवः—

दिनद्वये चतुर्दश्यां नोदयश्च विधोर्यदि ।
यामेऽभ्यङ्गं चतुर्दश्याः कुर्यादुषसि चाष्टमे ।। इति ।
अनर्केऽभ्युदिते कृष्णपक्षे चैव चतुर्दशी ।।
स्नात्वा सन्तर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ।

इति पाद्मोक्तेर्नित्यत्वात् ।।

तत्र यमतर्पणमपि कर्त्तव्यम् । तर्पणमन्त्रस्तु भविष्योत्तरे—

एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप ! ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ।। इति ।।

तत्र रात्रौ दीपदानं कुर्यात् तच्चोक्तं पाद्मे—

दीपदानं चतुर्दश्यां हरिदुर्गार्थमाचरेत् ।
शस्त्राद्यैर्निहतानां च पितृणामक्षयं भवेत् ।। इति ।।

अथामावास्याकृत्यम् आदित्यपुराणे—

दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुरांश्च तान् ।
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाक्रमात् ।।
दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहेषु च ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च संयोज्य त्र बुभुक्षितान् ।।

स्वलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना ।

पाद्मे—

दिवा तत्र न भोक्तव्यं विना बालातुरान् जनान् ।
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयेच्च यथाक्रमम् ॥

तथा—

प्रदोषसमये विप्राः ! कर्त्तव्या दीपमालिका ।
दीपदानात्ततः पश्चाल्लक्ष्मीं सुप्तां प्रबोधयेत् ॥
त्वं ज्योतिः श्री रविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्णतारकाः ।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिते नमः ॥
मन्त्रेणानेन कमलां दीपहस्ताः स्त्रियो द्विजाः ।
देवीं प्रबोधयेयुश्च ततः कुर्युश्च भोजनम् ॥
प्रदोषसमये लक्ष्मीं बोधयित्वा भुनक्ति यः ।
पुमान्संवत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तं नैव मुञ्चति ॥

भविष्योत्तरे—

एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप ! ।
कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥
दीपान्दत्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि ।
स्वलङ्कृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना ॥ इति ।

सा परविद्धैव कार्या—

भूतविद्धा न कर्त्तव्या दर्शपूर्णा कदाचन ।

इति ब्रह्मवैवर्त्तोक्तेः ।

भूतविद्धा त्वमावास्या न ग्राह्या मुनिपुङ्गवैः ॥

इति स्कान्दोक्तेश्च ॥

तत्संमतं वाक्यं च—

दिनावसाने क्षणमस्त्यमा चेत्

श्राद्धं विधायोल्मुकमेव कुर्यात् ।
क्षये प्रवृद्धौ प्रतिपद्युपेते
दर्शे ततोऽग्रे बलिपूजनं स्यात् ।।
श्राद्धे कृते शारदगामिदर्शे
ततोल्मुकं दूषणकृन्न राज्ये ।
तदा निशीथे सुरशक्तिपूजा
दर्शेपि लोकेश्वरसौख्यदा स्यात् ।।

इति ज्योतिर्विदाभरणनिबन्धे ।

इति निर्णीतं सामान्यकृत्यं च ।।

अथ निम्बार्कानुयायिनां विशेषकृत्यमाहुः श्रीमदाचार्यवर्याः—

द्वादशाहं हरेः पूर्वं राधाप्रबोधनं मतम् ।
लोकशास्त्रप्रकारेण प्रकुर्याद्वैष्णवो नरः ।।
दिवा तत्र न भोक्तव्यं विना बालातुरान् जनान् ।
प्रदोषसमये राधां पूजयेच्च यथाक्रमम् ।। इति ।

तत्र यथाशक्त्युपचारेण जागरणोत्सवं कृत्वा श्रीराधाकृष्णयोरग्रे दीपदानं च कुर्यात्—

अग्निर्ज्योती रविर्ज्योतिश्चन्द्रो ज्योतिस्थैव च ।
उत्तमः सर्वज्योतोनां दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ।। इति ।

तत्र प्रतिपदि प्रातःकाले गोवर्द्धनं गोविन्दं च पूजयेद्भूषयेच्च ।

तच्चोक्तं पाद्मे—

गोवर्द्धनहरेः पूजा गोमहिष्यादिपूजनम् ।
भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः ।।

पूजामन्त्रः पाद्मे—

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ! ।

कृष्ण ! बाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव ।। इति ।।

गोपूजामन्त्रः स्कान्दे—

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।

घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ।।

कृत्वा पूजां गवां ताभ्यो ग्रासं दत्वा नमेच्च ताः।

अन्नकूटं धनाधिक्ये कृत्वा गोवर्द्धनात्मजे ।।

श्रीकृष्णाय च दातव्यं कृष्णसन्तोषकारकम् ।।

इति श्रीमदाचार्यवाक्यम् ।।

तथा पाद्मे—

गोवर्द्धनमखारम्भः कृष्णसन्तोषकारकः।

पूरणीयः स्वभूयसे कृष्णप्रीणनतत्परैः ।। इति ।।

प्रकारान्तरमपि पाद्मे—

मथुरायां तथान्यत्र कृत्वा गोवर्द्धनं गिरिम्।

गोमयेन ततः स्थूलं ततः पूज्यो गिरिर्यथा ।। इति ।।

गोमयेन स्थूलपर्वताकारं कृत्वा व्यञ्जनादिभिः पूजयेत्। तच्चोक्तं श्रीमदाचार्यवर्यैः—

अन्यत्र मथुरायां तु विधाय गोमयेन हि।

गोवर्द्धनः सुपूज्यः स्यान्नानाव्यञ्जनराजिभिः।। इति ।।

पूजनकालोऽभिहितः स्कन्दपुराणे—

प्रातर्गोवर्द्धनं पूज्यं द्यूतं चापि समाचरेत्।

भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चाबाहदोहनैः ।। इति ।।

कियन्मितः प्रातःकाल इत्याकांक्षायां तदुच्यते—

भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः।

प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु ।।

इति विष्णुधर्मोत्तरे।

अथ तद्दिनं निर्णीयते। विशुद्धादिकदिनद्वये कर्मकालव्याप्तौ तु परैव—

तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन !।
कार्त्तिकाश्वयुजे मासि चैत्रे मासि च भारत !।।

इति भविष्योक्तेः।

विद्धाधिके समे न्यूने च द्वितीयायां तु दिनक्षयनिमितदोषोदयः तत्र फलविशेषश्रवणात्। शिवरहस्ये—

प्रतिपद्दिवसे कुर्यात्पूजां गोवर्द्धनस्य च।
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या या च दृश्या दिनद्वये।।
नन्दायामे मोदमाना भद्रा नष्टा प्रजायते।
पूतं भवति तद्वर्षं राज्यदं सुखवर्द्धनम्।। इति।।

विद्धासमन्यूनायां तु सैव—

प्रतिपच्छून्यमल्पापि यदि न स्यात्परेऽहनि।
पूर्वविद्धा तदा कार्या सिते पक्षे च कार्त्तिके।।

इति वसिष्ठोक्तेः।।

शुद्धाधिक्यदिनद्वये कालव्याप्तौ तु पूर्वैव—

रवेरुदयमारभ्य प्रतिपत् षष्ठिनाडिका।
प्रतिपत् सैव कर्त्तव्या न परा धर्म हानिदा।।

इति वसिष्ठसंहितोक्तेः।

किञ्च—

संलग्नमेव कर्त्तव्यं दीपोत्सवदिनत्रयम्।।

इति संलग्नदर्शकवाक्यसम्भवाभिप्रायेण कदाचित् सर्वेषां परैव गो-पूजानुष्ठानं सम्प्रतिपन्नं तदा सर्वैरपि गोवर्द्धनोत्सवस्तु परेद्युरेव कर्त्तव्यः पूर्वोक्तस्वप्रकरणीयनिर्णयविशेषात्—

कार्त्तिके प्रतिच्छुक्ला मुहूर्त्तं वा कला यदि।

तत्रोत्सवादिकृत्येषु कर्त्तव्या शुभकांक्षिभिः ।।

इति व्याघ्रोक्तेः।

अस्माकं सिद्धान्तस्तु स्कान्देऽभिहितः स्फुटतरम्—

प्रतिपत्परविद्धा या त्याज्या सा पूजने गवाम् ।
नीराजनोत्सवाभ्यङ्गे दर्शविद्धां परित्यजेत् ।। इति ।।

मुकुन्ददेवैस्त्विदमेवोक्तम्—

गोऽर्चा परस्यां प्रतिपत्तिथौ स्या-
द्नोक्रीडनं तु प्रथमान्वितायाम् ।। इति ।।

गोक्रीडनदिने चन्द्रदर्शने सति दोष उक्तः पुराणसमुच्चये—

गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ।
सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभी पूजकांस्तथा ।।

अतः परविद्धायां प्रतिपदि यदा चन्द्रदर्शनसम्भावना स्यात्तदा पूर्वविद्धायां गोक्रीडनं कार्यम् । अत एवोक्तं देवलेन—

प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् ।
परविद्धां तु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ।। इति ।।

गोक्रीडनप्रकारः स्कान्दे—

गोधापयेद्वासयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः ।
वृषान्कर्षापयेद्गोपैरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात् ।।

पाद्मे—

महिष्यादेस्तथा भूषा क्रीडनं धावनं तथा ।। इति ।।

अथ बलिपूजा प्रसङ्गादुच्यते स्कान्दे—

बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ।
सर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावल्या सहासितम् ।।
कुष्माण्डमयजम्भोरुमुरुदानवसंवृतम् ।
सम्पूर्णहृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम् ।।

द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वाऽर्चयेन्नृप ! ।।

पाद्मे—

यदर्पितं देहमनेन विष्णवे
भीतेन मिथ्याबवचसो महात्मना ।
दैत्येन तेनाप्यकठोरचेष्टया
बद्धो बलिर्वामनमूर्त्तिना वत ।।

वद्ध्वा नीतोऽथ पातालं विमलाखिन्नमानसः ।
नाभ्यसूयद्धरिं दैत्यस्त्यक्त्वाऽहंममतां सुधीः ।।
तदोवाच हरिः प्रीतस्तस्मै दैत्याय भागकृत् ।

अश्रोत्रियं दत्तममन्त्रकं हुतं
जप्तं तथा व्यग्रधिया जनेन यत् ।
तथोर्जशुक्लप्रतिपत्तिथौ तु
त्वामर्चये तत् सुकृतं तवास्तु ।।

इति तस्मैवरो दत्तो हरिणा दितिजाय च ।
ततोऽवश्यं प्रपूज्योसौ बलिराजदिने मुदा ।।
कृष्णसांनिध्यतश्चापि पूजनीयः प्रयत्नतः ।।

पूजामन्त्रः स्कान्दे—

बलिराज ! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ! ।
भविष्येन्द्र सुराराते ! पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।। इति ।।

।। अथ प्रसङ्गाद्यमद्वितीयाकृत्यमुच्यते ।।

व्रतपञ्चके स्मृतौ—

स्नातव्यं यमुनायां तु यमलोकनिवृत्तये ।
प्रातर्यमद्वितीयायां शुक्लपक्षस्य कार्त्तिके ।।
स्वलोकालोकचरेण तोषितायां यमेन वा ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ।।

तथा स्कान्दे—

ऊर्ज्जे शुक्लद्वितायायां मध्याह्ने यममर्चयेत् ।
स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति ।।

किञ्च—

अस्यां निजगृहे विप्र ! न भोक्तव्यं ततो बुधैः ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ।
सर्वा भगिन्यो सम्पूज्या अभावे प्रतिपन्नगाः ।।

किञ्च—

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः
सम्भोजितः स्वनिलये स्वसृसौहृदेन ।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति
प्राप्नोति वित्तसुभगं धनमुत्तमं सः ।।

तत्र शुक्लाष्टमी गोपाष्टमी तच्चोक्तं पद्मपुराणे—

शुक्लाष्टमी कार्त्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः ।
तद्दिने वासुदेवोऽभूद्गोपः पूर्वं तु वत्सपः ।।
अत्र कुर्याद्गवां पूजां गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम् ।
गवानुगमनं कार्यं सर्वान्कामानभीप्सता ।। इति ।।

सा परेद्यु रेव कार्या "वसुरन्ध्रयो" रिति युग्मवाक्यात्,

पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ।।

इति पूर्वोक्तेश्च ।

तत्रास्माकं कृत्यं श्रीमदाचार्यवर्या आहु :—

शुक्लाष्टम्यां तु कार्त्तिक्यां समाहूयोत्तमान्सतः ।
कृष्णवच्छ्यामसुन्दरं वेषयित्वा विधानतः ।।

द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वाऽर्चयेन्नृप ! ।।

पाद्मे—

यदर्पितं देहमनेन विष्णवे
भीतेन मिथ्याभवचसो महात्मना ।
दैत्येन तेनाप्यकठोरचेष्टया
बद्धो बलिर्वामनमूर्त्तिना वत ।।

बद्ध्वा नीतोऽथ पातालं विमलाखिन्नमानसः ।
नाभ्यसूयद्धरिं दैत्यस्त्यक्त्वाऽहंममतां सुधीः ।।
तदोवाच हरिः प्रीतस्तस्मै दैत्याय भागकृत् ।

अश्रोत्रियं दत्तममन्त्रकं हुतं
जप्तं तथा व्यग्रधिया जनेन यत् ।
तथोर्जशुक्लप्रतिपत्तिथौ तु
त्वामर्चये तत् सुकृतं तवास्तु ।।

इति तस्मैवरो दत्तो हरिणा दितिजाय च ।
ततोऽवश्यं प्रपूज्योसौ बलिराजदिने मुदा ।।
कृष्णसांनिध्यतश्चापि पूजनीयः प्रयत्नतः ।।

पूजामन्त्रः स्कान्दे—

बलिराज ! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ! ।
भविष्येन्द्र सुराराते ! पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।। इति ।।

।। अथ प्रसङ्गाद्यमद्वितीयाकृत्यमुच्यते ।।

व्रतपञ्चके स्मृतौ—

स्नातव्यं यमुनायां तु यमलोकनिवृत्तये ।
प्रातर्यमद्वितीयायां शुक्लपक्षस्य कार्त्तिके ।।
स्वलोकालोकचरेण तोषितायां यमेन वा ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ।।

तथा स्कान्दे—

ऊर्ज्जे शुक्लद्वितायायां मध्याह्ने यममर्चयेत् ।
स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति ।।

किञ्च--

अस्यां निजगृहे विप्र ! न भोक्तव्यं ततो बुधैः ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ।
सर्वा भगिन्यो सम्पूज्या अभावे प्रतिपन्नगाः ।।

किञ्च--

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः
सम्भोजितः स्वनिलये स्वसृसौहृदेन ।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति
प्राप्नोति वित्तसुभर्ग धनमुत्तमं सः ।।

तत्र शुक्लाष्टमी गोपाष्टमी तच्चोक्तं पद्मपुराणे--

शुक्लाष्टमी कार्त्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः ।
तद्दिने वासुदेवोऽभूद्गोपः पूर्वं तु वत्सपः ।।
अत्र कुर्यादगवां पूजां गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम् ।
गवानुगमनं कार्यं सर्वान्कामानभीप्सता ।। इति ।।

सा परेद्यु रेव कार्या "वसुरन्ध्रयो" रिति युग्मवाक्यात्,

पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ।।

इति पूर्वोक्तेश्च ।

तत्रास्माकं कृत्यं श्रीमदाचार्यवर्या आहु :--

शुक्लाष्टम्यां तु कार्त्तिक्यां समाहूयोत्तमान्सतः ।
कृष्णवच्छ्यामसुन्दरं वेषयित्वा विधानतः ।।

यशोदां नन्दगोपं च तथा गोपालबालकान् ।
कल्पयित्वा यथायोग्यं सगोगोपालकं हरिम् ।।
नन्दाज्ञया यशोदाया दत्तं चतुर्विधानकम् ।
बलदेवादिसहितं गोचारणे वनं नयेत् ।।
ततः सर्वदिनं क्रीडां सन्ध्याकाले विधाय वै ।
कृष्ण मनुगृहानेत्य स्नानपानादिकं ततः ।।
कारयित्वार्भकं कृष्णं शाययित्वा विधानतः ।
पूजयित्वा प्रसादाद्यैर्वैष्णवांश्च प्रसादयेत् ।। इति ।।

तत्र शुक्लनवम्यां तुलस्या विवाहोत्सवं कुर्यात् तच्चोक्तं पाद्मे—

पाद्मे—

कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः ।
हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ।।
पूजये द्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् ।
एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ।। इति ।।

श्रीवसिष्ठ उवाच--

विवाहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रीतुलस्या यथाविधि ।
यथोक्तं पञ्चरात्रे वै ब्रह्मणा भाषितं पुरा ।।
आदावेव वने स्थाप्य तुलसी स्वगृहेऽपि वा ।।
वर्षत्रयेण पूर्वेण ततो यतनमारभेत् ।।
सौम्यायने प्रकर्त्तव्यं गुरुशुक्रोदये तथा ।
अथवा कार्त्तिके मासि भीष्मपञ्चदिनेषु च ।।
वैवाहिकेषु ऋक्षेषु पूर्णिमायां विशेषतः ।
मण्डपं कारयेत्तत्र कुण्डवेदीं तथा पुनः ।।
शान्तिकं च प्रकर्त्तव्यं मातृणां स्थापनं तथा ।
मातृश्राद्धादिकं सर्वं विवाहवत्समाचरेत् ।।

ब्राह्मणांश्च शुचिस्नातान् वेदवेदाङ्गपारगान् ।
ब्रह्माणं देशकञ्चैव त्वाचार्यञ्च तर्थात्विजः ।।
वैष्णवेन विधानेन वर्द्धनीकलशं यजेत् ।
मण्डपं कारयेत्तत्र लक्ष्मीनारायणं शुभम् ।।
गृहयज्ञं पुरः कृत्वा मातृणां यजनं तथा ।
कृत्वा नान्दीमुखं श्राद्धं सौवर्णं स्थापयेद्धरिम् ।।
कृत्वा रौप्यां च तुलसीं लग्ने त्वस्तमिते रवौ ।
वासःशतेन मन्त्रेण वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ।।
यथाबध्नेति मन्त्रेण कङ्कणः पाणिपल्लवे ।
कोदादिति च मन्त्रेण करग्राहो विधीयते ।।
ततः कुण्डे समागत्य आचार्यः सह ऋत्विजैः ।
आचार्य्यो वेदिकाकुण्डे जुहुयाच्च नवाहुतीः ।।
विवाहकर्मवत्सर्वं वैष्णवैर्देशिकोत्तमैः ।
कर्त्तव्यश्च ततो होमो विशेषाद्विधिपूर्वकम् ।।
दद्यात्पूर्णाहुतिं पश्चादविशेषविधिं ततः ।
ब्रह्मणे वृषभं दद्यादाचार्य्यं परिधाप्य च ।।
गां पटं च तथा शय्यामाचार्य्याय प्रदापयेत् ।
ऋत्विग्भ्यो दापयेद्वस्त्राण्येषां दद्याच्च दक्षिणाम् ।।
एवं प्रतिष्ठितां देवीं विष्णुना च समर्चयेत् ।
आजन्मोपार्जितं पापं दर्शनेन प्रणश्यति ।।
रोपयेत्तुलसीं यस्तु सेवयेच्च प्रयत्नतः ।
प्रतिष्ठाप्य यथोक्तेन विष्णुना सह मानवः ।।
स मोक्षं लभते जन्तुर्विष्णुलोकं तथाऽक्षयम् ।
प्राप्नोति विपुलान् भोगान् विष्णुना सह मोदते ।।

तत्र शुक्लैकादशी सा प्रबोधनी । तन्माहात्म्यं स्कान्दे—

प्रबोधन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्द्धनम् ।
मुक्तिदं कृतबुद्धीनां शृणु त्वं मुनिसत्तम ! ।।
तावद्गर्जति विप्रेन्द्र ! गङ्गा भागीरथी क्षितौ ।
यावन्नायाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधनी ।।
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।
यावत्प्रबोधनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्त्तिके ।।
वाजपेयसहस्राणि अश्वमेधशतानि च ।
एकेनैवोपवासेन प्रबोधन्या लभेन्नरः ।।
दुर्लभं चैव दुष्प्रापं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
तदपि प्रार्थितं विप्र ! ददाति हरिबोधिनी ! ।।
ऐश्वर्यं सन्ततिं प्रज्ञां राज्यं च सुखसम्पदः ।
ददात्युपोषिता विप्र ! हेलया हरिबोधनी ।।
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्यत्यूर्जितान्यपि ।
एकोनैवोपवासेन वहते हरिबोधनी ।।
पृथिव्यां यानि दानानि दत्वा यत्फलमाप्यते ।
एकेनैवोपवासेन ददाति हरिबोधनी ।।

तथा—

जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम् ।
कार्त्तिके मुनिशार्दूल ! कृता येन प्रबोधनी ।।
यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये सम्भवन्ति च ।
तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधनीम् ।।
सर्वं कृत्यं परित्यज्य तुष्टयर्थं चक्रपाणिनः ।
उपोष्यैकादशीं सम्यक् कार्त्तिके हरिबोधिनीम् ।।
किं तस्य बहुभिः कृत्यैः परलोकप्रदैर्मुने ! ।
सकृच्चोपोषिता येन कार्त्तिके हरिबोधिनी ।।

स जातो स हि योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः ।
स्वर्गमोक्षौ च तस्यास्तामुपास्ते हरिबोधिनीम् ।।
विष्णोः प्रियतमा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी ।
इमां सकृदुपोष्यैव मुक्तिभागी भवेन्नरः ।।
प्रबोधनीमुपोष्यैव न गर्भे विशते नरः ।
सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद ! ।।
स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्द्दनम् ।
नरैर्यत् क्रियते विप्र ! प्रबोधन्यां तदक्षयम् ।।
महाव्रतमिदं पुत्र ! महापापौघनाशनम् ।
प्रबोधवासरं विष्णोर्विधिवत् समुपोषयेत् ।।
व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्द्दनम् ।
विराजयन् दिशो दीप्त्या प्रयाति भुवनं हरेः ।।

तच्चोक्तं वाराहे—

कार्त्तिके मलपक्षे तु साक्षादेकादशी स्मृता ।
भक्तिप्रदा हरेः सा च नाम्ना ख्याता प्रबोधनी ।।
या सा विष्णोः परा मूर्त्तिरव्यक्तानेकरूपिणी ।
सा क्षिप्ता मानुषे लोके द्वादशी मुनिपुङ्गव ! ।। इति ।

पुनस्तत्रैव—

उपवासासमर्थानां सदैव पृथुलोचने ! ।
एका सा द्वादशी पुण्या समुपोष्या प्रबोधिनी ।।
तस्यामाराध्य विश्वेशं जगतामीश्वरेश्वरम् ।
प्राप्नोति सकलं तद्धि द्वादशद्वादशीव्रतम् ।।

पाद्मे—

तावद्गर्जन्ति तीर्थानि वाजिमेधादयो मखाः ।
मथुरायां प्रिया विष्णोर्यावन्नायाति बोधनी ।।

तस्यामेव प्रबोधोत्सवः कार्यः, तद्ब्राह्मेऽभिहितम्—

एकादश्यां च शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम् ।
प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ऋग्यजुःसाममङ्गलैः ।
वीणापणवशब्दैश्च पुराणश्रवणेन च ।।
वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः ।। इति ।

अत्ररात्राविति एकादश्याः प्रान्तभागं रात्रिविषयं रात्र्यन्तभागे दिवाकर्मविहितत्वात् । अन्यथा—

निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् ।

इति मत्स्यपुराणोक्त्या दिवोत्थानविरोधापत्तेः,

विष्णुर्दिवा न स्वपिति न च रात्रौ प्रबुध्यते ।
द्वादश्यामृक्षसंयोगे पादयोगे न कारणम् ।।

इति विष्णुधर्मोक्तिविरोधापत्तेश्च ।

किञ्च—

आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ।
आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्त्तनोत्सवाः ।।

इति भविष्योक्तेस्तत्र नक्षत्रयोगस्य नित्यत्वात् । यदा द्वादश्याः प्रान्तभागे तत्तन्नक्षत्रयोगो न स्यात्तदा किं कर्त्तव्यमित्यपेक्षायां तदुच्यते—

अप्राप्ते द्वादशीमृक्षे उत्थानं शयनं हरेः ।
पादयोगेन कर्त्तव्यं नाहोरात्रं विचिन्तयेत् ।।

इति जीमूतवाहनधृतवचनात्,

पादयोगादन्यतिथौ द्वादश्यामृक्षसङ्गमात् ।।

इति वचनाच्च । द्वादश्यां नक्षत्रभागयोगस्य रात्रावभावेपि तत्रैव कार्यमित्यर्थः । इदं तु वाराहे स्फुटतरमुक्तम्—

द्वादश्यां सन्धिसमये नक्षत्राणामसम्भवे ।

आभाकासितपक्षेषु शयनावर्त्तकादिकम् ।। इति ।।

सन्धिसमयश्च सायंसन्ध्यैव । प्रबोधोपि तत्रैव कार्यः—

रेवत्यन्तो यदा रात्रौ द्वादश्यां च समागतः ।
तदा विबुध्यते विष्णुर्दिनान्तं प्राप्य रेवती ।।

इति जीमूतवाहनधृतवचनात् ।

अथ श्रीकृष्णप्रबोधनविधिः ।

तत्र स्नानादिकं कृत्वा महास्नानेन केशवम् ।
महानैवेद्यतो रात्रौ सन्तोष्योत्थापयेद्धरिम् ।।

तथा ब्राह्मे—

एकादश्यां तु शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम् ।
प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ऋग्यजुःसाममङ्गलैः ।
वीणापणवशब्दैश्च पुराणश्रवणेन च ।।
वासुदेवकथाभिश्च स्तोत्रैरम्यैश्च वैष्णवैः ।
सुभाषितैरिन्द्रजालैर्भूमिशोभाभिरेव च ।।
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्दीपवृक्षैः सुशोभनैः ।
होमैर्भक्ष्यैरपूपैश्च फलैः शाकैश्च पायसैः ।।
ईक्षोर्विकारैर्मधुना द्राक्षाद्रोक्षैः सदाडिमैः ।
कुठेरकस्य मञ्जर्या मालत्या लवणेन च ।।
हृद्याभ्यां श्वेतरक्ताभ्यां चन्दनाभ्यां च सर्वदा ।
कुङ्कुमालक्तकाभ्यां च रक्तसूत्रैः सकङ्कणैः ।।
तथा नानाविधैः पुष्पैर्द्रव्यैर्वीरकृपाहृतैः ।।

तत्र मन्त्रः श्रुतौ—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द ! त्यज निद्रां जगत्पते ! ।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम् ।।

कुमाराः—

ब्रह्मेन्द्ररुद्राक्षिकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दितवन्दनीयः ।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास ! मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव ! ॥

इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थेह निर्मिता ।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।
उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ! ॥
गता मेघा वियच्चैव निर्मलं विमला दिशः ।
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ! ॥
उत्थितं तु भगवन्तं क्षीराद्यैरभिषेचयेत् ।
अभिषिच्य महाविष्णुं वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥
पुष्पादिभिर्विचित्रान्नैस्ताम्बूलैः पूजयेद्धरिम् ।
एकादश्यां हि कृष्णस्य रथोत्सवो हि वैष्णवैः ॥
कर्त्तव्यो हृष्यता हरेर्यमपीडानिवृत्तये ।

तथा भविष्ये—

यं यं दामोदरः पश्येदुत्थितो धरणीधरः ।
तं तं प्रदेशं राजेन्द्र ! सर्वं स्वर्गाय कल्पयेत् ॥

किञ्च—

यावत्पदानि कृष्णस्य रथस्य कर्षणे नरः ।
करोति क्रतुभिस्तानि तुल्यानि नरनायक ! ॥
रथस्थं ये निरीक्षन्ते कौतुकेनापि केशवम् ।
देवतानां गणाः सर्वे भवन्ति श्वपचादयः ॥
स्त्रियोऽपि मुक्तिमायान्ति रथयात्रापरायणाः ।
पितृमातृभर्तृकुलं नयन्ति हरिमन्दिरम् ॥
कुर्वन्ति नर्त्तकीरूपं रथाग्रे कौतुकान्वितम् ।

अप्सरोभिः सह क्रीडां कुर्वन्तीन्द्राश्चतुर्द्दश ।।
ये रथाग्रे प्रकुर्वन्ति गीतवाद्यादि मानवाः ।
देवलोकात्परिभ्रष्टा जायन्ते मण्डलेश्वराः ।।
मौलेन स्यन्दनस्याग्रे गायमानाश्च गायकाः ।
वादकैः सह राजेन्द्र! प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।।
रथोत्सवे मुकुन्दस्य येषां हर्षोपि जायते ।
तेषां न नारकी पीडा यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ।।
रथोत्सवस्य माहात्म्यं कलौ वितनुते हि यः ।
पुण्यबुद्धचा विशेषेण लोभे नाप्यथवा नरः ।।
सप्तद्वीपसमुद्रान्ता रत्नधान्यसमन्विता ।
सशैलवनपुष्याढचा तेन दत्ता मही भवेत् ।।
माहात्म्यं विधिना साकं आहुस्तु सनकादयः ।
बोधनी जगदाधारा कार्त्तिके शुक्लपक्षतः ।।
रथस्थो यत्र भगवांस्तुष्टो यच्छति वाञ्छितम् ।
भजन्ति ये रथारूढं देवंसर्वेश्वरं हरिम् ।।
पदयात्रा कृता नृणां कामानिष्टान्प्रयच्छति ।
कृष्णस्य रथशोभां ये प्रकुर्वन्ति स्वशक्तितः ।।
तेषां मनोरथावाप्ति यच्छते पुरुषोत्तमः ।
श्रीकृष्णस्य रथशोभां यथाशक्ति करोति यः ।।
वाञ्छितं तस्य यच्छन्ति नित्यं सूर्यादयो ग्रहाः ।
कृष्णस्य रथशोभां यः पताकादिसमन्विताम् ।।
करोति नरनारीणां भोक्ता मन्वन्तराणि षट् ।
कृष्णस्य रथशोभां ये प्रकुर्वन्ति सुहर्षिताः ।
पदे पदे गयापुत्र पुण्यं तेषां प्रयागजम् ।

अन्यत्र च—

रथयात्रां स्थिते कृष्णे जयेति प्रवदन्ति ये ।
जयेति च पुनर्ये वै शृणु पुण्यं वदाम्यहम् ।।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
वाराणस्यादितीर्थेषु देवानां चैव दर्शने ।।
यत्फलं कविभिः प्रोक्तं कात्स्न्र्येन च नरेश्वर ! ।
जयशब्दे कृते विष्णो रथस्य तत्फलं स्मृतम् ।।
रथस्थितो नरैर्यस्तु पूजितो धरणीधरः ।
यथालाभोपपन्नैश्च पुनर्भक्त्या समर्चितः ।।
ददाति वाञ्छितान्कामानन्ते च परमं पदम् ।
मङ्गलं ये प्रकुर्वन्ति धूपं तथा स्तवम् ।।
नैवेद्यं वस्त्रपूजां च भक्त्या नीराजनं हरेः ।
रथारूढस्य कृष्णस्य संप्राप्ते हरिवासरे ।।
फलं न तन्मया ज्ञातं जानाति यदि केशवः ।
येषां गृहायतो याति गृहाद्यस्य महीधरः ।।
पितरस्तस्य विमुखा वर्षाणां दश पञ्च च ।
यः पुनः कुरुते पूजां गृहायाने तु माधवे ।।
वसते श्वेतद्वीपे तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
गोघ्नो ब्रह्मस्वहारी च भ्रूणहा ब्रह्मनिन्दकः ।।
महापातकयुक्तोपि ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
मद्यपः सर्वपापकृत्कलिकालेन मोहितः ।।
रथाग्रतः पदैकेन मुच्यते सर्वपातकैः ।
प्रबोधवासरे प्राप्ते कर्त्तव्यं पाण्डुनन्दन ! ।।
रथारोहणमीशस्य वाञ्छितार्थसमाप्तये ।
देवालयेषु सर्वेषु पुरमध्ये समन्ततः ।।
भ्रामयेत्तूर्यघोषेण ब्रह्मघोषेण वै हरिम् ।

रथागमे मुकुन्दस्य पुरशोभां तु कारयेत् ।।
सर्वतो रमणीयं सपताकैरुपशोभितम् ।
तोरणैर्बहुभिर्युक्तं रम्भास्तम्भैः सुशोभितम् ।।
विचित्रवसुशोभा वै कर्त्तव्या भावितैर्नरैः ।
स्थाने स्थाने महीपाल ! कर्त्तव्यं पुष्पसंयुतम् ।।
नृत्यमानैः सुवैष्णवैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
भ्रामयेत्स्यन्दनं विष्णोः पुरमध्ये नराधिप ! ।।
यावत्पदानि कृष्णस्य रथस्याकर्षणे नरः ।
करोति क्रतुभिस्तानि तुल्यानि नरनायक ! ।।
रथेन सह गच्छन्ति पुरतः पृष्ठतोऽग्रतः ।
विष्णुलोकोपमाः सर्वे भवन्ति श्वपचादयः ।।
रथस्थं ये निरीक्षन्ते कौतुकेन तु केशवम् ।
देवतानां गणाः सर्वे भवन्ति श्वपचादयः ।।
रथस्थं ये न पश्यन्ति भ्रममाणं जनार्दनम् ।
विप्राध्ययनसम्पन्ना भणन्ति श्वपचाधमाः ।।
स्त्रियोपि मुक्तिमायान्ति रथयात्रापरायणाः ।
भर्तृमातृपितृकुलं नयन्ति हरिमन्दिरम् ।।
कुर्वन्ति नर्त्तकीरूपं रथाग्रे कौतुकान्वितम् ।
क्रीडन्ते तेऽप्सरोगणैः यावन्दिन्द्राश्चतुर्दश ।।
रथाग्रे यै प्रकुर्वन्ति गीतवाद्यादि मानवाः ।
देवलोकात्परिभ्रष्टा जायन्ते मण्डलेश्वराः ।।
मौलेन स्यन्दनस्याग्रे गायमानोऽपि गायकः ।
वादकैः सह राजेन्द्र ! प्रयाति हरिमन्दिरम् ।।
नानुव्रजति यो मोहाव्रजन्तं जगदीश्वरम् ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्मापि स भवेद्ब्रह्मराक्षसः ।।

रथोत्सवस्य माहात्म्यं कलौ वितनुते हि यः ।
पुण्यबुध्या विशेषेण लोभेनाप्यथवा नरः ।।
सप्तद्वीपसमुद्रान्ता रत्नधान्यसमन्विता ।
सशैलवनपुष्पाढ्या तेन दत्ता मही भवेत् ।।
श्रुत्वैवं रथमाहात्म्यं श्रद्धया वैष्णवोत्तमैः ।
प्रिया विष्णोः प्रकर्त्तव्या रथयात्राऽनुवत्सरम् ।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वोपचारपूजितम् ।
महानीराजनं कृत्वा गीतवाद्यजपस्वनैः ।।
रथमारोहयेद्विष्णुं जनानानन्दयन्मुदा ।
रथारूढस्य कृष्णस्य कर्त्तव्यं पूजनं महत् ।।
रथारूढे महाविष्णौ ये कुर्वन्ति जयस्वनम् ।
पूजां चाखिलपापेभ्यो मुक्त्वा यान्ति हरेः पदम् ।।
अथ श्रीकृष्णवर्णनमाशीर्वादः परस्परम् ।

विष्णुधर्मे—

वक्त्रं नीलोत्पलरुचि लसत्कुण्डलाभ्यां सुमृष्टम्
चन्द्राकारं रचिततिलकं चन्दनेनाक्षतैश्च ।
गत्या लीलां जनसुखकरीं प्रेक्षणेनामृतौघं
पाद्मीं मालां सततमुरसा धारयन् पातु विष्णुः ।।

रथवर्णनम्—

युक्तः सैन्यनिबर्हणैर्मधुरगणयुतैः किङ्किणीजालमालैः
रत्नौघैर्मौक्तिकानामविरतमणिभिः संवृतश्चारुहारैः ।
हैमैः कुम्भैः पताकैः शिवनररुचिरैर्भूषितः केतुमुख्यै-
श्छत्रैर्ब्रह्मेशवन्द्यो दुरतिहरहरेः पातु जैत्रो रथो वः ।।
मोदन्ते सुजना ह्यनिन्दितधियस्त्यक्ताखिलोपद्रवाः
स्वस्थाः सुस्थिरबुद्धयः प्रतिहतामित्रा रमन्ते सुखम् ।।

श्रीराधापतिर्यदा हि यानं समारोहति ।
पलायध्वं पलायध्वं रे रे दितिजदानवाः! ।।
संरक्षणाय लोकानां रथारूढो हरिः पुमान् ।।
एवमाक्रोशयित्वाथ श्रीमत्योः कृष्णराधयोः ।
गृहीत्वा प्रसादमालां गद्यपद्येन संस्तुतिः ।।
परमवैष्णवैः कार्या परमानन्दरूपयोः ।

सकलगुणगणनिधानमभिवन्दितसिद्धिदमतिरमणीयं जनाह्लादकरमाविष्कृतसच्चिदानन्दस्वरूपमघौघनाशनातिपुण्यप्रदापरिमितमाहात्म्यं हारमुकुटकटककेयूरकङ्कणाङ्गदभुजवलयनूपुरमुद्रिकाद्यनेकाभरणं भ्रमरभजमानातिपरमलबहुलां वैजयन्तीं बिभ्राणमतीवसुन्दरवरं कन्दर्पकोटिलावण्यैकदेशं प्रसन्नमूर्त्तिवरदमूर्त्तिगोगोपगोपीकुलसेवितं करिकराकारातिसुकुमारसुप्रभसुन्दरभुजद्वयं वृन्दावननिवासिनं कृपया विश्वमवलोकयन्तं श्रीराधापतिं पूजितुं च समायाता ब्रह्मादयो देवा ब्रह्मेशानेन्द्रादयोऽष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या मरुद्गणाः प्रजेश्वराः सनकसनन्दनसनातनसनत्कुमारनारदप्रह्लादध्रुवाम्बरीषरुक्माङ्गदादयो भागवताः वेदोपवेदेतिहासपुराणस्मृतयो नदनदीपर्वतसमुद्राः सतीर्थाः सर्वे देवदानवदैत्या राक्षसमानवाः तथैव वैकुण्ठवासिनो नन्दसुनन्दकुमुदकुमुदाक्षबलसुबलसुश्लोकप्रबलार्हणजयविजयविष्वक्सेनादयो गरुडमुख्याः श्रीमन्महाभागवतप्रवराः श्रीप्रह्लादे आगते सर्वेषां महाह्लादो जायते ।

एवं गद्यपद्यं पठित्वाऽथ वक्तव्यम्—

इयं भागवती माला भक्तैर्द्रविणदानतः ।
सङ्ग्राह्याऽनुग्रहरूपा भक्त्या जयेन वै हरेः ।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा अन्त्यजः स्त्रियः ।

वाञ्छितार्थं प्रपद्यन्ते मालामादाय भक्तितः ।।
विशदां कीर्त्तिमुत्तममायुर्लक्ष्मीं स्थिरां यशः ।
शुद्धं कलत्रपुत्राद्यनेका आशिष ईहिताः ।।
प्राप्नोत्यन्ते च परमं पदं हरेः सनातनम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वकामसमृद्धये ।।
मालामेतां सुगृह्णीयात् सौख्यमोक्षप्रदायिनीम् ।
भक्त्या गृह्णाति यो मालां वैष्णवीममलां शुभाम् ।।
न तेषां दुर्लभं किञ्चिदिहलोके परत्र च ।
कण्ठे मालां निधायाथ महाभागवतोत्तमैः ।।
कृष्णं रथं समारोप्य गीतवाद्यजपस्वनैः ।
प्रमुदिताननैः सर्वैः भक्त्या कृष्णरथस्य तु ।।
प्रेरणाकर्षणं कार्य्यं तथा च सनकादयः ।
रथस्याकर्षणं पूर्वं कुरुते दैत्यनायकः ।
ततः सिद्धसुरसङ्घा यक्षगन्धर्वमानवाः ।।
गृहं नीत्वा पुनः सेवां कृत्वा जागरणं चरेत् ।

स्कान्दे—

पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत्समुपार्जितम् ।
जागरेण प्रबोधन्या दहते तूलराशिवत् ।।
कृत्वापि पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः ।
कृत्वा जागरणं विष्णोर्धूतपापो भवेन्मुने ! ।।
कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम् ।
क्षालयेत्तच्च गोविन्दः प्रबोधन्यां तु जागरे ।।
दुष्प्रापं यत्फलं विप्रैरश्वमेधादिभिर्मखैः ।
प्राप्यंते तत्सुखेनैव प्रबोधन्यां तु जागरे ।।
आप्लुत्य सर्वतीर्थानि दत्वा च काञ्चनं महीम् ।

न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरेः ॥
चन्द्रसूर्य्योपरागे तु यत्फलं परिकीर्त्तितम् ।
तत्सहस्रगुणं पुण्यं प्रबोधन्यां तु जागरे ॥
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायश्चार्च्चनं हरेः ।
तत्सर्वं कोटिगुणितं प्रबोधन्यां तु जागरे ॥
समतीतं भविष्यं च वर्त्तमानं कुलायुतम् ।
विष्णुलोकं नयत्याशु जागरेण प्रबोधनी ॥
चलन्ति पितरो दृष्ट्वा विष्णुलोकमलङ्कृताः ।
विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्त्तुः कृष्णप्रजागरम् ॥
भार्य्यापक्षे तु ये जाता मातृतः पितृतस्तथा ।
तारयेन्नात्र सन्देहः प्रबोधन्यां तु जागरः ॥

तथाच—

फलैर्नानाविधैर्द्रव्यैः प्रबोधन्यां तु जागरे ।
शंखे तोयं समादाय अर्घ्यं दद्याज्जनार्द्दने ॥
यत्फलं सर्वदानेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं कोटिगुणितं दत्वार्घ्यं बोधवासरे ॥

पाद्मे—

अन्यत्रापि प्रिया विष्णोर्जागरे स्यात्प्रबोधनी ।
किं पुनर्मथुरायां सा ततोऽपि जन्मसद्मनि ॥
एकैवैकादशी कृष्णजन्मगेहे कृता नरैः ।
ततोऽधिकं न कर्त्तव्यं लोके किञ्चन विद्यते ॥
रात्रौ जागरणं तत्र प्रीत्या कुर्वन्ति ये नराः ।
संसारमोहस्वप्नान्ते यदा जाग्रति जाग्रति ॥

तत्रैव श्रीराधिकोपाख्यानान्ते—

सुबोधनीजागरपुण्यवैभवात् प्रसन्न ईशो विधिवाक्यसत्यकृत्

चकार रासोत्सवनर्त्तनं सह कदा वने वै विहरामि राधया ।।
सुनृत्यमानाऽद्भुतगोपरूपिणा कृष्णेन जन्मान्तरवाञ्छितेन ।
राधामहाप्रेमजवाकुलेन्द्रिया निन्येऽन्यलोकं कथया कृतार्थताम् ।।

तस्मात्सुबोधनीं कृत्वा रात्रौ कृत्वा च जागरम् ।
सुप्तोत्थितं हरिं दृष्ट्वा काभिः संसारजा द्विजाः ।।
मथुरायां तु किं वाच्यं जागरे हरिसन्निधौ ।
कार्त्तिके प्रबोधनीं प्राप्य ततः श्रेयः परं नहि ।।
मथुरायां प्रबोधन्यां कृतजागरणस्य हि ।
क्षणार्द्धदानतो वैश्योऽमोचयद्ब्रह्मराक्षसम् ।।
जागरस्य च माहात्म्यं गीतवादित्रकीर्त्तनम् ।
हरेः प्रीतिकरं रात्रौ वक्तुं मे नैव शक्यते ।।
यस्तु गायति कृष्णाग्रे कौमुदीद्वादशीं क्षणम् ।
सर्वलोकान्परित्यज्य विष्णुलोकं स गच्छति ।।
प्रातःस्नानादिकं ततः कृत्वा पूर्वोक्तरीतितः ।
तप्तमुद्रां तु धारयेत्सम्प्रदायानुसारतः ।।

दीक्षाकाले शयन्यां च प्रबोधन्यां यथाविधि ।
द्वारकायां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः ।।
इति मुकुन्दवचनात्पूर्वरीत्यैव धारयेत् ।
कृत्वा मासोपवासं तु संयतात्मा जितेन्द्रियः ।।
ततोऽर्चयेन्महाविष्णुं द्वादश्यां गरुडध्वजम् ।
पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः ।।
वस्त्रालङ्कारवाद्यैस्तु तोषयेच्चैव वैष्णवान् ।
स्नापयेच्च हरिं भक्त्या प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।।
ततः क्षमापयित्वैव तोष्याभ्यर्च्य विवर्जयेत् ।
एवं वित्तानुसारेण भक्तियुक्तेन शक्तितः ।।

एवं मासोपवासं तु कृत्वाऽभ्यर्च्य जनार्दनम्।
भोजयित्वा च वैष्णवान् विष्णुलोके महीयते॥
एवं मासोपवासान्वै सम्यक् कृत्वा त्रयोदश।
निर्वापयेत्ततस्तांस्तु विधिनानेन तं शृणु॥
कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः।
पूजयित्वा तु देवेशमाचार्याऽनुज्ञया हरिम्॥
सन्तोष्य केशवं भक्त्या चाभिवाद्य गुरुं ततः।
तान् भोजयेत्ततः सन्तः पूजयित्वा यथार्हतः॥
विशुद्धकुलचारित्रान्विष्णुपूजनतत्परान्।
पूजयित्वा यथासम्यग्भोजयेत्तु त्रयोदश॥
तावन्ति वस्त्रयुग्मानि भाजनान्यासनानि च।
उपपटानि शुभ्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि॥
दत्वा भगवदीयेभ्यः पूजयित्वा प्रणम्य च।
ततोऽनुकल्पयेच्छय्यां शस्तास्तरणसंस्कृताम्॥
साच्छादनां शुभां श्रेष्ठां सोपधानामलङ्कृताम्।
कारयित्वात्मनो मूर्त्तिं काञ्चनीं च स्वशक्तितः॥
न्यसेत्तस्यां तु शय्यायामर्च्चयित्वा स्रगादिभिः।
आसनं पादुके छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ॥
पवित्राणि च पुष्पाणि शय्यायामुपकल्पयेत्।
एवं शय्यां तु सङ्कल्प्य प्रणिपत्यं च तान्सतः॥
प्रार्थयेच्चानुमोदार्थं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम्।
एवमभ्यर्चिचताः सन्तो वदेयुर्व्रतिनं तदा॥
गच्छ गच्छ नरश्रेष्ठ! विष्णुस्थानमनामयम्।
विमानं वैष्णवं दिव्यं सशय्यापरिकल्पितम्॥
तेन विष्णुपदं याति सदानन्दमनामयम्।

ततः सन्तो विसर्जयेत्प्रणिपत्यानुगम्य च ।।
ततस्तु अर्चयेद्भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायकम् ।
तां शय्याकल्पितां सम्यग् गुरुं व्रतसमापकम् ।।
प्रणम्य शिरसा शान्तो गुरवे प्रतिपादयेत् ।
एवं पूज्य हरिं साधून् गुरुं ज्ञानप्रदायकम् ।।
कृत्वा मासोपवासं च निर्वाह्य विधिवन्मुने ! ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।।
यस्मिन् जाते महापुण्ये कुले मासोपवासकः ।
मासोपवासविधातुः पुण्यैस्तत्पुण्यवतां वरम् ।।
पितृमातृकुलाभ्यां च समं विष्णुपुरीं व्रजेत् ।
नारी वा सुमहाभागा यथोक्तव्रतमास्थिता ।।
कृत्वा मासोपवासाख्यं भक्तिः सञ्जायतेऽच्युते ।।

श्रीनारद उवाच—

पीडितस्य व्रते देव! मुमूर्षोर्व्रतिनस्तदा ।
त्यागो वाऽनुग्रहो वापि किन्नु कार्यं पितामह ! ।।

ब्रह्मोवाच—

व्रतस्थं कर्शितं दृष्ट्वा मुमूर्षुं वा तपोधन ! ।
दृष्ट्वा तु वैष्णवस्तस्य कुर्यात्सम्यगनुग्रहम् ।।
अमृतं प्राशयेत् क्षीरमिच्छापानं सकृन्निशि ।
यथेह न वियुज्येत प्राणैः क्षुत्पीडितो व्रती ।।
अतिमूर्छान्वितं क्षीणं मुमूर्षुं क्षुत्प्रपीडितम् ।
पाययित्वाऽमृतं क्षीरं रक्षेद्दत्वा फलानि च ।।
अहोरात्रं च यो नित्यं व्रतस्थं परिपालयेत् ।
पयोमूलफलं दत्वा विष्णुलोकं व्रजेच्च सः ।।
रक्षेत् मासोपवासस्थं आरूढं प्राणसंशये ।

न व्रतं घ्नन्ति चैतानि हविर्भक्तानुमोदितम् ।।
क्षीरौषधं गुरोराज्ञा अपो मूलं फलानि च ।
एवं कृत्वाभिरक्षेत सुगुडं पायसं तथा ।।
पाययेद्रक्षितो यस्मात्समाप्नोति पुनर्व्रतम् ।
विष्णुर्व्रतं विष्णुदाता विष्णुर्व्रती तथा द्विज ! ।।
सर्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा व्रतस्थं क्षीणमुद्धरेत् ।
यदामुमूर्षुर्निश्चेष्टः परिम्लानोऽतिमूर्च्छितः ।।
तदा समुद्धरेत् क्षीणमिच्छन्तं विमुखं स्थितम् ।
परिकल्प्य व्रती देहं व्रतशेषं समापयेत् ।।
यथोक्तं द्विगुणं तस्य फलं विप्रमुखोदितम् ।
तस्य शान्ता मतिर्येन पूजितो गरुडध्वजः ।।

इति कल्पानुकल्पाभ्यां व्रतानामुत्तमस्य च ।
विष्णुलोकमवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।।

विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्त्तितः ।
सुतस्नेहान्मुनिश्रेष्ठ ! सर्वलोकहिताय च ।।
कृत्वा व्रतं ततो भक्त्या नरो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न देयं दुष्टचेतसे ।।
ततो गुरुं च सम्पूज्य वस्त्रालङ्कारबभ्रुमिः ।
चातुर्मास्यस्य नियमं त्यक्त्वा भुञ्जीत वैष्णवैः ।।
नीत्वैवं कार्तिके व्रतं मार्गशिर उपन्यसेत् ।
पुनरावर्तितश्चैवं संवत्सरव्रतं चरेत् ।।

वैष्णवं प्रति वैष्णवधर्मप्रतिपादने फलमुक्तं स्कान्दे—

ब्रह्मनारदसंवादे—

वैष्णवे वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः ।
ससागरमहीदाने यत्फलं लभतेऽधिकम् ।।

वैष्णवधर्ममाहात्म्यमुक्तं श्रीमद्भागवते–एकादश स्कन्धे श्रीमता नारदेन–

श्रुतोऽनुपठितो ध्यातः आदृतो वाऽनुमोदितः ।
सद्यः पुनाति स धर्मो देवविश्वद्रुहोपि हि ।।

तत्रैव योगेश्वरेणापि—

यानास्थाय नरो राजन् ! न प्रमाद्येत कर्हिचित् ।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ।। इति ।।

पुनस्तत्रैव—

इति भागवतान्धर्मान् शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्त्यजाम् ।।

तत्रैव श्रीमुखेनापि—

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ।। इति ।।
अर्चितो वन्दितो ध्यातः कीर्त्तितो वा श्रुतोपि वा ।।
विशिष्टैरविशिष्टैश्च सर्वैः प्राप्यो मया श्रुतः ।।

मामपि महतां तेषां रहस्ये—

मामति महतां तेषां रहस्ये सन्ति योजय ।
गतिर्भव दयासिन्धो ! दासोस्मि तव केशव ! ।।
श्रीराधां रुक्मिणीं सत्यां गुरुं गुरुपरम्पराम् ।
तदङ्घ्रिदास्यलाभाय भूयो भूयो नमाम्यहम् ।।

इति श्रीमत्परमवैष्णवार्य श्रीमत्सनत्कुमारसन्तति-
प्रवर्त्तकश्रीमद्भगवन्निम्बार्कचरणचिन्तकश्री-
शुकसुधीसङ्गृहीते स्वधर्मामृतसिन्धौ
पञ्चविंशस्तरङ्गः ।। २५ ।।

* निवेदन *

पं० प्रवर श्रीशुकसुधी संगृहीत "स्वधर्मामृतसिन्धु"
क यह ग्रन्थ पूज्य आचार्यश्री के आदेशानुसार अ०भा०
बार्काचार्यपीठस्थ शिक्षा समिति निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)
रा प्रकाशित होकर आपके कर कमलों में है। इस अनुपम
थ में लगभग १२५ ग्रन्थों के पुष्ट प्रमाणों द्वारा सम्प्रदाय
आचार विचार, नियम, व्रतादि में होने वाले सन्देहों का
लीभाँति निराकरण किया गया है। ग्रन्थ का मनन कर
द्वज्जन विशेष लाभान्वित हों इसी दृष्टिकोण से इस
नुपलब्ध ग्रन्थ की यह द्वितीयावृत्ति प्रकाशित की गई है।
आशा है विद्वज्जनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपादेय होगा।

संग्रह को यथावत् शुद्ध एवं सुन्दर बनाने का पूर्ण
यत्न किया गया है फिर भी त्रुटियों का ग्रन्थ में रह जाना
ाभाविक है अतः असावधानीवश रही हुई त्रुटियों के लिए
मा प्रार्थी हैं।

—भंवरलाल उपाध्याय
मुद्रण व्यवस्थापक

★

पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

१- अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ
निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद (अजमेर) राज०

२- श्री श्रीजी मन्दिर
प्रताप बाजार, वृन्दावन (उ०प्र०)

३- श्री निम्बार्क कोट
पृथ्वीराज मार्ग, अजमेर (राज०)